॥ श्रीः ॥

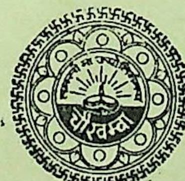
विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला
११६

वाल्मीकिरामायणान्तर्गता

रामाभ्युदययात्रा

संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

सम्पादकः
पण्डित श्रीरुद्रप्रसादः अवस्थी



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

Rs 7/=

॥ श्रीः ॥

विद्याभवन संस्कृत ग्रन्थमाला

११६

वाल्मीकिरामायणान्तर्गता

रामाभ्युदययात्रा

संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

सम्पादकः

पण्डित श्रीरुद्रप्रसादः, अवस्थी



चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी-२२१००१

१९७५

प्रकाशक:
चौखम्बा विद्याभवन
पो० बा० ६९, (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)
चौक, वाराणसी–२२१००१

तृतीय संस्करण १९७५

मूल्य ७–००

अपरं च प्राप्तिस्थानम्
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
के. ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन, पो० बा० १२९,
वाराणसी–२२१००१

मुद्रक:
चौखम्बा मुद्रणालय
वाराणसी–२२१००१

भूमिका

संस्कृत साहित्य में आदिकाव्य के रूप में वाल्मीकिरामायण की प्रसिद्धि है। महर्षि वाल्मीकि ने सर्वप्रथम लौकिक छन्दों का दर्शन किया और ब्रह्मा जी के आदेश से रामायण की रचना की। रामायण एक काव्य है किन्तु वह आर्षज्ञान से लिखा गया यथार्थ काव्य है। इसमें कवि को किसी प्रकार की कल्पना नहीं करनी पड़ी है इसलिए काव्य के तो समस्त गुण इसमें है और दोष भी नहीं है। इसीलिए यह समस्त काव्यों का आदर्शकाव्य है।

इस काव्य की रचना कब हुई यह कहना आज के युग में अत्यन्त असम्भव है। विद्वत्समाज में तथा इस रामायण में यह प्रसिद्ध है कि वाल्मीकि जी ने इस रामायण की रचना करके अपने शिष्यों से कहा कि इस रामायण को अयोध्या के राजा रामचन्द्र की सभा में कौन सुनाएगा—**चिन्तयामास कोन्वेतत् प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः**। इसी बीच लव और कुश ने सुनाने का वचन दिया और समस्त रामायण का कण्ठस्थ करके गान किया। **वचो विधेयं तत्सर्वं कृत्वा, जगतुस्तौ समाहितौ**। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह रामायण राम का समकालिक है और इसने कई युगों का दर्शन किया है।

आजकल के ऐतिहासिकों में कालनिर्णय की जो प्रणाली है उसके अनुसार निम्नलिखित निर्णय किए गए हैं—

(१) रामायण में महाभारत के किसी पात्र का नाम नहीं है किन्तु महाभारत के सप्तम पर्व में रामायण के दो अविकल श्लोक मिलते हैं। अतः रामायण महाभारत से प्राचीन है।

(२) रामायण की कथा कतिपय परिवर्तनों के साथ दशरथजातक में वर्णित है जिसमें रामायण के पद्य का अनुवाद है। दशरथजातक का निर्माणकाल ई० पू० २५० माना गया है।

(३) सिल्वॉलेवि ने बौद्ध साहित्य में जम्बूद्वीप का वर्णन रामायण के दिग्वर्णन के समान देखकर रामायण को प्राचीन माना है।

(४) याकोबि ने भाषाविज्ञान की दृष्टि से बौद्धों के पूर्व रामायण का काल माना है। रामायण में बौद्ध और यवनों का नाम देखकर उन्होंने उन श्लोकों को प्रक्षिप्त कहा है।

(५) रामायण में कोशल राजधानी अयोध्या वर्णित है किन्तु पतञ्जलि और बौद्धों ने साकेत कहा है।

(६) जैन कवि विमलसूरि ने पउमचरिय में रामचरित वर्णित किया है। यह ६२ ई० में रचा ग्रन्थ है।

(७) अजातशत्रु ने ई० पू० ५०० में पाटिलपुत्र को बसाया। रामायण में गङ्गा और सोनभद्र को पार करके चलते समय पटना का नाम नहीं लिया है।

(८) रामायण में विशाला और मिथिला दो नगरी के रूप में हैं किन्तु बौद्धों के समय के पूर्व ही दोनों नगरी वैशाली के रूप में बन चुकी हैं।

(९) रामायण में अनेक राज्यों का वर्णन है किन्तु यह स्थिति बौद्धकाल के पूर्व ही समाप्त हो चुकी थी।

इन तर्कों से रामायण की जो प्राचीनता सिद्ध होती है वह केवल इतनी ही है कि रामायण आज से ३ सहस्र या ५ सहस्र वर्ष पूर्व निर्मित हुआ है। किन्तु जिस प्रकार की वानर और राक्षस जातियों का वर्णन रामायण–काल में मिलता है वैसा कहीं उपलब्ध नहीं है। इससे यह पता चलता है कि यह रामायण अवश्य इतने प्राचीन समय में रचा गया है कि वे घटनाएँ कल्पना के परे हो चुकी थीं।

इस काव्य के रचयिता महर्षि वाल्मीकि के सम्बन्ध में भी कुछ कहना इसलिए व्यर्थ है कि हम आधुनिक इतिहास की दृष्टि से उचित खोज नहीं कर सकते और सम्भव भी नहीं है। इनके जीवन के सम्बन्ध में केवल पुराण ही प्रमाण हो सकते हैं जिनमें लिखा गया है कि ब्राह्मणवृत्ति का परित्याग करके किरातवृत्ति से क्लिष्ट परिवार का पालन करने वाले वाल्मीकि ने एक दिन नारद का दर्शन किया तथा उनके उपदेश से तप करके ब्रह्मर्षित्व प्राप्त किया। राम की वनयात्रा में वाल्मीकि के दर्शन हुए, इससे सिद्ध होता है कि वाल्मीकि राम से बूढ़े थे। दशरथ के यज्ञ में वाल्मीकि का न रहना और राम-वनगमन में प्रतिष्ठित रूप में वाल्मीकि का रहना सिद्ध करता है कि इसी मध्यकाल में क्रौंच-

वध की घटना और रामायण का आविर्भाव हुआ है। रामायण तो रामराज्याभिषेक के बाद ही प्रकट हुआ।

इस रामायण को वाल्मीकि ऋषि ने आशीर्वाद दिया है और लिखा है—

'इदं पवित्रं पापघ्नं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
यः पठेद् रामचरितं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥
अपुत्रो लभते पुत्रं अधनो लभते धनम्।
सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत्॥'

वाल्मीकि ने रामायण की पवित्रता और महिमा को वेद के समान बताई है—**वेदैः सम्मितम्** (वा० १।९८), **रामायणं वेदसमम्** (उ० १११।४) **धर्म्यं** (यु० १२८।१०५), **शुभं** (यु० १२८।१२१) **महार्थं** (यु० १२८।१२१) **श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति। रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः।**

यह शक्ति और बुद्धि बढ़ाता है—**बुद्धिकरम्, ओजस्करम्** (यु० १२८।१२२) **यशस्यं, सुखमुत्तमम् प्राप्नोति सर्वां भुवि चार्थसिद्धिम्** (यु० १२८।१०५, १२१, १२२) **सौभाग्यम्** (उ० १११।४)।

यह कौटुम्बिक सुख भी देता है—**सौभ्रातृकम्, कुटुम्बवृद्धि** (यु० १२८। १२१, १२२) **अपुत्रो लभते पुत्रम्** (उ० १११।४)।

स्त्रियों का हित—**स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान्** (यु० १२८।११३), **राघवेण यथा माता, सुमित्रा लक्ष्मणेन च। भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः॥** (यु० १२८।१०८)।

वर्णों का हित—ब्राह्मण यदि रामायण पढ़े तो **पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्** (वा० १।१००) क्षत्रिय पढ़े तो **महीं विजयते राजा शत्रूँश्चाप्यधितिष्ठति** (यु० १२८।१०७), वैश्य के लिए हित—**वणिग्जनः पण्यफलत्वमीयात्** (वा० १।१००), शूद्र श्रवण करे तो **शृण्वंश्च शूद्रोऽपि महत्त्वमीयात्।**

इस ग्रन्थ को प्रतिलिपि करने वाला भी—**ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे।** इस प्रकार प्राणिमात्र का हित करने वाले इस रामायण का

अध्ययन, श्रवण, लेखन, प्रकाशन, सम्पादन, अनुवाद, टीका करना सब स्वर्गसुख देने वाला है।

इसीलिए वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी जैसी सांस्कृतिक संस्थाओं में इसका अध्ययन-अध्यापन होता है। वाल्मीकिरामायण का यह भाग जिसका नाम **'रामाभ्युदययात्रा'** है, अलग से मुद्रित किया जा रहा है। इसमें राम-अभ्युदय-यात्रा तीन पद हैं इसलिए, रामजन्म से विश्वामित्र बला-अतिबला विद्या, तथा जृम्भकास्त्र की प्राप्ति ताटका-सुबाहु-मारीचवध, धनुषभंग, सीता-विवाह आदि अभ्युदय प्राप्ति के लिये अयोध्या से प्रस्थान तक वर्णित है। इस यात्रा में राम की धाक जम गई—परशुराम ने लोहा मान लिया, देश के नरेश धनुष के सामने लज्जित हो उठे। किन्तु राम ने अपना व्यक्तित्व प्रकट कर दिया। सब लोगों ने राम के बल और दशरथ के भाग्य की सराहना की।

इस काव्य के तीन नाम हैं—रामायण, सीताचरित और पौलस्त्यवध।

काव्यं रामायणं नाम सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येवं चकार चरितव्रतः॥

यह आरम्भिक रामाभ्युदययात्रा इसी का भाग है।



संक्षिप्त कथा

वाल्मीकि जी ने नारद के मुख से मूलरामायण सुनकर उनकी पूजा की तथा नारद जी को विदा देकर अपने शिष्य के साथ तमसा नदी के उस किनारे पर पहुँचे जहाँ कीचड़ नहीं था। सज्जन मनुष्य के निर्मल मन की भाँति तमसा का जल देखकर स्नान करने का निर्णय किया और कमण्डलु आदि रखकर वहाँ की सुन्दरता देखने लगे। इसी बीच चरते हुए हंस की जोड़ी में से एक का पापी व्याध के द्वारा वध देख तथा क्रौंची का विलाप सुनकर उन्होंने करुणा में आकर छन्दोबद्ध भाषा में शाप दे डाला। वाल्मीकि स्नान के बाद अपने मुख से निकले श्लोक के विषय में सोच ही रहे थे कि ब्रह्मा जी प्रकट हुए तथा सत्कार पाकर कहा कि छन्दोबद्ध वाणी ने तुम पर कृपा की है अतः तुम रामचरित लिखो। इतना कहकर ब्रह्मा के चले जाने पर वाल्मीकि को चिन्ता हुई कि क्या लिखा जाय।

मुनि वाल्मीकि ने आचमन करके शुद्ध हो आसन पर बैठकर भगवान राम के चरित का ध्यान किया तो उन्हें राम का समस्त चरित हस्तामलक की भाँति प्रत्यक्ष हो गया। उन्होंने आरम्भ से राज्याभिषेक तक छः काण्डों में लिखा तथा स्वराष्ट्रपालन, सीतावनवास और उसके बाद की घटनाओं को उत्तरकाण्ड में लिखा।

रामायण की रचना हो जाने के बाद वाल्मीकि जी के मन में यह बात आई कि इसे अयोध्या के राजा रामचन्द्र को सभा में सुनाया जाय। उन्होंने अपने शिष्य लव और कुश को सम्पूर्ण रामायण अभ्यास कराया और अयोध्या भेज दिया। वे दोनों एक दिन मुनियों और ऋषियों की सभा में पहुँचे। उनके गान से प्रसन्न होकर ऋषियों ने साधुवाद दिया और अनेक प्रकार के पुरस्कार दिये। एक दिन जब वे अयोध्या की गलियों, सड़कों और चौराहों पर गा रहे थे तब भगवान् राम ने देखा और लक्ष्मण; भरत तथा शत्रुघ्न से कहा कि इनसे यह काव्य सुना जाय। लव और कुश ने राजा की आज्ञा पाकर इस प्रकार आरम्भ से रामायण सुनाना प्रारम्भ किया—

जिन इक्ष्वाकुवंशो राजाओं ने समस्त पृथ्वी खण्ड पर राज्य किया उनके वंश में एक अपूर्व घटना घटो है। मैं उसे सुनाने चल रहा हूँ।

कोशल नाम का निर्मल जनपद सरयू के तट पर बसा है। उसकी लोक-प्रसिद्ध अयोध्या नाम की राजधानी में राजा दशरथ राज्य करते थे जो कपाट, तोरण बड़ी-बड़ी सड़कें, यन्त्र, अस्त्र, तोप, ऊँचे भवन, नाट्यशाला, उद्यान, आम के वन, किला, घोड़े, हाथी, गाय, ऊँट, गधे, कूटगृह, वेश्या, खाद्यान्न, सिंह, वाद्य, विद्वान् ब्राह्मणों और ऋषियों से भरी थी।

उस नगरी में दीर्घदर्शी, जनप्रिय लोकप्रसिद्ध, लोकरक्षक राजा दशरथ राज्य करते थे। उनके राज्य में सब लोग सम्पन्न तथा चरित्रवान थे। चारों वर्ण अपने-अपने कर्म पर अटल थे, कोई दीन-दुःखी नहीं था। राज्य की समुचित व्यवस्था थी। सम्मानित सैनिक और सेना के योग्य उचित साधन थे जिससे राजा दशरथ नक्षत्रों में चन्द्रमा के समान शोभा पाते थे और इन्द्र के समान जगत् का शासन करते थे।

इनके योग्य और कर्मठ धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन-अकोप, धर्मपाल और सुमन्त्र नाम के आठ मंत्री थे। वसिष्ठ और वामदेव दो पुरोहित और मन्त्री भी थे। इन सब लोगों के साथ राजा उचित दण्ड और पुरस्कार देता हुआ पृथ्वी का शासन कर रहा था।

इन सब के होते हुए भी राजा दशरथ को पुत्र के अभाव से बड़ा सन्ताप था। उनके मन में आया कि पुत्र के लिए अश्वमेध यज्ञ किया जाय। मन्त्रियों की सलाह के पश्चात् गुरु वसिष्ठ को बुलाया गया और उनकी राय ली गई। समस्त विद्वानों के साथ पुरोहितों ने अपनी स्वीकृति दी और यज्ञभूमि बनाने, अश्व छोड़ने, यज्ञ की रक्षा करने की सब विधि बता दी। इन लोगों को विदा कर राजा अपनी पत्नियों के समीप स्वयं गया और सब वृत्तान्त सुनाया। यह सुनते ही रानियों के मुखकमल खिल उठे।

इस समाचार को सुनकर सारथी सुमन्त्र ने एकान्त में राजा से कहा कि हे महाराज! सनत्कुमार के मुख से मैंने आपकी पुत्रोत्पत्ति के सम्बन्ध में सुना है कि काश्यप के पुत्र विमाण्डक को ऋष्यश्रृङ्ग नाम का पुत्र होगा, जिसका ब्रह्मचर्य पहिले वेदाध्ययन में और पश्चात् एकपत्नीव्रत के रूप में दो प्रकार का होगा।

घटना यह होगी कि अंग देश के राजा रोमपाद के दुराचरण से उनके राज्य में घोर अनावृष्टि होगी जिससे दु:खी होकर राजा ब्राह्मणों से प्रायश्चित्त पूछेगा। ब्राह्मण लोग उससे कहेंगे कि ऋष्यश्रृङ्ग को बुलाया जाय और शान्ता नाम की कन्या उन्हें दी जाय तब राज्य में सुख होगा। मंत्री तथा पुरोहितों की सलाह से उनको वेश्यायें राजधानी में ले आयेंगी तब वर्षा होगी। ऐसा किया गया और वर्षा हुई। हे महाराज ! ऋष्यश्रृङ्ग आपके जामाता हैं। उनके यज्ञ करने से आपको पुत्र होंगे। यह सुनकर राजा ने कुतूहलवश ऋषि के लाने का प्रकार पूछा।

सुमन्त्र ने कहा कि अलंकृत होकर ब्रह्मचारी के वेश में रूपवती गणिकाओं ने वन में जाकर आश्रम के निकट ही डेरा डाल दिया। ऋषिपुत्र ने कभी स्त्री जाति को देखा नहीं था अत: आश्रम के बाहर निकलते ही उनसे भेंट हुई तो उनका मोहक रूप, उनके मधुर गीत और मीठे शब्दों में कुशल-प्रश्न सुनकर वे आकृष्ट हो गए और उन्हें अपने आश्रम में आने का निमन्त्रण दिया। वे सब अवसर देखकर ऋषि-आश्रम में पहुँची, सत्कार स्वीकार किया तथा मधुर स्वादु मोदकों को फल बताकर चली आईं। उनके आने पर ऋषिकुमार उत्कण्ठित हुआ और उनके साथ उनका आश्रम देखने के ब्याज से राजधानी पहुँच गया। ऋषि-कुमार के राज्य में प्रवेश करते ही प्रबल वर्षा हुई। राजा ने उनकी पूजा की और रनिवास में ले जाकर शान्ता के साथ विवाह कर दिया। ऋषिकुमार भी शान्ता के साथ राजभवन में रहने लगे।

सुमन्त्र ने कहा कि हे महाराज ! सनत्कुमार जी ने आगे कहा कि राजा दशरथ को शान्ता नाम की कन्या होगी जिसे वे अपने मित्र रोमपाद को देंगे। एक बार दशरथ वहां जायेंगे और यज्ञ के पश्चात् उन्हें पराक्रमी चार पुत्र होंगे। इसलिए हे महाराज, आप उनके ले आने का प्रयत्न करें। यह सुनकर दशरथ ने वैसा ही किया तथा शान्ता के साथ ऋष्यश्रृंग अयोध्या आये।

फिर वसन्त आया। सरयू के उत्तर तट पर यज्ञभूमि बनाई गई। मखवाट बना (वह आज भी मखौड़ा के नाम से सरयू के उत्तर तट पर है), ऋषियों-मुनियों, पुरोहितों और मन्त्रियों के परामर्श और प्रयत्न से यज्ञभूमि बनाई गई।

फिर वसन्त आया। अश्वमेध की भूमिका तैयार हो चुकी थी। सब लोगों को कार्यभार सौंपा गया, कर्तव्य का निर्देश किया गया, इष्टमित्रों को निमन्त्रण

भेजा गया। सब लोग आये। राजा दशरथ ने शुभ मुहुर्त में यज्ञवाट के लिए प्रस्थान किया। ऋष्यशृङ्ग के आचार्यत्व में यज्ञकार्य आरम्भ हुआ और राजा ने अपनी पत्नियों के साथ यज्ञदीक्षा ली। अश्व छोड़ा गया।

फिर वसन्त आया। एक वर्ष पूर्ण हुआ। अश्व लौट आया। सरयू के उत्तर तट पर यथाविधि यज्ञकर्म आरम्भ किया गया। मधुर गीत हुए, ब्राह्मणों को भोजन दिया गया तथा अन्य लोगों को यथेच्छ यथारुचि सत्कारपूर्वक भोजन दिया गया। यज्ञ पूर्ण हुआ। ब्राह्मणों को दक्षिणा में भूमि दी गई। ब्राह्मणों ने भूमि का निष्क्रय माँगा जिसके बदले में राजा ने दश लाख गौ, दश कोटि सुवर्ण और चौगुनो चाँदी दी। ऋत्विज ब्राह्मणों ने आचार्य को दिया। आचार्य ने सबको यथाविधि बाँट दिया। राजा ने चरणस्पर्शपूर्वक प्रणाम किया आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुआ। इसके बाद राजा ने ऋषि से कहा कि महाराज, हमारे कुल को बढ़ाने वाला पुत्र हो ऐसा उपाय करें।

ऋष्यशृङ्ग ने राजा दशरथ की प्रार्थना सुनकर पुत्रेष्टि आरम्भ की। इधर रावण से दुःखी देवता लोग इस यज्ञ में उपस्थित ब्रह्मा के समीप आये और रावण के वध का उपाय पूछा। ब्रह्मा जी ने बताया कि रावण मनुष्य को छोड़कर किसी दूसरे के हाथ से नहीं मरेगा। इसी बीच गरुड़ पर चढ़े हुए विष्णु आये और ब्रह्मा से मिलकर बैठे। देवताओं ने राजा दशरथ की तीनों पत्नियों में उत्पन्न होकर रावण का वध करने की प्रार्थना की।

भगवान् विष्णु देवताओं की प्रार्थना को स्वीकार कर अन्तर्धान हो गए। तब तक यज्ञकुण्ड की अग्नि से देदीप्यमान, महाबलशाली, रक्त वस्त्र पहिने, रक्त वर्ण का एक पुरुष हाथ में दिव्य खीर से पूर्ण पात्र लिए हुए प्रकट हुआ और राजा दशरथ को प्राजापत्य के रूप में अपना परिचय दिया। राजा से स्वागत प्राप्त करके खीर राजा के हाथों में देते हुए वह बोला कि इसे अपनी पत्नियों को खिलाकर पुत्र प्राप्त करो। राजा ने लेकर पत्नियों को बाँट दिया। उसके खाने के बाद रानियों ने अति तेजस्वी गर्भ धारण किया।

भगवान् के गर्भ में आते ही देवताओं ने अपनी सभा में तय किया कि सब देवता विष्णु की सहायता के लिए यक्ष, किंनर, गन्धर्व, ऋक्ष, वानर आदि

जाति की स्त्रियों में अपने बल और पराक्रम के साथ जन्म लें। इसके बाद थोड़े ही दिनों में समस्त पृथिवी इन राम के सहायकों से पूर्ण हो गई।

यज्ञ समाप्त कर राजा ने राजधानी में आये अतिथियों, ब्राह्मणों को विदा कर शान्ता के साथ ऋष्यश्रृङ्ग को भी विदा किया। ग्यारह मास बीत गए। बारहवें चैत्र के महीने की नवमी तिथि में कौशल्या से राम ने कैकेयी से भरत ने और सुमित्रा से लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न ने जन्म लिया। अयोध्या के साथ स्वर्ग में देवों ने भी दुन्दुभियों के शब्द से आकाश भर दिया, पुष्पवर्षा हुई, ब्राह्मणों को दान दिया गया। धीरे-धीरे चारों भाई बड़े हुए। राम-लक्ष्मण और भरत-शत्रुघ्न की जोड़ी लग गई। चारों भाइयों के जातकर्म से लेकर वेदारम्भ तक संस्कार हुए। पुत्रों को विद्वान् और विवाह के योग्य देखकर राजा ने मन्त्रियों से विचार आरम्भ किया ही था कि विश्वामित्र जी आ पहुँचे। उनको देखकर राजा दशरथ को अपार हर्ष हुआ। उन्होंने विश्वामित्र की आज्ञा पालने की उत्सुकता दिखाते हुए आगमन का कारण पूछा।

विश्वामित्र ने राजा की बात सुनकर आनन्द का अनुभव किया और बोले कि 'मैं जब यज्ञ करता हूँ तो मारीच और सुबाहु रक्त और मांस गिराकर विघ्न कर दिया करते हैं। यद्यपि इनको मैं शाप से नष्ट कर सकता हूँ तथापि वह तप ही ऐसा है कि क्रोध नहीं करना चाहिए। अतः आपके ज्येष्ठ पुत्र राम में अतुल शक्ति का आधान करके मैं राक्षसों का वध कराना चाहता हूँ। इस यज्ञ में विजय प्राप्त करके तुम्हारे पुत्र तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त करेंगे। यदि आपके वसिष्ठ प्रभृति मन्त्री राय दें तो राम को केवल दश रात्रि के लिए हमें दे दीजिए। यह सुनकर राजा दशरथ पहले तो ठगे से रह गए, फिर सावधान होकर बोले कि राम का अभी सोलहवाँ वर्ष चल रहा है। वह अभी युद्ध में प्रवीण भी नहीं है अतः मैं अपनी विशाल सेना के साथ उन राक्षसों से लड़ने चलूँगा। किन्तु अपनी वृद्धावस्था में बड़े तप से प्राप्त इन पुत्रों को देने में असमर्थ हूँ और आप भी इन्हें न ले जायँ। राजा ने इन राक्षसों के बल, पिता, आकार और पृष्ठपोषक की जानकारी प्राप्त की तथा पुत्रों को न देने का निर्णय किया।

राजा दशरथ के शब्दों को सुनकर दुःख से भरे हुए विश्वामित्र ने कहा कि

आपने जिस प्रकार के शब्द कहे हैं वह रघुवंशियों के प्रतिकूल हैं। तुम असत्य-प्रतिज्ञ हो रहे हो, तुम्हें ऐसा नहीं होना चाहिए। तब वशिष्ठ ने कहा कि पहिले देने की प्रतिज्ञा करके न देने से तुम्हारे पुण्य नष्ट होंगे। हे दशरथ! राम सामान्य जन नहीं हैं। अस्त्रकुशल हो या न हों, विश्वामित्र से रक्षित इनका राक्षस कुछ बिगाड़ न सकेंगे। विश्वामित्र सब अस्त्र जानते हैं। जृम्मकास्त्र, जो कृशाश्व के पुत्र हैं और दक्ष की जया तथा सुप्रभा कन्या से उत्पन्न हुए हैं, इनको सिद्ध हैं। आप राम को देने में संकोच न करें।

वसिष्ठ के ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर राजा ने राम को लक्ष्मण के साथ बुलाया, उनका मस्तक सूँघा और प्रसन्न मन से विश्वामित्र को सौंप दिया। तब शीतल वायु बहा, आकाश से पुष्पवर्षा हुई, देवताओं ने शंख और दुन्दुभियाँ बजाईं। आगे-आगे विश्वामित्र और दोनों ओर बगल में राम-लक्ष्मण दशों दिशाओं को शोभित करते हुए चल पड़े। डेढ़ योजन बाहर जाकर सरयू के दक्षिण तट पर विश्वामित्र ने राम से कहा कि 'वत्स राम, आचमन कर लो, हाथ मुँह धो लो और मुझ से मन्त्र के साथ बला और अतिबला नाम की विद्या प्राप्त करो, जिससे न थकावट होगी न भ्रम, न ज्वर होगा न रूप में परिवर्तन। तुम्हें सोते या जागते कोई राक्षस अभिभूत न कर सकेगा। इस प्रकार विद्याओं की प्रशंसा करके प्रसन्न चित्त से उपस्थित राम को विद्या दे दी। वहीं संध्या हो गई। गुरु के सब कार्यों को पूरा करके तीनों व्यक्तियों ने सुखपूर्वक सोकर रात बिताई।

इस **रामाभ्युदययात्रा** के वर्णनीय विषय में मुख्यतया निम्नलिखित विषय विशेष रूप से विचारणीय हैं—

(१) महर्षियों का समादर, (२) निमन्त्रण देने की प्रथा, (३) सत्कार की विधि, (४) लोकाचार, (५) संस्कार और (६) राजनीति।

इनका हम संक्षिप्त परिचय देंगे।

(१) महर्षियों का समादर

रामायणकाल में महर्षियों का बड़ा प्रभाव था। दशरथ के आठ मन्त्रियों के निर्णय के बाद वसिष्ठ के समर्थन की आवश्यकता रहती थी। यज्ञ करने का

सब कुछ हो जाने पर भी उसकी पूर्णता का दायित्व वशिष्ठ पर था। विश्वामित्र के आगमन से राजा दशरथ को अपार हर्ष हुआ। वे मन्त्रियों की बैठक में थे फिर भी विश्वामित्र को मिलने के समय की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। दशरथ ने राम को देने से नकारा तो किन्तु इन शब्दों से कि आपको चाहिए कि राम को न ले जायँ। मेरा उत्साह देने को नहीं कर रहा है, वह बच्चा है, इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि ऋषियों का उस समय बड़ा आदर और उनसे राजा को भय भी था।

(२) निमन्त्रण देने की प्रथा

निमन्त्रण कई प्रकार से दिये जाते थे। विशेष सम्बन्धियों के यहाँ कोई आधिकारिक व्यक्ति निमन्त्रण देता था। इसीलिए वसिष्ठ जी ने यज्ञ के निमन्त्रण में तीन भेद किये। एक तो जो अत्यन्त प्रेम और आदर के पात्र थे उन्हें लेने स्वयं सुमन्त्र मंत्री को जाना चाहिए। उनसे कुछ दूसरे प्रकार के लोगों के समीप सामान्य आधिकारिक भेजे गये। तीसरे प्रकार के लोगों को निमन्त्रण देने के लिए दूत ही भेजे गये। इस प्रकार निमन्त्रण में विभिन्न प्रकार का अवलम्बन किया जाता था।

(३) सत्कार की विधि

रामायण में किसी व्यक्ति को कुछ देने में सत्कार के साथ देने की बार-बार सावधानी का संकेत किया गया है—**सत्कृत्य नतु लीलया।** प्रायः राजाओं के यहाँ सत्कारपूर्वक वस्तु नहीं दी जाती, जैसे आजकल देखता हूँ कि लोग स्वयं ऊँचे आसन पर बैठ जाते हैं और विद्वानों को पुरस्कार की भाँति वस्तु देते हैं। यह देना लीलया देना है। भारत के प्रथम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसाद के सामने भी यह प्रश्न उठा था। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि हम सत्कार से दान करेंगे, लीला से नहीं। उन्होंने विद्वानों के चरण पखारे थे, सत्कार से दान दिया था। राजा दशरथ भी जानते थे कि कर्मचारीवर्ग हो सकता है किसी पूज्य का व्यतिक्रम कर दें। अतः उन्हें सर्वत्र सत्कार के लिए सावधान किया गया है। इससे यह भी पता चलता है कि लोग भीड़ आदि देखकर बिना सत्कार के भी दान दे दिया करते रहे होंगे और यह बात राजा को ज्ञात रही

होगी किसी भी स्थिति में राजा की यह योग्यता ही मानी जायगी कि वह अपने कर्मचारियों की कठिनाई और उनके समाधान का प्रकार जानता है। इसीलिए जितने लोग आये हैं उनके सत्कार करने वालों की संख्या बढ़ा दी गई थी। भोजन करने वाले बार-बार भोजन माँगते थे, उन्हें तत्काल मिलता था क्योंकि भोजन का पहाड़ लगा हुआ था, परोसने वाले संख्या में पर्याप्त थे। इस प्रकार सत्कार की विधि पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

(४) लोकाचार

राजा दशरथ के पुत्रजन्म पर नगर में गाँव में, सर्वत्र उत्सव मनाया गया। राम के जन्म में केवल राजद्वार में ही नहीं, सड़कों और गलियों में, चौराहों और घरों में सर्वत्र सारा समाज नाच रहा था। समस्त राज्य के नगर उल्लास से भर गए थे। यह एक ऐसा लोकाचार है कि गांव में भाई-चारा बढ़े। यह किसी को संकोच नहीं था कि वह राजभवन में जाने से रोका जायगा। यह परम्परा अभी तक देश में थी। गाँव की स्त्रियाँ गिरोह बाँधकर आतीं और सोहर गाती थीं। इसी प्रकार जब तक बच्चा सूतिकागृह में रहता तब तक घर में उल्लास भरा रहता था। इसमें किसी को कोई कष्ट नहीं किन्तु सौहार्द बढ़ता था। किन्तु अब तो सब समानता के युग में और इस राग-द्वेष के साम्राज्य में कोई किसी को पूछता ही नहीं है। हमारी सामाजिक स्थिति जब बँधी रहेगी तभी हममें सौभ्रात्र का उदय होगा अन्यथा भाई-भाई का नारा लगाने से कुछ नहीं बनता। रामायण समाज का एक कड़ी में बँधा रहना उत्तम मानता है।

(५) संस्कार

रामायण काल में कितने संस्कार होते थे इस पर लोग बड़ा विवाद करते हैं तथा उपनयन संस्कार नहीं था इस प्रकार का पक्ष भी उपस्थित करते हैं। हम यहाँ केवल यह देखेंगे कि राम के कितने संस्कार किये गये थे।

(१) **गर्भाधान**—गर्भाधान के सामान्य प्रकारों से जब दशरथ की रानियों के गर्भ नहीं रहा तब दशरथ ने प्रतिबन्धक हटाने के लिए यज्ञ किया। तदनन्तर देवताओं के द्वारा प्रदत्त खीर खाने के पश्चात् रानियों ने गर्भ धारण

गये उन लोगों ने भी एकमत निर्णय किया। विद्वानों में प्रायः एक मत होने को आदत नहीं होती। कोई कुछ कहता है कोई कुछ। किन्तु दशरथ ने शास्त्रार्थ में प्रवीण विद्वानों का एक मण्डल बनाया था जिसका परिणाम यह था कि विवाद होने पर वसिष्ठ आदि का निर्णय सर्वमान्य था। यह शास्त्रार्थ तर्क मात्र नहीं किन्तु उस निर्णय के अनुसार क्रिया का फल भी होना चाहिए था।

मन्त्री अनावश्यक था अनवसर अपनी राय नहीं देते थे। सुमन्त्र ने पुत्रेष्टि याग के निर्णय हो जाने के बाद ही सनत्कुमार के द्वारा सुनी हुई कथा सुनाई जिसमें दशरथ के पुत्रों की उत्पत्ति का प्रकार कहा गया है। राजा ने उसे मान लेने पर भी मन्त्रियों की राय ली, तब ऋष्यश्रृङ्ग को बुलाने स्वयं मन्त्रियों और पत्नियों के साथ गये। किसी मित्र के घर जाने की यह प्रथा रही होगी। राजा लोग प्रायः किसी भी यात्रा में रानी को साथ रखते थे।

ताटका वन राजा दशरथ की राज्य सीमा में नहीं था क्योंकि दशरथ कोशल के राजा थे, उनके राज्य का विस्तार गंगा और हिमालय के मध्य में ही था। राजा अज का गगा-सरयू के संगमस्थल में देहत्याग और राम को गंगा तट तक रथ से भेजना बताता है कि आगे दशरथ का राज्य नहीं था। विश्वामित्र ने दशरथ से ताटका वध की प्रार्थना नहीं की और न सेना के साथ आक्रमण कराकर दो राज्यों में युद्ध छिड़ जाने का प्रयत्न ही किया। किन्तु सामान्य पुलिस कार्यवाही की भाँति उपद्रवियों को एक शिष्य से मारने का आदेश दे दिया। इससे पता चलता है कि गुरुकुलों में किसी भी राज्य का प्रबल शासन नहीं था। कुल-पति के साथ चलने वाले विद्यार्थियों को कोई रोक भी नहीं थी। सम्भवतः पारपत्र की व्यवस्था नहीं थी। राजा केवल राजधानी में ही विशेष सुरक्षा रखता था।

विश्वामित्र ने जब दशरथ से राम के ले जाने की याचना की तब राजा दशरथ ने '**किंवीर्याः राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते। कथंप्रमाणः क चैतान् रक्षन्ति मुनिपुङ्गव**' पूछा। इनमें उनका बल और उनका प्रमाण पूछना तो राम और उनका बलाबल विचारने के लिए है किन्तु '**कस्य पुत्राः, के चैतान् रक्षन्ति**' ये दोनों प्रश्न उनके परराष्ट्र से सम्बन्ध रखते हैं। विश्वामित्र ने जब

किया। आज भी गर्भ धारण के लिए खीर खाने की प्रथा है। खीर ने गर्भग्रहण की शक्ति दी।

जातकर्म—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के जन्म के बाद नालच्छेदन के पूर्व अशौच लगने के पहिले दशरथ ने दान दिया और जातकर्म संस्कार कराया—**जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।**

(३) **नामकरण**—जन्म के एकादश दिन के बाद दशरथ ने बच्चों का नामकरण संस्कार किया। **अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाऽकरोत्।**

(४) **सर्वकर्म**—सर्वकर्म उपनयन को कहते हैं क्योंकि उपनयन के बाद व्यक्ति को सर्वकर्म का अधिकार होता है। इसके बाद वेदाध्ययन विहित है। राम ने **वेदविदः** होने के बाद **वैदिकाध्ययने रताः** होकर वेदाङ्ग और दर्शन भी पढ़ा था। समस्त विद्याओं के सीख लेने के बाद समावर्तन करना है। समावर्तन और विवाह के बीच **'अनाश्रमी न तिष्ठेत क्षणमेकमपि द्विजः'** के अनुसार विवाह का तय हो जाना आवश्यक है। अतः दशरथ को **दारक्रियां प्रति चिन्तयामास** की स्थिति हुई। विवाह के तोन दिन के पूर्व गोदान विधि हुई। समावर्तन के बाद विवाह के पूर्व सामवेदियों और अथर्ववेदियों में गोदान विधि होती है। इस प्रकार राम का उपनयन संस्कार तथा अन्य संस्कार भी हुए थे।

(५) **राजनीति**—लोकव्यवहार के लिए राजनीति की आवश्यकता होती है, चाहे घर में हो अथवा बाहर। राजा दशरथ एक सम्राट् थे, किसी के सामन्त नहीं। अनेक राज्यों में देश विभक्त था। उनमें कुछ दशरथ के मित्र थे, कुछ शत्रु, कुछ तटस्थ थे, कुछ सामन्त भी थे। राजा दशरथ अपना राज्य आठ मन्त्रियों तथा वसिष्ठ और वामदेव दो पुरोहितों के निर्देशन में करते थे। राजा दशरथ कोई भी कार्य करते तो मन्त्रियों की सलाह आवश्यक थी। मन्त्रियों से वे पृथक्-पृथक् और सामूहिक रूप से भी सलाह करते थे। रामायण में ऐसा कहीं नहीं देखा जा रहा है कि राजा और मन्त्री के निर्णय में मतभेद हो।

पुत्रेष्टि यज्ञ के विषय में राजा ने मन्त्रियों से राय ली तब वसिष्ठ को बुलाया। उनका भी समर्थन प्राप्त किया। फिर राज्य के समस्त प्रतिष्ठित विद्वान् बुलाये

बताया कि मारीच और सुबाहु सुन्द और उपसुन्द के पुत्र हैं और रावण की प्रेरणा से उपद्रव कर रहे हैं तब राजा ने सुन्द, उपसुन्द और रावण की अजेयता को ध्यान में रखकर राम को देने से नकार दिया और दया की भीख माँगी ।

कारण यह कि अयोध्या के राजकुमार को सेना के साथ भेजना शक्य नहीं था । अकेले भेजने का कोई अर्थ नहीं था । किन्तु वसिष्ठ की राय और विश्वामित्र की अस्त्रशक्ति के ज्ञान की गरिमा को ध्यान में रखकर पुत्रों को भेज दिया । इन लोगों ने सुबाहु और ताटका का वध उस समय किया जब समस्त राजा अपनी शक्ति देखने मिथिला पहुँचे हुए थे। अचानक कहीं से आक्रमण होनेका भय भी नहीं था । यह वध भी ऋषिकुल के एक विद्यार्थी ने किया अतः आक्रमण किस पर किया जा सकता था । तत्काल धनुषयज्ञ में राम की अपरिमित शक्ति ने उन्हें ऊपर उठा दिया और किसी की शक्ति उनकी ओर ताकने की नहीं हुई ।

रावण ने मौका देखा । परशुराम को सूचना दी और अयोध्या पहुँचने के पूर्व ही धनुषभंग के व्याज से आक्रमण करा दिया । वसिष्ठ और विश्वामित्र के साथ राम को देखकर परशुराम ने क्यों युद्ध न करके धनुष चढ़ाने का पण किया यह तो गूढ़ रहस्य है । किन्तु यह तो सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि क्षत्रियों के वध से जो भारत की सैन्य शक्ति घटी थी और उसका लाभ लंका का राजा उठाकर भारत के अनेक भूखण्डों पर अपनी विस्तारवादी नीति से अधिकार करता जा रहा था वह परशुराम को भी अच्छा नहीं लगता था । आगे की राजनीति यहाँ लिखना उचित नहीं । यह तो पाठक जानते ही हैं कि शस्त्र-शक्ति विश्वामित्र के समीप थी और ब्रह्मतेज वसिष्ठ के समीप था । दोनों प्राप्त कर अजेय राम ने वनगमन किया था ।

रामाभ्युदययात्रा का यह संस्करण संस्कृत विश्वविद्यालय की शास्त्री परीक्षा में नियत हुआ है, यह बड़े सौभाग्य की बात है । वर्तमान उपकुलपति श्री सुरतिनारायणमणि त्रिपाठी जो रामायण के मर्मज्ञ और भगवान् राम के पूजित ब्राह्मणों के वंशज हैं, उनके कार्यकाल में यह उत्तम कार्य हुआ यह भी एक उत्तमता ही है । हमारा मत है कि रामायण और महाभारत की मुख्य

घटनाओं का परिज्ञान तो अवश्य होना ही चाहिए। इस भाग पर एक संक्षिप्त सुबोध संस्कृत टीका और भाषानुवाद की आवश्यकता समझ कर मैंने उसकी पूर्ति की है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इससे छात्रों और अध्यापकों को पूरी सुविधा होगी।

अन्त में मैं भगवान् रामचन्द्र के चरणों में पुष्पाञ्जलि अर्पित करता हुआ उनके गुणवर्णन और जन्मवर्णन में अपनी लेखनी को चला कर अपने को धन्य और कृतकृत्य मानता हूँ।

—रुद्रप्रसाद अवस्थी

॥ श्रीः ॥

रामाभ्युदययात्रा

संस्कृत-हिन्दीव्याख्याद्वयोपेता

प्रथमः सर्गः

नारदस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा वाक्यविशारदः ।
पूजयामास धर्मात्मा सहशिष्यो महामुनिः ॥ १ ॥

नारदोपदेशश्रवणोत्तरकालिकं वाल्मीकिवृत्तमाह—नारदस्येत्यादिना । वाक्यविशारदः वाक्ये वक्तव्ये विविधा विशिष्टा वा शारदा वाणी यस्य सः । धर्मात्मा धर्मे आत्मा यत्नो यस्य । परमधर्मोपदेष्टेत्यर्थः । सहशिष्यः शिष्यसहितः महामुनिः सर्वमुनिश्रेष्ठः वाल्मीकिर्नारदस्य तद्वाङ्मनसागोचरेश्वरबोधकं वाक्यं श्रुत्वैव पूजयामास । अहो एतद्बुद्धिवैभवमिति प्रशशंसेत्यर्थः । महामुनिमिति पाठे तु महामुनिं पूजयामासेत्यर्थः । तुशब्द एवार्थः ॥ १ ॥

विचित्र अर्थवाली वाणी जाननेवाले, बड़े धर्मशील, मुनि वाल्मीकि ने शिष्य के साथ नारद के उपर्युक्त (मूलरामायणोक्त) वचन को सुनकर उनका बड़ा सत्कार किया ॥ १ ॥

यथावत् पूजितस्तेन देवर्षिर्नारदस्तथा ।
आपृष्ट्वैवाभ्यनुज्ञातः स जगाम विहायसम् ॥ २ ॥

यथावदिति । तथा तस्मिन्काले तेन वाल्मीकिना यथावत्पूजितः स देवर्षिर्नारद आपृष्ट्वा अहं यामीत्युक्त्वैव अभ्यनुज्ञातः सुखं याहीति तत्सम्मतिं प्राप्तो विहायसमाकाशं जगाम । आकाशमार्गेण स्वर्लोकं प्रापेत्यर्थः । एतेन गुरुशिष्ययोरभीष्टार्थसिद्धिर्जातेति द्योतितम् ॥ २ ॥

देवर्षि नारन वाल्मीकि मुनि से विधिपूर्वक सत्कृत हो, उनसे पूछ और आज्ञा पाकर आकाश की ओर चले गए ॥ २ ॥

स मुहूर्तं गते तस्मिन्देवलोकं मुनिस्तदा ।
जगाम तमसातीरं जाह्नव्यास्त्वविदूरतः ॥ ३ ॥

नारदगमनोत्तरकालिकं वृत्तमाह—स इत्यादिना । तस्मिन्नारदे देवलोकं देवकर्तृकदर्शनयोग्यम् । स्वर्लोकमित्यर्थः । गते सति स मुनिर्वाल्मीकिर्मुहूर्तं घटिकाद्वयं स्थित्वा जाह्नव्या गङ्गाया अविदूरतः समीपे एव विद्यमानं तमसातीरं जगाम । मुहूर्त्तं स्थित्वेत्यनेन वाल्मीकेर्नारदविषयकप्रेमातिशयः सूचितः । समीपे विद्यमानां जाह्नवीं न गतस्तमसातीरमेव गत इत्यनेन तमसायां तत्प्रीत्यतिशयः सूचितः । तेन तत्स्थलस्य रघुनाथसञ्चारवत्त्वं ध्वनितम् । तुशब्द एवार्थे ॥ ३ ॥

नारद के देवलोक जाने के थोड़ी देर बाद मुनि वाल्मीकि गङ्गा से थोड़ी ही दूर पर वर्तमान तमसा नदी के तट पर चले गए ॥ ३ ॥

स तु तीरं समासाद्य तमसाया मुनिस्तदा ।
शिष्यमाह स्थितं पार्श्वे दृष्ट्वा तीर्थमकर्दमम् ॥ ४ ॥

स त्विति । तदा तस्मिन्काले स मुनिः वाल्मीकिस्तमसायास्तीरं समासाद्य सम्यक् प्राप्य अकर्दमं पङ्करहितं तीर्थम् ऋषिसेविततमसाजलं दृष्ट्वैव पार्श्वे स्थितं शिष्यं भरद्वाजमाह । तुशब्द एवार्थे । 'तीर्थं शास्त्राध्वरे क्षेत्रे मन्त्रोपाध्यायमन्त्रिषु । अव तारर्षिजुष्टाम्भस्त्रीरजस्सु च विश्रुतम् ॥' इति विश्वकोशात्तीर्थशब्दस्य ऋषिजुष्टाम्भः परत्वम् ॥ ४ ॥

वह मुनि वाल्मीकि तमसा के तीर पहुँचकर बिना कीचड़ का नदी में उतरने का घाट देखकर समीप में खड़े शिष्य (भरद्वाज) से बोले ॥ ४ ॥

अकर्दममिदं तीर्थं भरद्वाज निशामय ।
रमणीयं प्रसन्नाम्बु सन्मनुष्यमनो यथा ॥ ५ ॥

अकर्दममिति । अकर्दमं पङ्करहितान्तर्बहिःस्थलकम् । अत एव सन्मनुष्यमनो यथा सन्मनुष्यमनस्सदृशम् । अत एव रमणीयमतिरम्यम् । अत एव तीर्थम् । ऋषिभिर्जुष्टम् । इदं प्रसन्नाम्बु स्वच्छजलम् । हे भरद्वाज निशामय पश्य । 'शमो दर्शने' इति दर्शने मित्त्वनिषेधाद्ध्रस्वविरहः ॥५॥

हे भरद्वाज, तू देख, यह घाट कीचड़ से रहित, अति सुन्दर और सत्पुरुष के मन की भाँति निर्मल जल वाला है ॥ ५ ॥

न्यस्यतां कलशस्तात दीयतां वल्कलं मम।
इदमेवावगाहिष्ये तमसातीर्थमुत्तमम् ॥ ६ ॥

न्यस्यतामिति। हे तात ! कलश उदपात्रं न्यस्यताम् अत्रैव ध्रियतामित्यर्थः। मम वल्कलं शरीराच्छादनहेतुभूतकदलीत्वक् दीयताम्। उत्तमं तमसातीर्थमृषिसेविततमसाजलमिदमिवावगाहिष्ये अत्रैव स्नास्यामीत्यर्थः। स्नानात्पूर्वमेव वल्कलादियाचनेन त्वमपि स्नानं कुर्विति गुर्वाज्ञापनं ध्वनितम् ॥ ६ ॥

हे तात, यहाँ ही कलश रख दो और मेरे वल्कल-वस्त्र दे दो क्योंकि मैं तमसा के इसी उत्तम तीर्थ (घाट) पर स्नान करूँगा ॥ ६ ॥

एवमुक्तो भरद्वाजो वाल्मीकेन महात्मना।
प्रायच्छत मुनेस्तस्य वल्कलं नियतो गुरोः ॥ ७ ॥

एवमिति। नियतः स्नानकार्ये गुरुणा नियोजितः महात्मना परमपूज्येन वाल्मीकेन वल्मीकात्प्रादुर्भूतेन एवमनेन प्रकारेणोक्तो भरद्वाजः मुनेः नारदोपदिष्टवस्तुविषयकविचारशीलस्य गुरोस्तस्य वाल्मीकस्य वल्कलं प्रायच्छत प्रादात्। संज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वात्प्रायच्छतेति आत्मनेपदम् ॥७॥

महात्मा वाल्मीकि के ऐसा कहने पर गुरु के वश शिष्य भरद्वाज ने उन्हें वल्कल दे दिये ॥ ७ ॥

स शिष्यहस्तादादाय वल्कलं नियतेन्द्रियः।
विचचार ह पश्यंस्तत्सर्वतो विपुलं वनम् ॥ ८ ॥

वल्कलदानोत्तरकालिकं वृत्तमाह—स इत्यादिना। नियतेन्द्रियः संयतेन्द्रियग्रामः स वाल्मीकिः शिष्यस्य भरद्वाजस्य हस्ताद्वल्कलमादाय गृहीत्वा विपुलं विस्तीर्णं तद्वनं तमसातीरारण्यं सर्वतः पश्यन् विचचार। ह इति हर्षे। एतेन तद्वनस्य मनोहरत्वं व्यक्तम्। तेन तत्र तिष्ठासा व्यञ्जिता ॥ ८ ॥

जितेन्द्रिय वे मुनि शिष्य के हाथ से वल्कल लेकर उस विशाल वन में सब ओर देखते हुए विचरने लगे ॥ ८ ॥

तस्याभ्याशे तु मिथुनं चरन्तमनपायिनम्।
ददर्श भगवांस्तत्र क्रौञ्चयोश्चारुनिःस्वनम् ॥ ९ ॥

तस्येति। तत्र तस्मिन्वने तस्य तमसातीर्थस्य अभ्याशे समीपे एव

चरन्तं विहरन्तमनपायिनं वियोगशून्यं चारुनिस्स्वनं मनोहरशब्दयुक्तं क्रौञ्चयोः पक्षिविशेषयोः मिथुनं युग्मं भगवान् वाल्मीकिः ददर्श। तुशब्द एवार्थे। चरन्तमित्यादिपुंस्त्वमार्षम् ॥ ९॥

भगवान् (निग्रह और अनुग्रह में समर्थ) वाल्मीकि ने उस तीर्थ (तट) के निकट विचरते हुए सदा साथ रहने वाले और मधुर शब्द बोलते हुए क्रौञ्च पक्षी के जोड़े को देखा॥ ९॥

तस्मात्तु मिथुनादेकं पुमांसं पापनिश्चयः।
जघान वैरनिलयो निषादस्तस्य पश्यतः॥ १०॥

तस्मादिति। वैरनिलयः अकारणद्रोहाश्रयः अत एव पापनिश्चयः तद्वधोद्योगयुक्तः निषादः तस्य मुनेः पश्यत एव पश्यन्तमनादृत्यैव तस्मात् क्रौञ्चमिथुनात् वियुक्तमेकं पुमांसं जघान। तुशब्द एवार्थे "षष्ठी चानादरे" इति सूत्रविहिता षष्ठी॥ १०॥

पाप निश्चय वाले, वैर के आधार एक निषाद (भील) ने उनके (मुनि वाल्मीकि के) देखते-देखते उस क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक (पुरुष) को मार दिया॥ १०॥

तं शोणितपरीताङ्गं चेष्टमानं महीतले।
भार्या तु निहतं दृष्ट्वा रुराव करुणां गिरम्॥ ११॥

तमिति। शोणितपरीताङ्गं रुधिरव्याप्तशरीरं महीतले चेष्टमानं लुण्ठन्तं निहतं निषादेन हिंसितं तं क्रौञ्चं भार्या तत्स्त्री दृष्ट्वा तु अवलोक्यैव करुणां श्रवणमात्रेण कारुण्यनिष्पादिकां गिरं रुराव उच्चारयामास। तुशब्द एवार्थे॥ ११॥

क्रौञ्च की भार्या क्रौञ्ची निषाद से मारे हुए, रक्त से सराबोर अङ्ग वाले और पृथिवी में लौटते हुए क्रौञ्च को देखकर करुणा भरे शब्दोंसे विलाप करने लगी॥

वियुक्ता पतिना तेन द्विजेन सहचारिणा।
ताम्रशीर्षेण मत्तेन पत्रिणा सहितेन वै॥ १२॥

वियुक्तेति। मत्तेन सम्भोगहेतुभूतमदविशिष्टेन। पत्रिणा पक्षवता सहचारिणा स्वस्त्रिया सहैव गच्छता। सहितेन स्वसदृशगमनविशिष्टेन ताम्रशीर्षेण अरुणचूडेन द्विजेन पक्षिविशेषेण तेन हतेन पतिना स्वपतिना वियुक्ता रुरावेवेति पूर्वेणान्वयः॥ १२॥

जो एक जैसे आचार, सदा एक साथ रहने वाले, रक्तशिर, कामदेवके वश, और उत्तम पंखोंवाले पति से वियुक्त हो गई थी ॥ १२ ॥

तथाविधं द्विजं दृष्ट्वा निषादेन निपातितम् ।
ऋषेर्धर्मात्मनस्तस्य कारुण्यं समपद्यत ॥ १३ ॥

तथेति । तथाविधं सम्भोगोद्योगविशिष्टं द्विजं क्रौञ्चं निषादेन निपातितं पृथिव्यां लुण्ठितं दृष्ट्वा धर्मात्मनः परमधर्मज्ञस्य ऋषेस्तस्य वाल्मीकेः कारुण्यमनुकम्पा समपद्यत सम्यक् प्राप्नोत् ॥ १३ ॥

निषाद से मारे हुए उस पक्षी को देखकर धर्मात्मा वाल्मीकि ऋषि को दया-भाव उत्पन्न हो गया ॥ १३ ॥

ततः करुणवेदित्वादधर्मोऽयमिति द्विजः ।
निशाम्य रुदतीं क्रौञ्चीमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १४ ॥

निपातितक्रौञ्चदर्शनहेतुककारुण्यप्राप्त्यनन्तरकालिकं वृत्तमाह—तत इत्यादि । रुदतीं क्रौञ्चीं निशाम्य दृष्ट्वा । ततः क्रौञ्चीरोदनश्रवणहेतोः करुणवेदित्वात् घृणाविशिष्टत्वाद्धेतोः 'अयं पक्षिवधोऽधर्मः धर्मविरुद्धः' इदं वचनं वाल्मीकिरब्रवीत् ॥ १४ ॥

इसके बाद करुणरस के संवेदनशील उस द्विज (ब्राह्मण) वाल्मीकि ने यह (रतिकाल में मारना) अधर्म है ऐसा मानकर और रोती हुई क्रौञ्चो को देखकर यह वचन बोले ॥ १४ ॥

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥ १५ ॥

तत्रत्यहिंसानिवृत्तिफलकयत्नसूचनपूर्वकहिंसावलोकनजन्यशोकनिवर्तकप्रतिपिपादयिषितकाण्डसप्तार्थसूचकं पद्यमाह—मा निषादेत्यादिना । हे निषाद ! यद्यस्मात्काममोहितं कामासक्तं क्रौञ्चमिथुनादेकं पुमांसं पृथक्कृत्य त्वमवधीस्तस्मात् शाश्वतीः निरन्तराः समाः संवत्सरान् प्रतिष्ठामिह वने क्वचित्स्थानं त्वं मा गमः प्राप्नुहि । पुनरिह वने तवागमनं न स्यादित्यर्थः । "आशंसायां भूतवच्च" इति भविष्यत्काले लङ् । अननुबन्धकमाशब्दप्रयोगान्नाडविरहप्रसक्तिः । समा इत्यत्र द्वितीया "कालाध्वनोः" इति सूत्रविहिता । 'प्रतिष्ठा स्थितिमाहात्म्यम्' इति वैजयन्तीकोशात्प्रतिष्ठाशब्दः स्थानपरः ।

तत्रत्यहिंसानिवृत्तिफलकयत्नरूपार्थमुक्त्वा हिंसावलोकजन्यशोकनिवर्त्तकप्रतिपिपादयिषितकाण्डसप्तकस्वाभिप्रेतसंक्षिप्तार्थ उच्यते। हे मानिषाद! मानिनां गर्वविशिष्टानां षः श्रेष्ठः परशुरामस्तमा समन्ताद्भावेन द्यति खण्डयति वैष्णवधनुः-सज्जीकरणादिना तद्गर्वं निवर्तयतीति मानिषादः तत्संबोधने हे मानिषाद परशुरामाभिमाननिवर्त्तक! त्वं शाश्वसीः समाः प्रतिष्ठामगमः प्राप्स्यसि। यद्यस्मात्क्रौञ्चवन्मिथुनीभूताः क्रौञ्चमिथुनाः जनकधनुर्यागसमागता अविवेकिनो भूपास्तेषु अतति व्याप्नोतीति क्रौञ्चमिथुनात्। त्वमेकं केवलं काममोहितमविवेकीभूय काममोहितत्वम्। अवधीः न्यवर्त्तयः। 'षः कीर्तितो बुधैः श्रेष्ठे तथा गम्भीरलोचने' इत्येकाक्षरकोशात्षशब्दः श्रेष्ठपरः "आशंसायां भूतवच्च" इति सूत्रविहितोऽत्र लुङ्। काममोहितमिति भावनिष्ठान्तम्। इति बालकाण्डकथा सूचिता ॥१५॥

हे निषाद! तू निरन्तर बहुत दिनों तक कहीं भी स्थिति मत प्राप्त कर क्योंकि तूने कामदेव से पीड़ित क्रौञ्च पक्षी के जोड़े में से एक को मार दिया है ॥

तस्येत्थं ब्रुवतश्चिन्ता बभूव हृदि वीक्षत।
शोकार्तेनास्य शकुनेः किमिदं व्याहृतं मया ॥ १६ ॥

तस्येति। एवं राजोचितब्राह्मणानुचितव्याधनिवर्तकत्वप्रकारेणापि बोधकं पद्यं ब्रुवतः कथयतः वीक्षतः परधर्माचरणमयुक्तमिति विजानतः तस्य मुनेः हृदि चिन्ता बभूव। चिन्तास्वरूपमाह—अस्य शकुनेः क्रौञ्चस्य शोकार्तेन एतत् क्रौञ्चविषयकशोकविशिष्टेन मया किमिद व्याहृतम्। कुत्सितमेतदुच्चारितम्। कुत्सितत्वं च ब्राह्मणानुचितव्याधनिस्सारणसूचकत्वेनेति बोध्यम् ॥ १६ ॥

उस पक्षी के जोड़े को देखते और 'मा निषाद' इत्यादि बोलते हुए मुनि के मन में चिन्ता उठी कि इस पक्षी के शोक से पीड़ित होकर मैंने यह पद्यात्मक क्या कह दिया ॥ १६ ॥

धर्म के वेत्ता वाल्मीकि ने शिष्य के साथ आश्रमस्थान में प्रवेश करके आसन पर बैठ और ध्यान में मग्न होकर अनेक कथायें कहीं ॥ २२ ॥

चिन्तयन्स महाप्राज्ञश्चकार मतिमान्मतिम्।
शिष्यं चैवाब्रवीद्वाक्यमिदं स मुनिपुङ्गवः ॥ १७ ॥

चिन्तयन्निति। महाप्राज्ञः महान्तो भरद्वाजादयः प्राज्ञाः ज्ञाननिष्ठाः

यस्मात्। तत्र हेतुः मतिमान् तत्त्वविषयकज्ञाननिष्ठः मतिं चिन्तानिवर्तक-निश्चयं चकार प्रापेत्यर्थः। मुनिपुङ्गवः मुनिश्रेष्ठः स वाल्मीकिः शिष्यं भरद्वाजमिदं वक्ष्यमाणं वाक्यं वचोऽब्रवीत्। चो हेतौ ॥ १७ ॥

बड़े विद्वान्, अच्छी मननशील बुद्धिवाले, विचार करते हुए मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने निश्चय किया और अपने शिष्य से यह बोले ॥ १७ ॥

पादबद्धोऽक्षरसमस्तन्त्रीलयसमन्वितः ।
शोकार्तस्य प्रवृत्तो मे श्लोको भवतु नान्यथा ॥ १८ ॥

पादेति। पादबद्धः पादैः अष्टाक्षरचतुर्भिरशबद्धः संयुक्तः अक्षरसमः। चतुर्ष्वपि पादेषु छन्दश्शास्त्रोक्तयथोचितगुरुलघ्वक्षरविशिष्टः। तन्त्रीलय-समन्वितः तन्त्र्यादिसूचितगानलालित्यसम्पादकलयविशिष्टः। शोकार्तस्य शकुनिविषयकशोकविशिष्टस्य मे प्रवृत्तः। अय श्लोकः अन्यथा कथंचिद-प्यन्यपरः न भवतु ॥ १८ ॥

शोक से पीड़ित मुझसे आरम्भ हुई, चार पादों से युक्त, सम अक्षरवाली वीणा के तन्तु और लय के अनुसार चलनेवाली यह रचना श्लोक (पद्य) अथवा सत्कीर्ति बढ़ानेवाली हो। इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं होगा ॥ १८ ॥

शिष्यस्तु तस्य ब्रुवतो मुनेर्वाक्यमनुत्तमम् ।
प्रतिजग्राह सन्तुष्टस्तस्य तुष्टोऽभवन्मुनिः ॥ १९ ॥

शिष्यस्त्विति। ब्रुवतः कथयतः तस्य प्रसिद्धस्य मुनेः अनुत्तमं न उत्तम-मन्यद्यस्मात्सर्वोत्तममित्यर्थः। वाक्यं रघुनाथवर्णनपर एव मा निषादेति श्लोकः नान्यपर इत्येतद्वचनम्। सन्तुष्टः परमसन्तोषं प्राप्तः। शिष्यो भरद्वाजः प्रतिजग्राह। निश्शेषतो ज्ञातवानित्यर्थः। तेन हेतुना गुरुः वाल्मीकिः तस्य शिष्यस्योपरि तुष्टोऽभवत्। एतेन तद्वस्तुनो दुर्ज्ञेयत्वं सूचितम्। तेन भरद्वाजस्य बुद्धिमत्तातिशयो व्यञ्जितः। तुशब्दो हेत्वर्थः। अनुत्तमं वाक्य-मित्यस्यार्थिकस्सम्बन्धो ब्रुवत इत्यत्रास्तीति बोध्यम् ॥ १९ ॥

उस मुनि के शिष्य भरद्वाज ने बोलते हुए मुनि के अत्युत्तम वचन को ग्रहण किया इससे उसके गुरु मुनि सन्तुष्ट हुए ॥ १९ ॥

सोऽभिषेकं ततः कृत्वा तीर्थे तस्मिन्यथाविधि ।
तमेव चिन्तयन्नर्थमुपावर्तत वै मुनिः ॥ २० ॥

स इति। ततः सन्तोषप्राप्त्यनन्तरम् तस्मिन् वर्णितकर्दमरहितत्वादि-

धर्मविशिष्टे तीर्थे पावनहेतुभूततमसाजले एव स मुनिः यथाविधि विधिमनतिक्रम्य अभिषेकं स्नानं कृत्वा तं मा निषादेत्यनेन प्रतिपादितमथं काण्डसप्तकसंक्षिप्तकथां चिन्तयन् विचारयन्नेव उपावर्तत स्वाश्रममागच्छत्। एतेन तदर्थस्य मनोहरत्वं व्यक्तम्। वैशब्द एवार्थे ॥ २० ॥

इसके बाद उस मुनि ने उस तीर्थ में विधिवत् स्नान किया और उसी श्लोक के अर्थ का चिन्तन करते हुए लौट आये ॥ २० ॥

भरद्वाजस्ततः शिष्यो विनीतः श्रुतवान्गुरोः।
कलशं पूर्णमादाय पृष्ठतोऽनुजगाम ह ॥ २१ ॥

भरद्वाज इति। ततः गुरोरुपावर्तनानन्तरम्। विनीतः विनयसम्पन्नः श्रुतवान् यथावद् गुरूक्ततत्त्वं ग्रहीता। मा निषादेत्येतच्छ्लोकगूढार्थं परिज्ञातेत्यर्थः। अत एव मुनिः तदर्थमननशीलः शिष्यो भरद्वाजः पूर्णं जलपूरितं कलशमादाय गृहीत्वा पृष्ठतः गुरोः पश्चादनुजगाम। अन्तररहितगमनं चकारेत्यर्थः। ह इति हर्षे ॥ २१ ॥

तदनन्तर विनीत और शास्त्रज्ञ, शिष्य भरद्वाज गुरु के पूर्ण कलश को लेकर उनके पीछे-पीछे चले ॥ २१ ॥

स प्रविश्याश्रमपदं शिष्येण सह धर्मवित्।
उपविष्टः कथाश्चान्याश्चकार ध्यानमास्थितः ॥ २२ ॥

स इति। आश्रमपदं श्रमनिवर्तकस्वाश्रयं शिष्येण भरद्वाजेन सहैव प्रविश्य उपविष्टः सुखासननिविष्टः धर्मवित् परमधर्मं वेदिता। अत एव ध्यानमास्थितः रघुनाथस्मरणपरायणः स मुनिः। अन्याः रघुनाथसम्बन्धशन्याः कथाः उक्तीः चकार तत्याज। अत एव ध्यानेन सह अन्याः कथाश्चकारेत्यस्य न विरोधः। विक्षेपार्थककृधातोः रूपम्। चशब्द एवार्थे ॥ २२ ॥

आजगाम ततो ब्रह्मा लोककर्ता स्वयंप्रभुः।
चतुर्मुखो महातेजा द्रष्टुं तं मुनिपुङ्गवम् ॥ २३ ॥

आजगामेति। ततः ध्यानस्थित्यनन्तरम्। लोककर्ता भुवनस्य निर्माता प्रभुः समर्थः चतुर्मुखः चत्वारि चतुर्वेदप्रादुर्भावहेतुभूतानि मुखानि यस्य। अत एव महातेजाः परमतेजस्वी ब्रह्मा तं नारदोपदिष्टं मुनिपुङ्गवं द्रष्टुं स्वयमाजगाम। एतेन नारदोपदिष्टार्थस्य मनोहरत्वं व्यञ्जितम् ॥ २३ ॥

तदनन्तर लोक के रचयिता, सबके स्वामी, चारमुखवाले, बड़े तेजस्वी ब्रह्मा मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि को देखने आये ॥ २३ ॥

वाल्मीकिरथ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय वाग्यतः ।
प्राञ्जलिः प्रयतो भूत्वा तस्थौ परमविस्मितः ॥ २४ ॥

वाल्मीकिरिति । अथ ब्रह्मागमनानन्तरम् । वाग्यतः रघुनाथस्मरणपरायणत्वान्निर्वर्तितवचनान्तरः अत एव प्रयतः यतचित्तः वाल्मीकिः तं ब्रह्माणं दृष्ट्वा परमविस्मितः सन् सहसा त्वरया उत्थाय प्राञ्जलिः बद्धकरो भूत्वा तस्थौ । परमविस्मित इत्यनेन तात्कालिकब्रह्मागमनहेतुर्न ज्ञात इति हेतुर्ध्वनितः ॥ २४ ॥

वाल्मीकि ब्रह्मा को देख, शीघ्रता से उठ, मौन होकर, अत्यन्त विस्मित और सावधान हो, हाथ जोड़कर खड़े हो गए ॥ २४ ॥

पूजयामास तं देवं पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः ।
प्रणम्य विधिवच्चैनं पृष्ट्वा चैव निरामयम् ॥ २५ ॥
अथोपविश्य भगवानासने परमार्चिते ।
वाल्मीकये च ऋषये सन्दिदेशासनं ततः ॥ २६ ॥

पूजयामासेति । तं पुरःस्थितं देवं ब्रह्माणं प्रणम्य नमस्कृत्य पाद्यार्घ्यासनवन्दनैः पाद्यार्घ्यजलसमर्पणासनस्थापनस्तुतिभिर्विधिवत् यथाविधि पूजयामास । अथ वाल्मीकिकृतपूजाप्राप्त्यनन्तरम् । एनं वाल्मीकिमव्ययं निरवच्छिन्नम् अनामयं रोगादिराहित्यं पृष्ट्वा परमार्चिते अतिपूजिते आसने उपविश्य भगवान् षडैश्वर्यसम्पन्नः अत एव ततः स्वतेजसा व्याप्तो ब्रह्मा ऋषये परममन्त्रद्रष्ट्रे वाल्मीकये आसनं सन्दिदेश आसने स्थातुमाज्ञापयामासेत्यर्थः । ब्रह्मकर्तृकासनाज्ञापनेनायमृषिः सर्वश्रेष्ठ इति हेतुर्ध्वनितः । तेन रघुनाथचिन्तनस्य अतिपूज्यत्वसम्पादकत्वं ध्वनितम् । द्वयोरेकत्रान्वयः ॥ २५-२६ ॥

(वाल्मीकि ने) ब्रह्मा की पाद्य, अर्घ्य, आसन और वन्दना द्वारा पूजा की और विधिपूर्वक प्रणाम करके इनसे नीरोगता (कुशल) पूछी । तदनन्तर भगवान् ब्रह्मा ने परमपूजित आसन पर बैठकर ऋषि वाल्मीकि को भी आसन पर बैठने की आज्ञा दी ॥ २५–२६ ॥

ब्रह्मणा समनुज्ञातः सोऽप्युपाविशदासने ।
उपविष्टे तदा तस्मिन्साक्षाल्लोकपितामहे ॥ २७ ॥
तद्गतेनैव मनसा वाल्मीकिर्ध्यानमास्थितः ।

ब्रह्मणेति । तदा तस्मिन्काले ब्रह्मणा समनुज्ञातः आसने उपवेष्टुं ब्रह्माज्ञां सम्प्राप्तः । स वाल्मीकिरपि आसने उपाविशत् तस्थौ । लोकपितामहे सर्वोत्पत्तिहेतुभूते तस्मिन्ब्रह्मणि साक्षात् प्रत्यक्षतया उपविष्टे आसने उपवेशिते सति तद्गतेन रघुनाथचरिताविष्टेनैव मनसा वाल्मीकिः ध्यानं स्वकृतमानिषादेति श्लोकस्मरणमास्थितः प्राप्तः । आसीदिति शेषः । उपविष्ट इत्यत्र अन्तर्भावितणिजर्थः । सार्द्धश्लोक एकान्वयो ॥ २७ ॥

ब्रह्मा की आज्ञा पाकर वाल्मीकि भी आसन पर बैठ गए । उस समय लोकपितामह ब्रह्मा के प्रत्यक्षतया आसन पर बैठ जाने के बाद वाल्मीकि मुनि क्रौञ्च के मरण रूप कर्म में लगे मन से ध्यान में स्थित हो गए ॥ २७ ॥

पापात्मना कृतं कष्टं वैरग्रहणबुद्धिना ॥ २८ ॥

व्याधनिवर्तनकाण्डसप्तकप्रतिपिपादयिषितरघुनाथचरितसंक्षिप्तवर्णनोभयसूचकमानिषादेति श्लोकस्य शोभनत्वं निश्चेतुं ब्रह्माणं प्रति पूर्ववृत्तमाह—पापेत्यादिना । पापात्मना पापान्वेषणमनस्केन अत एव वैरग्रहणबुद्धिना वैरग्रहणे वैरकर्मकसम्पादने बुद्धिर्यस्य तेन मया कष्टं कठिनम् । अकर्तव्यमित्यर्थः । कृतं सम्पादितम् ॥ २८ ॥

वैर अथवा पकड़ने की बुद्धिवाले पापी निषाद ने बहुत अनुचित कर्म किया है ॥ २८ ॥

यस्तादृशं चारुरवं क्रौञ्चं हन्यादकारणात् ।
शोचन्नेव पुनः क्रौञ्चीमुपश्लोकमिमं जगौ ॥ २९ ॥

किं तदित्याह—य इत्यादिना । यः व्याधः चारुरवं मनोहरशब्दं तादृशं पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टं क्रौञ्चमकारणाद्धन्यात् अहन् तस्य उप समीपे क्रौञ्चो शोचन्नेव अहमिमं द्व्यर्थकं मानिषादेति श्लोकं जगौ अवदम् । 'बहु जगद पुरस्तात्तस्य मत्ता किलाहम्' इतिवल्लिट्प्रयोगः ॥ २९ ॥

जो कि कामासक्त और सुन्दर शब्द बोलने वाले क्रौञ्च पक्षी के मारने में अकारण-प्रवृत्त हुआ है । उसने उस क्रौंची को सोचते हुए इस (मा निषाद) श्लोक का गान किया ॥ २९ ॥

पुनरन्तर्गतमना भूत्वा शोकपरायणः ।
तमुवाच ततो ब्रह्मा प्रहसन्मुनिपुङ्गवम् ॥ ३० ॥

पुनरिति । पुनस्तदनन्तरम् । अन्तर्गतमनाः अन्तः अन्तरङ्गार्थे गतं निविष्टं मनो यस्य तादृक् शोकपरायणः शोकात्परः सकारणशोकसम्बन्धशून्यः नारदोपदिष्टरघुनाथः तस्मिन्नयनं स्थितिर्यस्य स आसीदिति शेषः । ततः वाल्मीक्युक्तिश्रवणानन्तरं मुनिपुङ्गवं मुनिश्रेष्ठं तं वाल्मीकिं ब्रह्मा प्रहसन्नुवाच । प्रहसन्नित्यनेन मा निषादेति श्लोको रघुनाथपर एवेति ब्राह्मणाज्ञातमित्यभिप्रायः सूचितः । तेन रघुनाथस्मरणप्रतिबन्धकनिवर्तनमपि रघुनाथकथैवेति हेतुर्ध्वनितः ॥ ३० ॥

फिर मानसिक वृत्ति को भीतर की ओर ले जाकर वाल्मीकि शोकमग्न हो गए । तब हँसते हुए ब्रह्मा ने उस मुनिश्रेष्ठ से कहा ॥ ३० ॥

श्लोक एव त्वया बद्धो नात्र कार्या विचारणा ।
मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेयं सरस्वती ॥ ३१ ॥

तद्वचनाकारमाह—श्लोक इति । हे ब्रह्मन् वेदतत्त्वार्थवेत्तः ! मच्छन्दात् मह्यं मत्कल्याणार्थं छन्दःप्रादुर्भावे सङ्कल्पो यस्य स रामः तस्मात् छन्दश्शब्दस्य सङ्कल्पपरत्वं नागोजिभट्टैरपि व्याख्यातम् । किञ्च मता स्वविषयकज्ञानेन शं परं कल्याणं ददातीति मच्छन्दो रघुनाथस्तस्मात्तदिच्छात एवेत्यर्थः । ते तव इयं सक्षिप्तकाण्डसप्तकार्थप्रतिपादिका सरस्वती प्रवृत्ता अतः श्लोकः परमयशःकारणभूतरघुनाथप्रतिपादक एवायं त्वया बद्धः श्लोकरूपेण सम्पादितोऽस्ति अतोऽत्र विषये विचारणा अन्यपरोऽप्ययं श्लोकः सम्भवति न वेति विचारो न कार्यः । 'एवास्त्वयं बद्ध' इति भट्टसम्मतः पाठः ॥ ३१ ॥

यह (तुम्हारे मुख से निकला हुआ) श्लोक ही है, इसमें विचार नहीं करना चाहिए । हे ब्रह्मन् ! मेरी ही इच्छा से यह वाणी तुम्हारे मुख से प्रकट हुई है ॥ ३१ ॥

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम ।
धर्मात्मनो गुणवतो लोके रामस्य धीमतः ॥ ३२ ॥
वृत्तं कथय वीरस्य यथा ते नारदाच्छ्रुतम् ।

रामस्येति । हे ऋषिसत्तम ! अतः कृत्स्नं यावत्स्वबुद्धिविषयीभूतं

रामस्य चरितं त्वं कुरु वर्णय । अर्द्धं पृथगन्वयि । तदेव विशदयन्नाह—धर्मेत्यादिना । धर्मात्मनः धर्मेभ्यः पित्राज्ञापितविश्वामित्रसेवनादिवनगमनादिरूपयोः आत्मा यत्नो यस्य इत्यनेन बालायोध्याकाण्डसंक्षिप्तार्थसूचनम् । गुणवतः मुनिमोहकरूपादिविशिष्टस्य अनेनारण्यकाण्डार्थसङ्क्षिप्तसूचनम् । धीमतः सुग्रीवसख्यकरणकृतोपकृतिको हनुमान् मत्प्राणसम एवेत्यादिविषयकनिश्चयविशिष्टस्य अनेन किष्किन्धासुन्दरकाण्डकथासङ्क्षिप्तसूचनम् ॥ ३२ ॥

वीरस्य शत्रुनिबर्हणराज्यकरणाश्वमेधादिकसामर्थ्यविशिष्टस्य रामस्य अनेन युद्धोत्तरकाण्डकथासङ्क्षिप्तसूचनम् । लोके वृत्तमाचरितं यथा येन प्रकारेण नारदात्ते तव श्रुतं तेन प्रकारेण कथय वर्णय । धीरस्येति पाठे तु धियः रावणादीनामयोध्याप्रजानां च ब्रह्मादीनां च बुद्धीः ईरयतीति प्रेरयतीति धीरस्तस्येत्यर्थः । अनेनापि काण्डद्वयार्थसङ्ग्रहः स्पष्ट एव ॥३२॥

अतः हे ऋषिश्रेष्ठ ! तुम श्रीराम के समस्त चरितों का वर्णन करो। धर्मात्मा, बुद्धिमान् और धीर राम के लोक में चरित का वर्णन करो, जैसा तुमने नारद से सुना है ॥ ३२ ॥

रहस्यं च प्रकाशं च यद्‍ वृत्तं तस्य धीमतः ॥ ३३ ॥
रामस्य सहसौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः ।
वैदेह्याश्चैव यद्वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः ॥ ३४ ॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति ।

काव्यकरणहेतुभूतवर्णनीयपदार्थवेदितृत्वं ते मत्प्रसादादपि भविष्यतीत्याह—रहस्यञ्चेत्यादिश्लोकद्वयेन। धीमतः मत्प्रार्थनास्वीकारविषयकनिश्चयविशिष्टस्य सहसौमित्रेः सुमित्रानित्यपुत्रलक्ष्मणसहितस्य तस्य अवाङ्मनसगोचरस्य रामस्य रहस्यं तदितराविदितं प्रकाशं जनान्तरप्रसिद्धं च यद्वृत्तमाचरितं राक्षसानां रावणादीनां च सर्वशः सर्वं विदिताविदितं यद्वृत्तं वैदेह्याः विदेहप्रादुर्भूतसीतायाश्च प्रकाशं रहो वा यदि यद्वृत्तं तत्सर्वं ते अविदितं त्वन्निष्ठज्ञानाविषयीभूतमपि विदितं त्वन्निष्ठज्ञानाविषयीभूतमेव भविष्यति। चकारेणायोध्यायाः विदिताविदितत्वविश्वामित्रादिचेष्टितत्वादिजनकयागगतराजादीनां चेष्टितत्वादि अन्येषामपि वर्णनीयानां चेष्टितत्वादिकं ते विदितं भविष्यतीत्यर्थः । श्लोकद्वयमेकान्वयि ॥ ३३–३४ ॥

लक्ष्मणसहित बुद्धिमान् श्रीराम के और रावण आदि राक्षसों के सब चरित जो गुप्त और प्रकट हैं, विदेह की पुत्री सीता का भी गुप्त तथा और जो लोगों को अभी तक विदित नहीं है वह सब चरित तुम्हें विदित हो जायेगा ॥३३-३४॥

न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति ॥ ३५ ॥
कुरु रामकथां पुण्यां श्लोकबद्धां मनोरमाम् ।

काव्यकरणप्रवृत्त्यर्थमृषिं प्रोत्साहयन्नाह—न त इत्यादिना। अत्र चिकीर्षिते काव्ये काचिदपि ते वाक् तवोक्तिः अनृता असम्भावितार्था न भविष्यति। अतः मनोरमामन्तःकरणाकर्षिकां श्लोकबद्धां पद्यरूपां दिव्यां प्राकृतभिन्नां रामकथां कुरु प्रकटय। अत्र वाल्मीकिप्रार्थनामन्तरेणैव एतद्ब्रह्मोक्त्या रामकथाप्रियत्वं ब्रह्मणो व्यक्तम् ॥ ३५ ॥

इस काव्य में तुम्हारा कोई भी वचन मिथ्या नहीं होगा। अतः तुम पवित्र, श्लोकबद्ध, मनोरम राम की कथा वर्णन करो ॥ ३५ ॥

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥ ३६ ॥
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।

यावदिति। महीतले यावत्कालं गिरयः पर्वताः सरितो नद्यश्च स्थास्यन्ति तावत्कालं रामायणकथा लोकेषु चतुर्दशसु भुवनेषु प्रचरिष्यति प्रचारं प्राप्स्यति। अत्र सरिद्-गिरिरहितमहीतलोपलम्भकावस्थायाः अनुपलम्भात्। 'यावत्स्थास्यन्ति गिरयः' इत्याद्युक्तिर्महाप्रलयपर्यन्तकालोपलक्षिका। यद्वा अलोकेषु प्राकृतलोकविलक्षणेषु वैकुण्ठादिषु गीयमाना रामायणकथा यावत्कालं गिरयः पर्वताः सरितो नद्यश्च स्थास्यन्ति तावत्कालं महीतले प्रचरिष्यति त्वन्नाम्ना प्रचारं प्राप्स्यति अत एव महीतले इत्यस्य न वैयर्थ्यम् ॥ ३६ ॥

जब तक पृथ्वी पर पर्वत और नदियाँ स्थित हैं तब तक लोक में रामायण-कथा का प्रचार रहेगा ॥ ३६ ॥

यावद्रामस्य च कथा त्वत्कृता प्रचरिष्यति ।
तावदूर्ध्वमधश्च त्वं मल्लोकेषु निवत्स्यसि ॥ ३७ ॥

यावदिति। त्वत्कृता त्वया सम्पादिता रामायणकथा रामपर्यवसानकप्रबन्धो यावत्कालं प्रचरिष्यति तावत्कालं ऊर्ध्वगतिः सर्वत्राप्रतिहतगमनस्त्वं मल्लोकेषु मम लोको दर्शनं येषु तेषु स्थानेषु निवत्स्यसि स्वसमीपे

एव त्वां निवासयिष्यामीत्यर्थः। एतेन वाल्मीकमुखानिस्सृतरामायणकथा-तिशुश्रूषा ब्रह्मणोऽस्तीति ध्वनितम्। च शब्दात्सर्वत्र लाभः॥ ३७॥

जब तक तुम्हारी रची हुई श्रीराम की कथा का प्रचार रहेगा तब तक तु ऊपर और नीचे मेरे सब लोकों में निवास करोगे॥ ३७॥

इत्युक्त्वा भगवान्ब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत।
ततः सशिष्यो भगवान्मुनिर्विस्मयमाययौ॥ ३८॥

इतीति। भगवान् षडैश्वर्यसम्पन्नो ब्रह्मा इति इदमुक्त्वा तत्रैव वाल्मीकिस्थाने एष अन्तरधीयत तिरोदधौ। तत्रैवान्तरधीयत इत्यनेन रघुनाथकथास्थानत्यागासहिष्णुतां तस्य ध्वनितम्। तेन रामकथाविषयक प्रेमातिशयस्तस्य सूचितः। ततः ब्रह्मान्तर्धानानन्तरम्। सशिष्यः भरद्वाजादिसहितः मुनिः ब्रह्मोक्तिमननशीलः वाल्मीकिः विस्मयमाश्चर्यं माययौ प्राप॥ ३८॥

ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा वहाँ (आसन पर ही) अन्तर्धान हो गए। इसके बाद शिष्य के साथ मुनि भगवान् विस्मित हो उठे॥ ३८॥

तस्य शिष्यास्ततः सर्वे जगुः श्लोकमिमं पुनः।
मुहुर्मुहुः प्रीयमाणाः प्राहुश्च भृशविस्मिताः॥ ३९॥

तस्येति। ततः मुनिविस्मयप्राप्त्यनन्तरम्। तस्य वाल्मीकस्य सर्वे भरद्वाजादयः शिष्याः मुहुर्मुहुः प्रीयमाणाः गुरुप्रीतिविषयतां प्राप्नुवन्तः सन्तः इमं मा निषादेति श्लोकं पुनर्जगुः भृशविस्मिता अत्यन्तविस्मयं प्राप्ताश्च प्राहुः इदमत्यद्भुतमित्युच्चारणं चक्रुरित्यर्थः। एतेन तेषामानन्दातिशयः सूचितः॥ ३९॥

इसके बाद वाल्मीकि के सब शिष्यों ने इस श्लोक (मा निषाद) का भी बार-बार प्रसन्न होकर गान किया और अत्यन्त विस्मित होकर बोले॥ ३९॥

समाक्षरैश्चतुर्भिर्यः पादैर्गीतो महर्षिणा।
सोऽनुव्याहरणाद् भूयः श्लोकः श्लोकत्वमागतः॥ ४०॥

श्लोकमहत्त्वं द्योतयन्नाह—समेत्यादिना। समानि न्यूनाधिकरहितानि अक्षराणि येषु तैश्चतुर्भिः पादैः यः श्लोको महर्षिणा वाल्मीकिना गीतः सः श्लोकः अनुव्याहरणात् शिष्यकर्तृकनिरन्तरपठनाद् भूयो महच्छ्लोकत्वं यशःसम्पादकत्वादिश्लोकधर्ममागतः प्राप्तः। शोक इति पाठे तु शोकः

निमित्तत्वेनास्याऽस्तीति। अर्शआद्यजन्तः शोकापनोदहेतुकः श्लोक इत्यर्थः। अन्यत्समानम् ॥ ४० ॥

समान अक्षर वाले चार पादों में महर्षि वाल्मीकि ने जो गाया है वह महान् शोक बाद में शिष्यों द्वारा उच्चरित होने से श्लोकत्व को प्राप्त हो गया ॥४०॥

तस्य बुद्धिरियं जाता महर्षेर्भावितात्मनः।
कृत्स्नं रामायणं काव्यमीदृशैः करवाण्यहम् ॥ ४१ ॥

तस्येति। भावितात्मनः भावितः परिशीलितः आत्मा येन तस्य वाल्मीकेरियं बुद्धिर्निश्चयः जाता तत्स्वरूपमाह—ईदृशैः मा निषादेति-वद्गानयोग्यैः पद्यैः काव्यं सद्यःपरनिर्वृत्यादिसम्पादकं रामायणं राममात्र-पर्यवसानकं कृत्स्नं सम्पूर्णमहं करवाणि। परनिर्वृत्यादयश्च 'काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मित-तयोपदेशयुजे' इति काव्यप्रकाशपद्यतोऽवगन्तव्याः ॥ ४१ ॥

शुद्ध अन्तःकरण वाले उन वाल्मीकि मुनि के मन में ऐसी बुद्धि हुई कि सम्पूर्ण रामायण काव्य का मैं ऐसे ही श्लोकों से निर्माण करूँ ॥ ४१ ॥

उदारवृत्तार्थपदैर्मनोरमैस्तदास्य रामस्य चकार कीर्तिमान्।
समाक्षरैः श्लोकशतैर्यशस्विनो यशस्करं काव्यमुदारदर्शनः ॥४२॥

उदारेति। तदा ब्रह्मान्तर्धानोत्तरकाले। उदारधीः उदारा दुर्ज्ञेय-पदार्थप्रतिपादकत्वेन महती धीरस्येति सः। अत एव कीर्तिमान्प्रशस्ता कीर्तिरस्येति सः। मुनिर्वाल्मीकिः। समाक्षरैः समानि तुल्यानि चतुर्ष्वपि पादेषु अक्षराणि येषु तैः। उदारवृत्तार्थपदैः उदाराः अभीष्टार्थदातारो वृत्तार्था रघुनाथाचरितरूपार्था येषु तान्येव पदानि तैः। अत एव मनोरमैः मनोहरैः श्लोकशतैः वक्ष्यमाणानुरोधेन चतुर्विंशतिसहस्र-सङ्ख्यासङ्ख्यातश्लोकैर्यशस्विनो न्यूनाधिकरहितकीर्तिविशिष्टस्यास्य रामस्य यशस्करं कीर्तिसम्पादक काव्यं दोषरहितालङ्कारसहितशब्दार्थक-प्रबन्धं चकार रचयामास। 'उदारो दातृमहतोः' इति कोशादुदारशब्दस्य उभयपरत्वम् ॥ ४२ ॥

तब बड़ी कीर्ति और उत्तम बुद्धि वाले वाल्मीकि ने मनोरम छन्द, अर्थ और पदों से युक्त, समान अक्षर वाले श्लोकशतों से यशस्वी श्रीराम का यश बढ़ाने वाला रामायण नाम का काव्य रचा ॥ ४२ ॥

तदुपगतसमाससन्धियोगं सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ।
रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम् ॥४३॥

सावधानसम्पत्त्यर्थं शिष्यानाह—तदित्यादिना । उपगतसमाससन्धियोगम् उपगता यथाशास्त्रं स्थापिताः समासास्तत्पुरुषादयः सन्धयो यणादयः योगाः प्रकृतिप्रत्ययसम्बन्धाः यस्मिन् तत् । सममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धं सममेतत्प्रकर्षादि दोषरहितं मधुरं प्रधानीभूतश्‍ृङ्गारादिरससहितं तयोः समाहारः सममधुरम्, उपनतः सहृदयैः प्रसन्नतयोपलभ्यमानोऽर्थो यस्य तदेव तदिति कर्मधारयः तेन बद्धं संयुक्तम् । मुनिना वाल्मीकिना प्रणीतं तत्प्रसिद्धं रघुवरचरितं काण्डसप्तात्मकं दशशिरसो रावणस्य वधं च निशामयध्वं श्रृणुत । गोबलीवर्दन्यायेन पुना रावणवधोपादानम् । किञ्च दशशिरसो वधं वधविशिष्टं रघुवरचरितं श्रृणुतेत्यर्थः । नित्यसापेक्षत्वादेकदेशेऽन्वयः । एतेन दशशिरसो वधं वधपर्यन्तमित्यर्थः प्रयुक्तः गमकमन्तरेण लक्षणाया अयुक्तत्वात् ॥ ४३ ॥

समास, सन्धि और प्रकृति-प्रत्यय-सम्बन्ध रूप योग से ७ युक्त सम (पतत्प्रकर्षता दोषरहित) मधुर और सहृदयों द्वारा प्रसन्नता से उपलभ्यमान अर्थ (श्रृङ्गार) वाले वाक्यों से रचित मुनि के द्वारा प्रणीत दश शिर वाले रावण के वध का श्रवण करो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥



द्वितीयः सर्गः

श्रुत्वा वस्तु समग्रं तद्धर्मार्थसहितं हितम्।
व्यक्तमन्वेषते भूयो यद्वृत्तं तस्य धीमतः॥ १॥

मुनिवृत्तमाह—श्रुत्वेत्यादि। धर्मार्थसहितं धर्मो रघुनाथाश्रयणमेवार्थः परमपुरुषार्थस्तेन सहितम् अत एव हितं सर्वोपकारकं समग्रं सम्पूर्णं वस्तु श्रुत्वा नारदब्रह्मणोरुपदेशादवगत्य धीमतः बुद्धिविशिष्टस्य तस्य श्रुतितात्पर्यविषयीभूतस्य रघुनाथस्य व्यक्तमिह लोकेऽपि प्रकटीभूतं यद्भूयो विस्तृतमाचरितं तदन्वेषते व्यचारयत्। 'वर्तमानसामीप्ये भूते भविष्यति च वर्तमानवद्वा' इति लट्प्रयोगः॥ १॥

(वाल्मीकि ने) हितकर तथा धर्म और अर्थ से युक्त समग्र वस्तु (कथावस्तु) सुनकर बुद्धिमान् श्रीराम के वृत्तान्त को पुनः व्यक्तरूप से जानने के लिये उद्योग किया॥ १॥

उपस्पृश्योदकं सम्यङ्मुनिः स्थित्वा कृताञ्जलिः।
प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु धर्मेणान्वेषते गतिम्॥ २॥

उपेति। मुनिः नारदापदिष्टतत्त्वमननशीलो वाल्मीकिः सम्यग्यथाविधि। उदकमुपस्पृश्य आचम्य प्राचीनाग्रेषु दर्भेषु स्थित्वा कृताञ्जलिः प्रार्थनासूचकबद्धयुगलकरः सन् धर्मेण वेदबोधितकर्मणोपलक्षितामित्यध्याहारः। गतिं सीतारामाचरितमन्वेषते व्यचारयत्॥ २॥

मुनि ने, अच्छे प्रकार से आचमन कर, हाथ जोड़ स्थित हो, पूर्व दिशा की ओर अग्रभाग वाले कुशों पर बैठकर, धर्म के अनुसार राम के वृत्तान्त का विचार किया॥ २॥

रामलक्ष्मणसीताभी राज्ञा दशरथेन च।
सभार्येण सराष्ट्रेण यत्प्राप्तं तत्र तत्त्वतः॥ ३॥
हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत्सर्वं धर्मवीर्येण यथावत्सम्प्रपश्यति॥ ४॥

विचारोत्तरकाले विचारविषयीभूतवस्तुसाक्षात्कारो जात इत्याह—

रामेत्यादि श्लोकद्वयेन । रामलक्ष्मणसीताभिस्तत्रायोध्यायां प्राप्तं प्रकटितं यद्धसितं हसनं भाषितं वचनरचना गतिः गमनम् अन्यच्च यावच्चेष्टितं दातृत्वादि तत्सर्वं धर्मवीर्येण रघुनाथस्मरणरूपबलेन यथावद्यथाकामं तत्त्वतः मायाराहित्येन सम्प्रपश्यति सम्यगजानात् । सराष्ट्रेण राज्यसहितेन सभार्येण कौशल्यादिसहितेन दशरथेन राज्ञा च यत्प्रकटतः प्राप्तं हसितत्वादि भाषितं यथावत्सम्प्रपश्यति पश्यतीत्युक्त्या पुनर्नं तद्विस्मृतिरिति ध्वनितम् ॥ ३–४ ॥

श्रीराम, लक्ष्मण, सीता और राजा दशरथ ने भार्या और राष्ट्र के साथ तत्त्व से जो प्राप्त किया था तथा हँसना, बोलना, चलना और जितनी भी चेष्टायें थीं उन्हें योगबल से यथावत् देख लिया ॥ ३–४ ॥

स्त्रीतृतीयेन च तथा यत्प्राप्तं चरता वने ।
सत्यसन्धेन रामेण तत्सर्वं चान्ववेक्षत ॥ ५ ॥

अयोध्यावृत्तसाक्षात्कारानन्तरं वनवृत्तविचारमाह—स्त्रीतृतीयेनेति । स्त्री सीता तृतीया यस्य सीतालक्ष्मणसहितेनेत्यर्थः । सत्या सन्धा प्रतिज्ञा यस्य तेन । वने चरता वनगमनशीलेन रामेण यत्प्राप्तं प्रकटीकृतं चरितं तत्सर्वं तथैव अन्ववेक्षितं वाल्मीकिना विचारितमित्यर्थः । चशब्द एवार्थः ॥५॥

सत्य-प्रतिज्ञा वाले राम ने लक्ष्मण और सीता के साथ वन में भ्रमण करते हुए जो प्राप्त किया वह सब कुछ देख लिया ॥ ५ ॥

ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः ।
पुरा यत्तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा ॥ ६ ॥

विचारोत्तरकाले तत्साक्षात्कारो जात इत्याह—तत इत्यादिना । ततः विचारानन्तरं धर्मात्मा धर्मे आत्मा मनो यस्य । अत एव योगमुपासनोपायमास्थितः प्राप्तः मुनिः तत्र अयोध्यादौ यन्निर्वृत्तं लक्ष्मणसीतारामाचरितं तत्सर्वं पाणावामलकं यथा पाणिगतधात्रीफलमिव पुरा पूर्वं पश्यति तत्त्वतोऽजानादित्यर्थः ॥ ६ ॥

तदनन्तर योग में बैठे हुए धर्मात्मा (मुनि) ने जो घटनायें पहिले घटी थीं उस सब को हाथ में रखे हुए आंवले की भाँति देखा ॥ ६ ॥

तत्सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः ।
अभिरामस्य रामस्य तत्सर्वं कर्तुमुद्यतः ॥ ७ ॥

रघुनाथवर्णनीयसर्ववृत्तसाक्षात्कारोत्तरकालिक वृत्तमाह—तदित्यादिना। महाद्युतिः अतिप्रकाशयुक्तः स वाल्मीकिः अभिरामस्य सर्वाभिरामहेतोः रामस्य धर्मेण वेदबोधितकर्मत्वेन उपलक्षितमिति शेषः। तत्प्रसिद्धं सर्वं निर्वर्णयिष्यमाणनिखिलरघुनाथचरितं तत्त्वतो मायाराहित्येन दृष्ट्वा ज्ञात्वा कर्तुं चरितं वर्णयितुमुद्युक्तः उद्योगवानासीदित्यर्थः। महाद्युतिरित्युक्त्या रघुनाथसाक्षात्कारस्य प्रभावातिशयः सूचितः। महामतिरिति पाठे तु महती समाधिकशून्या मतिर्यस्येत्यर्थः॥ ७॥

बड़ी मतिवाले मुनि वह सब कुछ धर्म (योग) से यथावत् देखकर बड़े मनोहर राम के उन समस्त चरितों का वर्णन करने के लिए उद्यत हुए ॥७॥

कामार्थगुणसंयुक्तं धर्मार्थगुणविस्तरम्।
समुद्रमिव रत्नाढ्यं सर्वश्रुति-मनोहरम्॥ ८॥
स यथाकथितं पूर्वं नारदेन महात्मना।
रघुवंशस्य चरितं चकार भगवान्मुनिः॥ ९॥

कामेति। रत्नाढ्यं रत्नपरिपूर्णं समुद्रमिव। रत्नपरिपूर्णसमुद्रसदृशमित्यर्थः। कामार्थगुणसंयुक्त कामार्थगुणः कामश्च अर्थश्च गुणशब्देन कामार्थगुणवत्तासम्पादको धर्म उच्यते स च ते कामार्थगुणाः तैः सयुक्तं यथाकामम्। कामार्थधर्मदायकमित्यर्थः। धर्मार्थगुणविस्तर धर्मार्थयोर्गुणत्वसम्पादको मोक्ष इत्यर्थः। तं विस्तृणाति परिपूरयति तत्। सर्वश्रुति सर्वाः श्रुतयस्तात्पर्यवृत्त्या प्रतिपादकत्वेन यस्मिन् तत् अत एव मनोहरं सदयहृदयापकर्षकं रघुवंशस्य चरितं महर्षिणा नारदेन यथा येन प्रकारेण पूर्वं कथितं तेन प्रकारेण ऋषिर्वेदतत्त्वज्ञः अत एव भगवान् रघुनाथज्ञानरूपैश्वर्यविशिष्टः स वाल्मीकिश्चकार वर्णयामासेत्यर्थः। द्वयोरेकत्रान्वयः। समुद्रमिव रत्नाढ्यमित्युपमालङ्कारेण यथा समुद्रे रत्नानि सुकृतमहायत्नलभ्यानि तथा वेदे रघुनाथचरितान्यपि सुकृतमहायत्नलभ्यानीत्युपमालङ्कारो ध्वनितः तेन रघुनाथाचरितं सद्गुरुकृपयैव लभ्यमिति सद्गुरुराश्रयणीय इति वस्तु व्यक्तम्॥ ८–९॥

जो चरित काम नाम के पुरुषार्थ के गुण (फल) से युक्त है, धर्म नाम के पुरुषार्थ के गुण (फल) से विस्तार को प्राप्त है, रत्न से भरे समुद्र की भाँति गुण, अलङ्कार और व्यङ्ग्यरूपी रत्नों से सम्पन्न है और समस्तजनों की श्रुति

(कान) और मन को हर लेने वाला है, उस रघुवंश के चरित को जैसा महात्मा नारद ने पहिले कहा था वैसे ही भगवान् मुनि वाल्मीकि ने वर्णित किया ॥ ८–९ ॥

जन्म रामस्य सुमहद्वीर्यं सर्वानुकूलताम् ।
लोकस्य प्रियतां क्षान्तिं सौम्यतां सत्यशीलताम् ॥ १० ॥

रघुनाथचरितमेव सङ्क्षेपेणाह–जन्मेत्यादिभिरासर्गम् । रामस्य साकेताधीशरघुनाथस्य जन्म ब्रह्मप्रार्थनाहेतुकं प्रादुर्भावं सुमहत्सुमहत्त्वम् ईश्वरेश्वरत्वमित्यर्थः । वीर्यं समातिशयशून्यपराक्रमं सर्वानुकूलतां सर्वहितकारकत्वं लोकस्य प्रियतां लोकनिष्ठप्रीतिविषयत्वं क्षान्तिं जनकृतापराधादशंकत्वं सौम्यतां सर्वप्रियदर्शकत्वं सत्यशीलतां सत्यस्वभावत्वं वाल्मीकिश्चकार वर्णयामासेत्यर्थः । एकोनत्रिंशत्तमेनान्वयः । सुमहदिति भावप्रधानो निर्देशः ॥ १० ॥

श्रीराम का जन्म, उनका बड़ा पराक्रम, सबके साथ अनुकूल बर्ताव, लोकप्रिय होना, क्षमाशीलता मृदुता, सत्य स्वभाव ॥ १० ॥

नाना चित्राः कथाश्चान्या विश्वामित्रसहायने ।
जानक्याश्च विवाहं च धनुषश्च विभेदनम् ॥ ११ ॥

नानेति । विश्वामित्रसमागमे विश्वामित्रेण साकं महाराजाधिराजदशरथादिसमागमे सति अन्याः रामजन्मादिभिन्नाः नानाचित्रकथाः नाना बहुविधानि चित्राणि आश्चर्याणि यासु ता एव कथा इति कर्मधारयः । महाराजदशरथचेष्टावशिष्ठाद्युपदेशाहल्यादिस्वरूपप्रापणादिका इत्यर्थः । जानक्या जनकप्रादुर्भूतसीतायाः चकारेणोर्मिलादीनां विवाहं च धनुषः तत्र स्थापितशिवचापस्य विभेदनं विवाहहेतुकधनुर्भङ्गं च । नाना चित्राः कथा इति 'व्यस्तः सहायने' इति च भट्टसम्मतः पाठः । अर्थे तु न वैलक्षण्यम् ॥ ११ ॥

विश्वामित्र की सहायता में अनेक विचित्र कथायें, जानकी का विवाह, धनुष का तोड़ना ॥ ११ ॥

रामरामविवादं च गुणान् दाशरथेस्तथा ।
तथाभिषेकं रामस्य कैकेय्या दुष्टभावताम् ॥ १२ ॥

रामेति । रामेण दाशरथिरघुनाथेन सह रामविवादं परशुरामविवादं

च तृतीयेति योगविभागात्सम्बन्धसामान्ये षष्ठीं प्रकल्प्य षष्ठीति सूत्रेण वा समासः। दाशरथेः रामस्य गुणान् विनयविजयादिरूपांश्चेत्यर्थः। तथेति चार्थे। एवमुत्तरत्रापि। रामस्याभिषेकम्। अभिषेकोद्योगमित्यर्थः। कैकेय्या दुष्टभावतां प्रातिभासिकदुष्टस्वभावत्वम् ॥ १२ ॥

राम और परशुराम का विवाद, दशरथ के पुत्र राम के गुण, राम का अभिषेक और कैकेयी की दुष्ट भावना ॥ १२ ॥

विघातं चाभिषेकस्य रामस्य च विवासनम्।
राज्ञः शोकं विलापं च परलोकस्य चाश्रयम् ॥ १३ ॥

विघातं चेति। अभिषेकस्य रामाभिषेकोद्योगस्य विघातं कैकेयीकृत-विघ्नम्। रामविवासनं वनप्रेषणं च राज्ञो महाराजदशरथस्य शोकं प्रकटीभूतरामवियोगजनितशोचनं च विलापं तच्छोकजनितहारामेत्याद्युच्चारणं च परलोकस्य अप्रकटायोध्यापुरस्य आश्रयं स्थितिं च ॥ १३ ॥

अभिषेक का विघात, राम का वनगमन, राजा (दशरथ) का शोक, विलाप और परलोकवासी होना ॥ १३ ॥

प्रकृतीनां विषादं च प्रकृतीनां विसर्जनम्।
निषादाधिपसंवादं सूतोपावर्तनं तथा ॥ १४ ॥

प्रकृतीनामिति। प्रकृतीनां प्रजानां विषादं रामवियोगजनितदुःखं प्रकृतीनां विसर्जनमयोध्यां प्रति परावर्तनं च निषादाधिपसंवाद गुहेन सम्भाषणं च सूतोपावर्तनमयोध्यां प्रति सूतपरावर्तनं च। तथेति समुच्चये ॥१४॥

प्रजावर्ग में विषाद (दुःख), प्रजा का त्याग, निषादराज गुह के साथ सम्भाषण, और सारथी सुमन्त्र का परावर्तन ॥ १४ ॥

गङ्गाया एव सन्तारं भरद्वाजस्य दर्शनम्।
भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाच्चित्रकूटस्य दर्शनम् ॥ १५ ॥

गङ्गाया इति। गङ्गायाः सन्तारं सन्तरणं च भरद्वाजस्य दर्शनं भरद्वाजकर्मकावलोकनं च। एवश्चार्थे। भरद्वाजाभ्यनुज्ञानाद्भरद्वाजाज्ञातः चित्रकूटस्य दर्शनमवलोकनं च ॥ १५ ॥

गङ्गा पार होना, भरद्वाज का दर्शन, उनकी आज्ञा से चित्रकूट का दर्शन ॥१५॥

वास्तुकर्मनिवेशं च भरतागमनं तथा।
प्रसादनं च रामस्य पितुश्च सलिलक्रियाम् ॥ १६ ॥

वास्त्विति। वास्तुकर्म चित्रकूटे पर्णमयगृहरचनां निवेशं तत्र प्रवेशं च भरतागमनं भरतकर्तृकचित्रकूटप्राप्ति च। तथेति चार्थे। रामस्य प्रसादनं रामकर्मकभरतकर्तृकप्रसादनं च पितु महाराजाधिराजदशरथस्य सलिलक्रियां सलिलदानं च ॥ १६ ॥

वहाँ वास्तुकर्म (घर बनाना), गृहप्रवेश, भरत का आगमन, प्रसादन, और राम द्वारा पिता दशरथ को तर्पण करना ॥ १६ ॥

पादुकाग्र्याभिषेकं च नन्दिग्रामनिवासनम्।
दण्डकारण्यगमनं विराधस्य वधं तथा ॥ १७ ॥

पादुकेति। पादुकयोः प्राक्चेतनत्वनित्यत्वाभ्यां सर्वपादुकाश्रेष्ठयोः अभिषेकं राज्यनियन्तृत्वेन स्थापनं च नन्दिग्रामनिवासनं भरतकर्तृकनन्दिग्रामनिवासं च स्वार्थे णिच् प्रयोजकाविवक्षा वा। दण्डकारण्यगमनं रामकर्तृकदण्डकारण्यप्रवेशं च विराधस्य वधं च रामेणेति शेषः। तथा शब्दश्चार्थे ॥ १७ ॥

श्रेष्ठ पादुका का राज्याभिषेक, भरत का नन्दिग्राम (वर्तमान भरतकुण्ड) में रहना, राम का दण्डकारण्यगमन, और विराध का वध ॥ १७ ॥

दर्शनं शरभङ्गस्य सुतीक्ष्णेन समागमम्।
अनसूयासहास्यां च अङ्गरागस्य चार्पणम् ॥ १८ ॥

दर्शनमिति। शरभङ्गस्य ऋषेः दर्शनं शरभङ्गऋषिकर्मकावलोकनं सुतीक्ष्णेन ऋषिणाभिसङ्गम सम्मेलनं च क्वचित्सुतीक्ष्णेन समागममिति पाठः। अर्थे तु न विशेषः। अनसूयासहास्यामनसूयया अत्रिपत्न्या सहास्यां सीतायाः सहस्थितिमङ्गरागस्य चन्दनस्य अर्पणमनसूयाकर्तृकसीतोद्देश्यकसमर्पणं च। अत्र क्रमो न विवक्षितः अत एव विराधवधात्पूर्ववृत्तमनसूयावृत्तमुत्तरत्रोक्तम् 'आस्या त्वासनमासीने' इत्यमरः ॥ १८ ॥

शरभंग का दर्शन सुतीक्ष्ण से समागम, अत्रिपत्नी अनसूया के साथ सीता का बैठना और सीता के लिए अंगराग का अर्पण ॥ १८ ॥

दर्शनं चाप्यगस्त्यस्य धनुषो ग्रहणं तथा।
शूर्पणख्याश्च संवादं विरूपकरणं तथा ॥ १९ ॥

दर्शनमिति। अगस्त्यस्य कुम्भोद्भवमुनेः दर्शनमवलोकनं च अपिना तत्पूजनादिकं च। धनुषः अगस्त्यसमर्पितवैष्णवचापस्य ग्रहणं रामकर्तृक-

स्वीकारं च। शूर्पणख्याः शूर्पणखायाः संवादं बहुविधकथनं च। विरूपकरणं शूर्पणखायाः कर्णनासिकाच्छेदनं च अत्र नखमुखेति निषेधेऽपि ङीष् आर्षः। तथाशब्दौ चार्थकौ ॥ १९ ॥

अगस्त्य ऋषि का दर्शन, उनके द्वारा वैष्णव धनुष की प्राप्ति, शूर्पणखा से संवाद और उसका विरूप किया जाना ॥ १९ ॥

वधं खरत्रिशिरसोरुत्थानं रावणस्य च।
मारीचस्य वधं चैव वैदेह्या हरणं तथा ॥ २० ॥

वधमिति। खरत्रिशिरसोः तदुपलक्षितखरत्रिशिरोदूषणादीनां वध रामकर्तृकहननं च रावणस्योत्थानं शूर्पणखावाक्यात्। मारीचसहितरावणकर्तृकरामाश्रमकर्मकगमनं च। मारीचस्य वध रामकर्तृकहननं च। वैदेह्या हरण रावणकर्तृकानयनं च। एवतथाशब्दौ चार्थौ। २० ॥

खर और त्रिशिरा का वध, रावण का उद्योग, मारीच का वध, और सीता का हरण ॥ २० ॥

राघवस्य विलापं च गृध्रराजनिबर्हणम्।
कबन्धदर्शनं चैव पम्पायाश्चापि दर्शनम् ॥ २१ ॥

राघवस्येति। राघवस्य रामस्य विलापसम्भोगपोषकसीतावियोगहेतुकरामकर्तृकविलापं च गृध्रराजनिबर्हणं गृध्रराजस्य जटायुष. निबर्हणं रावणकर्तृकहिंसनम्। अपिना तत्प्रमीतक्रियां च कबन्धदशनं कबन्धकर्तृकावलोकनं च। पम्पायाः तन्नामकसरसः दर्शनमत्रलोकन च। एवश्चार्थे ॥ २१ ॥

श्रीराम का विलाप, गृद्धराज जटायु का रावण द्वारा वध, कबन्ध का मिलना और पम्पा सरोवर का दर्शन ॥ २१ ॥

शबरीदर्शनं चैव फलमूलाशनं तथा।
प्रलापं चैव पम्पायां हनूमद्दर्शनं तथा ॥ २२ ॥

शबरीति। शबर्याः तन्नामकश्रमण्या दर्शनं च एतेन तत्समर्पितफलाशनं हनूमद्दर्शनं च। तथाशब्दश्चार्थे। महात्मनः मह्यते रमादिभिः पूज्यते इति महा सीता तत्रात्मा मनो यस्य तस्य राघवस्य पम्पायां पम्पासमीपे प्रलापं च एतेन लक्ष्मणकृतप्रलापशामकोक्ति च ॥ २२ ॥

शबरी से मिलना, फल और मूल का भोजन करना, पम्पा के तट पर राम का प्रलाप और हनूमान का दर्शन ॥ २२ ॥

ऋष्यमूकस्य गमनं सुग्रीवेण समागमम् ।
प्रत्ययोत्पादनं सख्यं बालिसुग्रीवविग्रहम् ॥ २३ ॥

ऋष्येति । ऋष्यमूकस्य सुग्रीवाधिष्ठिततन्नामकपर्वतस्य गमनं प्राप्तिं च सुग्रीवेण समागमं तत्र सुग्रीवरामसम्मेलनं च प्रत्ययोत्पादनं रामसुग्रीवपरस्परविश्वासजननं च सख्यं तयोः परस्परं मित्रभावं च वालिसुग्रीवविग्रहं च सुग्रीवकर्तृकविग्रहहेतुकथनमित्यर्थः ॥ २३ ॥

ऋष्यमूक पर्वत को जाना, सुग्रीव से मिलना, विश्वास उत्पन्न करना, मित्रता करना और बालि तथा सुग्रीव का युद्ध ॥ २३ ॥

वालिप्रमथनं चैव सुग्रीवप्रतिपादनम् ।
ताराविलापं समयं वर्षरात्रनिवासनम् ॥ २४ ॥

वालीति । वालिप्रमथनं वालिकर्मकवधं च सुग्रीवप्रतिपादनं सुग्रीवस्य प्रतिपादनं रामकर्तृकराज्यस्थापनं च ताराविलापं वालिवधहेतुकशोकजनिततारारकर्तृकप्रलापं च समयं वर्षर्त्वपाये सीतान्वेषणीयेति रामसुग्रीवकृतसङ्केतं वर्षरात्रनिवासनं वर्षो वृष्टियुक्तः कालः चातुर्मास्यमित्यर्थः तस्य रात्रयः । तेषु निवासनं निवासं च । एवश्चार्थे स चावृत्त्या चहीनेष्वप्यन्वेति । वर्षरात्रेत्यत्राजिति योगविभागादच्प्रत्ययः । रात्राह्नेति पुंस्त्वम् ॥ २४ ॥

बालि का वध, सुग्रीव का राज्याभिषेक, बालि की पत्नी तारा का विलाप, वर्षा के बाद सीता के खोज का संकेत और वर्षाऋतु की रात्रियों में निवास करना ॥ २४ ॥

कोपं राघवसिंहस्य बलानामुपसंग्रहम् ।
दिशः प्रस्थापनं चैव पृथिव्याश्च निवेदनम् ॥ २५ ॥

कोपमिति । राघवसिंहस्य राघवश्रेष्ठरामस्य कोपं सुग्रीवानवधानतानिवर्तकक्रोधाभासं बलानां सैन्यानामुपसङ्ग्रहं सुग्रीवकर्तृकसम्मेलनं च दिशः प्रस्थापनं सर्वदिक्कर्मकवानरप्रेषणं च पृथिव्या द्वीपसमुद्रादिरूपाया निवेदनं अवयवशः सुग्रीववर्णनं च एवश्चार्थे ॥ २५ ॥

श्रीराम का सुग्रीव पर कोप, सुग्रीव द्वारा सेना का एकत्र किया जाना, वानरों को दिशाओं की ओर भेजना और भूगोल का वर्णन करना ॥ २५ ॥

अङ्गुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनम् ।
प्रायोपवेशनं चैव सम्पातेश्चापि दर्शनम् ॥ २६ ॥

अङ्गुलीयकेति । अङ्गुलीयकदानं हनुमत्सम्प्रदानकरामकर्तृकसीताप्रतीतिसम्पादकाङ्गुलीयकदानं च ऋक्षस्य बिलदर्शनं ऋक्षस्य बिलं स्वयंप्रभाबिलं तस्य दर्शनं च प्रायोपवेशनं प्रायाय प्राणत्यागाय उपवेशनमनशनतया स्थितिं च । सम्पातेः जटायुषो ज्येष्ठभ्रातुः दर्शनं च । अपिना तेन सह सम्भाषणम् ॥ २६ ॥

हनुमान् को अँगूठी देना, ऋक्ष के बिल का दर्शन, मरने के निश्चय से उपवास में बैठना, और सम्पाति का दर्शन ॥ २६ ॥

पर्वतारोहणं चैव सागरस्य च लङ्घनम् ।
समुद्रवचनाच्चैव मैनाकस्य च दर्शनम् ॥ २७ ॥

पर्वतेति । पर्वतारोहणं च एवेन हनुमत्कृतदेवप्रार्थनां सागरस्य लङ्घनं च समुद्रवचनादेव उत्थितस्य मैनाकस्य दर्शनं च चकारेण हनुमन्मैनाकसंवादम् । उत्थितस्येति शेषः ॥ २७ ॥

हनुमान् का पर्वत पर चढ़ना, समुद्र का लाँघना, समुद्र की आज्ञा से मैनाक का दर्शन करना ॥ २७ ॥

राक्षसीतर्जनं चैव च्छायाग्राहस्य दर्शनम् ।
सिंहिकायाश्च निधनं लङ्कामलयदर्शनम् ॥ २८ ॥

राक्षसीतर्जनमिति । राक्षस्योः राक्षसीरूपधारिरक्षःकुलोत्पन्नसुरसालङ्किन्योः तर्जनं हनुमत्कर्मकभर्त्सनं च छायाग्राहस्य सिंहिकायाः दर्शनं निधनं च लङ्कामलयदर्शनं लङ्कामलयस्य लङ्काधिकरणीभूतपर्वतैकदेशस्य दर्शनं च एवश्चार्थे ॥ २८ ॥

राक्षसी की तर्जना, छाया-ग्रहण करनेवाले का मिलना, सिंहिका राक्षसी का वध और लङ्का के पर्वत का अवलोकन ॥ २८ ॥

रात्रौ लङ्काप्रवेशं च एकस्य च विचिन्तनम् ।
आपानभूमिगमनमवरोधस्य दर्शनम् ॥ २९ ॥

रात्राविति । रात्रौ लङ्काप्रवेशं च एकस्य वानरप्रधानीभूतहनुमतः

विचिन्तनमापानभूमिगमनं राक्षसकर्तृकमद्यपानस्थलकर्मकहनुमत्कर्तृक-प्राप्ति च अवरोधस्यान्तःपुरस्य दर्शनं च ॥ २९ ॥

रात्रि में लङ्काप्रवेश, अकेले ही हनुमान् का लङ्का में विचारना, मद्यपान की भूमि में जाना, और रावण के रनिवास का देखना ॥ २९ ॥

दर्शनं रावणस्यापि पुष्पकस्य च दर्शनम् ।
अशोकवनिकायानं सीतायाश्चापि दर्शनम् ॥ ३० ॥

दर्शनमिति । रावणस्य दर्शनं च पुष्पकस्य दर्शनं च अशोकवनिकायानं हनुमत्कर्तृकाशोकवनिकाप्राप्ति च सीतायाः दर्शनं च । अपी चार्थौ ॥३०॥

रावण और पुष्पक विमान का दर्शन, अशोक वाटिका में जाना, और सीता का दर्शन ॥ ३० ॥

अभिज्ञानप्रदानं च सीतायाश्चापि भाषणम् ।
राक्षसीतर्जनं चैव त्रिजटास्वप्नदर्शनम् ॥ ३१ ॥

अभिज्ञानेति । अभिज्ञानप्रदानं सीतासम्प्रदानकर्मुद्रिकाप्रदानं च सीतायाः भाषणं च अपिना हनुमतो भाषणं राक्षसीतर्जनं राक्षसीकर्तृकसीताकर्मकभर्त्सनं च त्रिजटा विभीषणसुता तस्याः स्वप्नदर्शनं रामशुभसूचकस्वप्नावलोकनं च एवश्चार्थे ॥ ३१ ॥

सीता को अंगूठी देना, सीता और हनूमान् का सम्भाषण, राक्षसियों की तर्जना और त्रिजटा का स्वप्न देखना ॥ ३१ ॥

मणिप्रदानं सीताया वृक्षभङ्गं तथैव च ।
राक्षसीविद्रवं चैव किङ्कराणां निबर्हणम् ॥ ३२ ॥

मणिप्रदानमिति । सीतायाः मणिप्रदानं हनुमद्द्वारा सीताकर्तृकरघुनाथोद्देश्यकचूडामणिसमर्पणं च वृक्षभङ्गं-सीताश्रयीभूतशिंशपातिरिक्ताशोकवनिकोत्पाटनं च राक्षसीविद्रवं राक्षसीपलायनं च तथाशब्देन राक्षसीकर्तृकहनुमद्वृत्तकथन किङ्कराणां रावणभृत्यभटानां निबर्हणं च एवौ चार्थौ ॥ ३२ ॥

हनुमान् के लिए सीता का चूडामणि देना, वृक्ष तोड़ना, राक्षसियों को भगाना, और रावण से अनुचरों का वध ॥ ३२ ॥

ग्रहणं वायुसूनोश्च लङ्कादाहाभिगर्जनम् ।
प्रतिप्लवनमेवाथ मधूनां हरणं तथा ॥ ३३ ॥

ग्रहणमिति । वायुसूनोः हनुमतो ग्रहणं रावणसभानयनं च लङ्कादाहाभिगर्जनं लङ्कादाहे हनुमदभिगर्जनं च लङ्कादाहश्च अभिगर्जनं चेति समाहारद्वन्द्वो वा । अभिमर्दनमिति पाठे तु दाहेन राक्षसानां हिंसनं चेत्यर्थः । अथानन्तरं प्रतिप्लवनं पुनः समुद्रसन्तरणं मधूनां मधुवनोद्भवक्षौद्राणां हरणं वानरकर्तृकादानं च एवतथाशब्दो चार्थौ ।। ३३ ।।

हनुमान् का पकड़ा जाना, लङ्का जलाकर गर्जना, पुनः समुद्र तैरकर पार आना और वानरों का मधुवन में मधु का हरण करना ।। ३३ ।।

राघवाश्वासनं चैव मणिनिर्यातनं तथा ।
सङ्गमं च समुद्रेण नलसेतोश्च बन्धनम् ।। ३४ ।।

राघवेति । राघवाश्वासनं 'दृष्टा सीतेति तत्त्वतः' इत्यादिना रामसमवधानीकरणं च मणिनिर्यातनं सीतासमर्पितचूडामणिसमर्पणं च तथाशब्देन ससैन्यसुग्रीवरामगमनम् समुद्रेण सङ्गमं रघुनाथकर्तृकसमुद्रसमागमं च नलसेतोः नलैकसाध्यसेतोर्बन्धन च ।। ३४ ।।

राम को समझाना, उन्हें सीता द्वारा प्राप्त मणि लौटाना, समुद्र के साथ मिलना, नल से पुल बँधवाना ।। ३४ ।।

प्रतारं च समुद्रस्य रात्रौ लङ्कावरोधनम् ।
विभीषणेन संसर्गं वधोपायनिवेदनम् ।। ३५ ।।

प्रतारमिति । समुद्रस्य प्रतार सेतुनोत्तरणं च रात्रौ लङ्कावरोधनं च विभीषणेन संसर्गमाभाषणपूर्वकसम्बन्धं च वधोपायनिवेदनं विभीषणकर्तृकरावणादिवधयत्नकथनं च । आवृत्त्या चकारः चहीनेष्वप्यन्वेति ।।३५।।

समुद्र पार करना, रात्रि में लङ्का पर घेरा डालना, विभीषण का मिलना, और उसके द्वारा मेघनाद आदि के वध का उपाय का निवेदन ।। ३५ ।।

कुम्भकर्णस्य निधनं मेघनादनिबर्हणम् ।
रावणस्य विनाशं च सीतावाप्तिमरेः पुरे ।। ३६ ।।
विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्य च दर्शनम् ।

कुम्भकर्णस्येति । कुम्भकर्णस्य निधनं वधं च मेघनादनिबर्हणं हिंसनं च रावणस्य विनाशं च सीतावाप्ति च अरेः पुरे लङ्कायां विभीषणाभिषेकं च पुष्पकस्य रावणाहृतकुबेरविमानस्य दर्शनं च ।। ३६ ।।

कुम्भकर्ण का वध, मेघनाद की मृत्यु, रावण-नाश, शत्रु के नगर में सीता की प्राप्ति विभीषण का अभिषेक, पुष्पक विमान का दर्शन ॥ ३६ ॥

अयोध्यायाश्च गमनं भरद्वाजसमागमम् ॥ ३७ ॥
प्रेषणं वायुपुत्रस्य भरतेन समागमम् ।

अयोध्याया इति । अयोध्यायाश्च गमनं रामकर्तृकप्रस्थानं च भरद्वाजसमागमं च वायुपुत्रस्य हनुमतः प्रेषणं च रघुनाथेन भरतं प्रतीति शेषः । भरतेन समागमं हनुमद्द्वारा साक्षाच्च भरतसम्मेलनं च ॥ ३७ ॥

अयोध्या की ओर प्रस्थान और भरद्वाज के साथ समागम वायु के पुत्र हनुमान् को अयोध्या भेजना, हनुमान् से भरत का मिलना ॥ ३७ ॥

रामाभिषेकाभ्युदयं सर्वसैन्यविसर्जनम् ।
स्वराष्ट्ररञ्जनं चैव वैदेह्याश्च विसर्जनम् ॥ ३८ ॥

रामेति । रामाभिषेकाभ्युदयं रामराज्याभिषेकोत्सवम् । सर्वसैन्यविसर्जनं स्वस्वस्थानं प्रति सुग्रीवादिप्रेषणं च स्वराष्ट्ररञ्जनं प्रजाप्रमोदनं च वैदेह्याः प्रकटरूपायाः विसर्जनं च एवश्चार्थे ॥ ३८ ॥

राम के अभिषेक का आभ्युदयिक उत्सव, समस्त सैनिकों की विदाई, अपने राष्ट्र का रञ्जन करना और सीता का परित्याग ॥ ३८ ॥

अनागतं च यत्किञ्चिद्रामस्य वसुधातले ।
तच्चकारोत्तरे काव्ये वाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ ३९ ॥

अनागतमिति । वसुधातले रामस्य यत्किञ्चिच्चरितमनागतमप्रकटितं भविष्यत्कालिकमित्यर्थः । तदेव उत्तरे काव्ये उत्तरे काण्डे भगवान्परममाहात्म्यवान् ऋषिः त्रिकालज्ञः चकार वर्णयामास । भूतवर्तमानकालिकरामचरितानि षट्सु काण्डेषु वर्णितानि भविष्यत्कालिकरामचरितानि उत्तरकाण्डे वर्णितानीत्यर्थः । चशब्द एवार्थे ॥ ३९ ॥

भगवान् वाल्मीकि ऋषि ने राम का पृथ्वीतल में जो चरित आगे होने वाला था उसे उत्तरकाव्य (उत्तरकाण्ड) में प्रतिपादन किया ॥ ३९ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां
द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥



तृतीयः सर्गः

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः ।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमात्मवान् ॥ १ ॥

पूर्वसर्गे रामचरितं सङ्क्षेपतो वर्णयामास इदानीं विस्तरतोपि रामचरितं वर्णयति—प्राप्तेत्यादिभिः । ऋषिः सर्वज्ञः अत एव आत्मवान् रामचरितवर्णनविषयकयत्नवान् अत एव भगवान् परममाहात्म्यवान् वाल्मीकिः प्राप्तराज्यस्य प्रकटीकृतस्वकीयनित्यमहाराजत्वस्य रामस्य कृत्स्नं स्वबुद्धिविषयीभूतं चरितं विचित्रपदं विचित्राणि दोषरहितत्वालङ्कारव्यञ्जकत्वसहितत्वादिना आश्चर्याणि पदानि प्रतिपादकत्वेन यस्मिन् तच्चकार रचयामास ॥ १ ॥

भगवान् वाल्मीकि ऋषि ने राज्य प्राप्त करनेवाले राम के सम्पूर्ण चरित का विचित्र और सार्थक पदों से वर्णन किया ॥ १ ॥

चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवानृषिः ।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट् काण्डानि तथोत्तरम् ॥ २ ॥

भ्रममूलकप्रक्षेपनिस्सारणाभावाय चिकीर्षितग्रन्थसङ्ख्यामाह—चतुर्विंशदिति । ऋषिः सर्वज्ञो वाल्मीकिः श्लोकानां 'तपस्स्वाध्याय' इत्यादि 'तद्ब्रह्माप्यन्वमन्यत' इत्यन्तानां चतुर्विंशतिसहस्रसङ्ख्याः उक्तवान् । चतुर्विंशत्सहस्रशब्दः सङ्ख्यापरः । अत एव 'सङ्ख्यायां द्विबहुत्वे स्तः' इत्यनुशासनाद्बहुवचनम् । अन्यथा 'विंशत्याद्याः सदैकत्वे' इति कोशात्तदनुपपन्नं स्यात् । अत एव श्लोकानामिति षष्ठ्युपपत्तिः सङ्ख्याया उक्तेः सङ्ख्येयोक्तिमन्तराऽसम्भवेन सङ्ख्येयोक्तिद्वारा सङ्ख्या उक्तवानिति फलितोऽर्थः । चतुर्विंशत्सहस्रशब्दे इकारलोप आर्षः । पञ्च पञ्च सङ्ख्यागुणितान्सर्गशतान् सर्गाणां शतांश्च उक्तवान् । षट्काण्डानि षट्सङ्ख्यासङ्ख्यातानि काण्डानि च उक्तवान् । पूर्वस्तथाशब्दश्चार्थे स एव सर्वत्रान्वेति । शतशब्दस्य पुंस्त्वं तु 'शतायुतप्रयुताः पुंसि च' इतिलिङ्गानुशासनादवगन्तव्यम् । तथोत्तरम् । तथाशब्दः दशाधिकशत-

सङ्ख्यासङ्ख्येयपरः। एवञ्च तथा दशाधिकशतसर्गसहितमुत्तरं सप्तमकाण्डमुक्तवानित्यर्थः ॥ २॥

वाल्मीकि ऋषि ने रामायण में चौबीस सहस्र श्लोक, पाँच सौ सर्ग और छः काण्डों तथा उत्तरकाण्ड का निर्माण किया ॥ २ ॥

कृत्वा तु तन्महाप्राज्ञः सभविष्यं सहोत्तरम् ।
चिन्तयामास को न्वेतत्प्रयुञ्जीयादिति प्रभुः ॥ ३ ॥

कृत्वेति। महाप्राज्ञः महती पूजनीया प्रज्ञा यस्य स वाल्मीकिः। सहोत्तरम् उत्तरकाण्डसहित तत्काण्डषट्कं रामायणं कृत्वा सभविष्यं सभेषु सभावत्पुरुषेषु विष्यं रामायणव्यापकत्व यथा स्यात्तथा को नु प्रभुः एतद्धारणसमर्थः एतद्रामायणं प्रयुञ्जीयात् सभासदान् श्रावयेदित्यर्थं इति चिन्तयामास। एतेन रामचरितेषु ऋषेः परमानुरागः सूचितः। विष्यशब्दस्तु व्याप्त्यर्थकबिषधातोर्ण्यति सञ्ज्ञापूर्वकविधेरनित्यत्वाद् गुणाभावेन सिद्धः सभशब्दोऽर्शआद्यजन्तः। प्रयुञ्जीयादित्यार्षम् ॥ ३ ॥

बड़े बुद्धिमान् मुनि ने भविष्य से युक्त उत्तरकाण्ड के साथ रामचरित को रचकर भी चिन्ता की कि इस काव्य का कौन समर्थ पुरुष धारण करके सुनावेगा ॥ ३ ॥

तस्य चिन्तयमानस्य महर्षेर्भावितात्मनः ।
अगृह्णीतां ततः पादौ मुनिवेषौ कुशीलवौ ॥ ४ ॥

तस्येति। भावितात्मनः भावितः परिशीलितः आत्मा सर्वनियन्तृरघुनाथो येन अत एव चिन्तयमानस्य रामचरितप्रवृत्त्युद्योगं विचारयतस्तस्य प्रसिद्धस्य महर्षेः वाल्मीकेः पादौ मुनिवेषौ मुन्यनुवर्तितत्वात्तद्वेषधरौ कुशीलवौ अगृह्णीताम् रामायणग्रहणार्थं तत्पादस्पर्शमकुरुतामित्यर्थः। एतेन तयोरन्तर्वेदितृत्वं सूचितम् तेनोत्तमशिष्यत्वं द्योतितम्। तदुक्तम् 'उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्' इत्यादिना। भट्टास्तु अगृह्णीतामिति पाठमुक्त्वा छान्दसमिदमित्याहुः ॥ ४ ॥

उस पवित्र आत्मावाले महर्षि के चिन्ता में डूबे रहने पर मुनिवेषधारी कुश और लव ने चरण-ग्रहण किया ॥ ४ ॥

कुशीलवौ तु धर्मज्ञौ राजपुत्रौ यशस्विनौ ।
भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ ददर्शाश्रमवासिनौ ॥ ५ ॥

पादग्रहणानन्तरकालिकं वृत्तमाह—कुशीलवाविति। धर्मज्ञौ गुरुशुश्रूषणाभिज्ञौ अत एव यशस्विनौ कीर्तिमन्तौ स्वरसम्पन्नौ स्वरोपलक्षितगानविद्यानिपुणौ आश्रमवासिनौ स्वाश्रमवसनशीलौ भ्रातरौ सोदर्यौ राजपुत्रौ कुशीलवौ ददर्श एव न तदानीं किञ्चिदुवाचेत्यर्थः। तुशब्द एवार्थ न किञ्चिदुवाचेत्यनेन ऋषेः कुशलवविषयकप्रीत्यतिशयःसूचितः॥५॥

मुनि ने धर्म के जाननेवाले, राजपुत्र, बड़े यशस्वी, मधुरवाणी से सम्पन्न, अपने आश्रम में निवास करने वाले दोनों भाई कुश और लव को देखा॥ ५॥

स तु मेधाविनौ दृष्ट्वा वेदेषु परिनिष्ठितौ।
वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥ ६॥

स इति। प्रभुः दुर्बोधवस्तुयोजनसमर्थः स वाल्मीकिः मेधाविनौ परमबुद्धिमन्तौ अत एव वेदेषु ऋग्यजुस्सामाथर्वसु परिनिष्ठितौ तदध्ययनसम्पन्नौ तौ कुशलवौ वेदोपबृंहणार्थाय वेदानामुपबृंहणं तात्पर्यबोधनं तदेव अर्थः प्रयोजनं तस्मै अग्राहयत अपाठयत॥ ६॥

उन्होंने मेधावी और वेदों में निपुण देखकर वेदार्थ के प्रतिपादन रूप प्रयोजन के लिए उन दोनों को काव्य-ग्रहण कराया॥ ६॥

काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।
पौलस्त्यवधमित्येव चकार चरितव्रतः॥ ७॥

किमपाठयतेत्यत आह—काव्यमिति। चरितव्रतः चरितमाचरितं व्रतं रघुनाथोपासनं येन स मुनिः वाल्मीकिः पौलस्त्यवधं रावणादिवधप्रतिपादकं रामायण रामचरितप्रतिपादकं सीतायाश्चरितं सीतासम्बन्धिचरितविशिष्टमत एव महत् सर्वश्रेष्ठमत एव कृत्स्नं संपूर्णम् एतज्जातीयकादन्यत्सर्वं न्यूनमित्यर्थः। एतेन एतल्लाभान्न किञ्चिद्दुर्लभमिति ध्वनितम्। किञ्च कृतां सुकृतिनां स्नः स्नानं सादरावलोकनादि यस्मिन् सुकृद्भिराहृतमित्यर्थः। तत्काव्यं चकार इति तदेव अग्राहयदित्यर्थः। एवेन पाठान्तरव्यवच्छेदः तेन रामचरितविषयकप्रेमाधिक्यं सूचितम्॥७॥

इस रामायण नाम के काव्य को, जिसमें सीता जी का समस्त महान् चरित वर्णित है, व्रतधारी वाल्मीकि ने रचना की। इसे पौलस्त्य-वध भी कहा जाता है॥

पाठ्ये गेये च मधुरं प्रमाणैस्त्रिभिरन्वितम्।
जातिभिः सप्तभिर्युक्तं तन्त्रीलयसमन्वितम्॥ ८॥

रसैः शृङ्गारकरुणहास्यरौद्रभयानकैः ।
वीरादिभी रसैर्युक्तं काव्यमेतद्गायताम् ॥ ९ ॥
तौ तु गान्धर्वतत्त्वज्ञौ स्थानमूर्च्छनकोविदौ ।
भ्रातरौ स्वरसंपन्नौ गन्धर्वाविव रूपिणौ ॥ १० ॥
रूपलक्षणसम्पन्नौ मधुरस्वरभाषिणौ ।
बिम्बादिवोत्थितौ बिम्बौ रामदेहात्तथापरौ ॥ ११ ॥

ग्रहणानन्तरं तत्काव्यं कुशलवाभ्यां गीतमित्याह—पाठ्य इत्यादिभिः । पाठ्ये पाठे गेये गाने च मधुरं मनोहरम् लोके किञ्चित्पाठे एव मनोहरं किञ्चिद्गाने एव मनोहरम् इद तु उभयत्रापि मनोहरमित्यर्थः । शृङ्गारादिपञ्चभिः रौद्रादिभिः रौद्रबीभत्साद्भुतशान्तैश्चतुर्भिश्च रसैः संयुक्तमेतत्काव्यं त्रिभिः त्रित्वसंख्याविशिष्टैः प्रमाणैः द्रुतमध्यमविलम्बितै-रन्वितं यथा स्यात्तथा सप्तभिः सप्तत्वसंख्याविशिष्टैः जातिभिः 'सर्वगीत-समाधारो जातिरित्यभिधीयते । षाड्जो चैवाथ नैषादो धैवतो पञ्चमो तथा ॥ माध्यमो चैव गान्धारी सप्तमो त्वार्षभी मता' इति शाण्डिल्योक्त्या सर्वगीतसमाधारभूतषड्जादिभिः सप्तभिः बद्धं यथा स्यात्तथा तन्त्रीलय-समन्वितं तन्त्रीशब्दो लक्षणया तन्त्रीयुक्तवीणाशब्दपरः लयशब्दस्ताल-वेणुमृदङ्गादीनां समानकालिकविरामपरः ताभ्यां युक्तं यथा स्यात्तथा गान्धर्वतत्त्वज्ञौ 'गान्धर्वं गीतशासनम्' इति वैजयन्तीकोशाद्गान्धर्वस्य गीतशास्त्रस्य तत्त्वज्ञौ तात्पर्यवेदितारौ अत एव मूर्च्छनास्थानकोविदौ मूर्च्छना च स्थानं च मूर्च्छनास्थाने तयोः कोविदौ निपुणौ मूर्च्छनाशब्देन वीणादिवादनमुच्यते 'वादने मूर्च्छना प्रोक्ता' इति वैजयन्तीकोशात् स्थानशब्देन मन्द्रमध्यमताररूपस्वरत्रयोत्पत्तिस्थानमुच्यते । तदुक्तं शाण्डिल्येन 'यदूर्ध्वं हृदयग्रन्थेः कपोलफलकादधः । प्राणसञ्चारणस्थानं स्थानमित्यभिधीयते ॥ उरः कण्ठः शिरश्चेति तत्पुनस्त्रिविधं भवेत् । मन्द्रं मध्यं च तारं च' इति । 'स्थानमूर्छनकोविदौ' इति भट्टसम्मतः पाठः । तत्र मूर्च्छनाशब्देन 'यत्रैव स्युः स्वराः पूर्णा मूर्च्छना सेत्युदाहृता' इति प्रामाण्येन मूर्च्छनाशब्दः स्वरपूर्णस्थानपर इति व्याख्यातम् । भ्रातरौ सोदर्यौ स्वरसम्पन्नौ षड्जादिस्वरविज्ञौ अत एव रूपिणौ मनुष्य-रूपधारिणौ गन्धर्वाविव मनुष्यरूपधारिगन्धर्वसदृशौ रूपलक्षणसम्पन्नौ

नाटकलक्षणविज्ञौ 'रूपं स्वभावे शुक्लादौ सौन्दर्ये नाटकेऽप्यसौ' इति भास्करः। मधुरस्वरभाषिणौ मनोहरस्वरभाषणशीलौ रामदेहाद्बिम्बादुत्थितौ बिम्बौ प्रतिबिम्बाविव रामदेहरूपबिम्बोत्थितप्रतिबिम्बसदृशावित्यर्थः। अत एव अपरौ तथा रामप्रतियोगिकभेदाभाववन्ताविव तत्त्वेन प्रतीयमानावित्यर्थः। तौ कुशलवौ अगायतामिति चतुर्णामेकत्रान्वयः। तथाशब्द इवार्थे॥ ८-११॥

पढ़ने और गाने में मधुर, त्र्यस्र, चतुरस्र और मिश्रसंज्ञक अथवा द्रुत, मध्य और विलम्बित नामक तीन प्रकार के प्रमाणों से युक्त, षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत, और निषाद इन सात जातियों से युक्त तन्त्री (वीणा-गुण) और लय से सम्पन्न॥ ८॥

शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, वीर और भयानक आदि रसों से युक्त इस काव्य का कुश, और लव द्वारा गान कराया॥ ९॥

वे दोनों भाई गानशास्त्र के तत्त्वज्ञ थे, वीणा के मन्द्र, मध्य और तार नामक स्थान और मूर्च्छना (बजाना) के विशेषज्ञ थे; स्वर से सम्पन्न, रूपधारी गन्धर्वों के समान थे॥ १०॥

रूप (नाटक के) के लक्षणों के वेत्ता, मधुर स्वर बोलने वाले तथा राम के शरीर से उत्पन्न बिम्ब से उत्पन्न प्रतिबिम्ब के सदृश थे॥ ११॥

तौ राजपुत्रौ कार्त्स्न्येन धर्म्यमाख्यानमुत्तमम्।
वाचोविधेयं तत्सर्वं कृत्वा काव्यमनिन्दितौ॥ १२॥
ऋषीणां च द्विजातीनां साधूनां च समागमे।
यथोपदेशं तत्त्वज्ञौ जगतुः सुसमाहितौ॥ १३॥
महात्मानौ महाभागौ सर्वलक्षणलक्षितौ।

तदेव विशदयन्नाह—तावित्यादि। सार्द्धश्लोकद्वयेन। सर्वलक्षणलक्षितौ सर्वाणि निखिलानि लक्षणानि सामुद्रिकोक्तसच्चिह्नानि तैर्लक्षितौ युक्तौ अत एव महाभागौ नित्यपरमभाग्यवन्तौ अत एव महात्मानौ पूजितस्वरूपौ अतएव समाहितौ एकाग्रचित्तौ अत एव तत्त्वज्ञौ वेदशास्त्रतात्पर्यवेदितारौ अत एवानिन्दितौ निन्दारहितौ तौ अमृतवदास्वादनीयगानविशिष्टौ राजपुत्रौ तौ कुशीलवौ धर्म्यं धर्मादनपेतम्। जनकर्त्तव्यबोधकमित्यर्थः। आख्यानं रामचरितप्रतिपादकम् अत एव उत्तमं

सर्वश्रेष्ठं तत् रामायणं काव्यमादिकविवाल्मीकिनिष्पादितं सर्वं वाचोभिधेयं पुस्तकावलोकनाद्यन्तरापि वचनार्हं कृत्वा अभ्यासतः सम्पाद्य ऋषीणां मन्त्रद्रष्टॄणां द्विजातीनां सामान्यब्राह्मणक्षत्रियविशां च साधूनां जात्याद्यभिमानरहितपरमहंसानां च समागमे सम्मेलने यथोपदेशं गुरूपदेशमनतिक्रम्य जगतुः गानं चक्रतुः। 'तश्चौरामृततुच्छेषु क्रोडेऽम्लेऽक्षे च कुत्रचित्' इति मेदिनीकोशात्तशब्दोऽमृतपरः। सार्द्धश्लोकद्वयमेकान्वयि ॥ १२–१३ ॥

महात्मा, महाभाग्यशाली तथा समस्त शुभ लक्षणों से युक्त, सच्चरित्र, तत्त्व जाननेवाले तथा समाहित चित्तवाले उन दोनों राजकुमारों ने उत्तम धर्माख्यान रूप समस्त काव्य को कण्ठस्थ करके ऋषियों, द्विजातियों तथा साधुओं के समाज में जैसा उपदेश दिया गया था उसके अनुसार गान किया ॥१२–१३ ॥

तौ कदाचित् समेतानामृषीणां भावितात्मनाम् ॥ १४ ॥
मध्येसभं समीपस्थाविदं काव्यमगायताम् ।

गानस्थलं निर्दिशन्नाह—ताविति। कदाचित्कस्मिंश्चित्समये समेतानामेकत्र समागतानां भावितात्मनां परिशीलितपरमात्मनाम् ऋषीणां समीपस्थौ कुशलवौ मध्येसभं इदं रामायणं काव्यमगायताम् ॥ १४ ॥

उन दोनों ने कभी पवित्र आत्मावाले महर्षियों की सभा के मध्य में उस समाज के समीप बैठकर इस काव्य का गान किया ॥ १४ ॥

तच्छ्रुत्वा मुनयः सर्वे बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १५ ॥
साधु साध्विति तावूचुः परं विस्मयमागताः ।

गेयप्रशंसां कुर्वन्नाह—तदिति। तद्गीयमानरामायणं श्रुत्वा परं विस्मयं केन सुकृतेन इदमस्माभिः प्राप्तमित्याश्चर्यमागताः प्राप्ताः अत एव बाष्पपर्याकुलेक्षणाः सर्वे तत्रागतास्ते मुनयः साधुसाध्विति इदमित्यूचुः। हर्षे वीप्सा। अपिशब्द इत्यर्थे ॥ १५ ॥

जिसे सुनकर सब मुनियों के नेत्र आँसुओं से व्याकुल हो उठे और अत्यन्त विस्मय में पड़े हुए उन्होंने साधु-साधु कह कर साधुवाद दिया ॥ १५ ॥

ते प्रीतमनसः सर्वे मुनयो धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥
प्रशशंसुः प्रशस्तव्यौ गायमानौ कुशीलवौ ।

गेयप्रशंसामुक्त्वा गातृप्रशंसामाह—ते इति। धर्मवत्सलाः धर्माः धर्म-

स्वरूपाः वत्सलाः वात्सल्यरसवन्तः ते एव ते इति कर्मधारयः । अत एव प्रीतमनसः प्रसन्नचित्ताः ते सर्वे मुनयः गायमानौ अद्भुतगानं कुर्वन्तौ अत एव प्रशस्तव्यौ प्रशंसनीयौ कुशीलवौ प्रशशंसुः । प्रशस्तव्यावित्यत्र आगमशास्त्रस्यानित्यत्वादिडभावः । नलोपश्छान्दसः । धर्मबाहुल्यात् धर्मवतां धर्मत्वेन व्यपदेशः ॥ १६ ॥

प्रसन्न मन वाले तथा धर्म में आदर रखने वाले समस्त मुनियों ने प्रशंसनीय तथा गानेवाले उन दोनों कुश और लवकी प्रशंसा की ॥ १६ ॥

अहो गीतस्य माधुर्यं श्लोकानां च विशेषतः ॥ १७ ॥
चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम् ।

प्रशंसास्वरूपमाह—अहो इति । गीतस्य गानस्य माधुर्यं विशेषतः अन्यगानाद्विलक्षणमत एव श्लोकानां च माधुर्यं विशेषतः श्लोकान्तरेभ्यः विलक्षणमित्यहो आश्चर्यम् एतेनैतादृग्गानं कर्तुर्न पूर्वमनुभूतिरिति हेतुर्ध्वनितः । विलक्षणत्वमेवाह—चिरेति । चिरनिर्वृत्तं बहुकालिकरामव्यापारसंपन्नमेतच्चरितमल्पकालतः प्रत्यक्षमिव दर्शितम् । अद्भुतगानविशिष्टप्रबन्धेन साक्षादिव कृतमित्यर्थः । अपिशब्दादल्पकाललाभः ॥१७॥

इस गाने और विशेषकर श्लोकों के माधुर्य को धन्य है । जो बहुत समय बीतने के बाद भी सामने बीता जैसा दिखला दिया ॥ १७ ॥

प्रविश्य तावुभौ सुष्ठु तथा भावमगायताम् ॥ १८ ॥
सहितौ मधुरं रक्तं सम्पन्नं स्वरसम्पदा ।

गानगेयविलक्षणत्वमुक्त्वा गातृविलक्षणत्वं बोधयँस्तत्प्रशंसास्वरूपमाह—प्रविश्येति । सहितौ समलयादिविशिष्टौ तावुभौ कुशलवौ मधुरं माधुर्यविशिष्टं रक्तं श्रोत्रानुरागविषयीभूतं स्वरसम्पदा षड्जादिसम्पन्नं यथा भवति तथा भावं रतिहासादिरूपं सुष्ठु प्रविश्य तत्तन्मयीभूय अगायतां श्रोतृतत्तद्रसनिष्पादजनकीभूतं गानं चक्रतुरित्यर्थः ॥ १८ ॥

उन दोनों कुश और लव ने भावावेश में अच्छी तरह प्रविष्ट होकर मिलकर मधुर राग से और स्वरसम्पदा से युक्त गान किया ॥ १८ ॥

एवं प्रशस्यमानौ तौ तपःश्लाघ्यैर्महर्षिभिः ॥ १९ ॥
संरक्ततरमत्यर्थं मधुरं तावगायताम् ।

एवमिति । तपःश्लाघ्यैः ज्ञानजनितप्रशंसाविशिष्टैः अतएव महात्मभिः पूजितस्वरूपैर्मुनिभिः एवं प्रशस्यमानौ तौ अमृतवदास्वादनीयगानविशिष्टौ तौ प्रसिद्धौ कुशलवौ अत्यर्थं विलक्षणार्थविशिष्टं मधुरं माधुर्यगुणप्रधानकं रामायणं संरक्ततरं श्रोतॄणामत्यनुरागविषयीभूतं यथा भवति तथा अगायताम् 'तश्चौरामृतपुच्छेषु क्रोडेऽस्लेऽक्षे च कुत्रचित्' इति मेदिनीकोशात्तशब्दोऽमृतपरः ॥ १९ ॥

तप में श्लाघा करने योग्य महात्माओं से इस प्रकार प्रशंसित होते हुए उन दोनों ने बड़े अनुराग और अत्यन्त मीठी वाणी से इस काव्य का ज्ञान किया॥१९॥

प्रीतः कश्चिन्मुनिस्ताभ्यां संस्थितः कलशं ददौ ॥ २० ॥
प्रसन्नो वल्कलं कश्चिद्ददौ ताभ्यां महायशाः ।

प्रीत इति । प्रीतः गानश्रवणजनितप्रीतिविशिष्टः । अत एव संस्थितः उत्थितः किञ्च दानकालयोग्यसम्यक्स्थितिविशिष्टः कश्चिन्मुनिः ताभ्यां कुशलवाभ्यां कलश जलाहरणपात्रं ददौ । प्रसन्नः महायशाः गानाभिज्ञत्वजनितकीर्तिविशिष्टः कश्चिदपरो मुनिः ताभ्यां वल्कलमाच्छादनादियोग्यविशेषत्वच ददौ ॥ २० ॥

उनमें प्रसन्न होकर किसी मुनि ने दोनों को कलश दिया और बड़े यशस्वी किसी दूसरे ने दोनों को प्रसन्न होकर वल्कल दिया ॥ २० ॥

अन्यः कृष्णाजिनमदाद्यज्ञसूत्रं तथापरः ॥ २१ ॥
कश्चित्कमण्डलुं प्रादान्मौञ्जीमन्यो महामुनिः ।

अन्य इति । अन्यः मुनिः कृष्णाजिनमदात् । तथाऽपरः यज्ञसूत्रमदात् । कश्चित्कमण्डलुं प्रादात् । अन्यो महामुनिः मौञ्जीं प्रादात् ॥ २१ ॥

किसी ने कृष्ण मृगचर्म और किसी ने यज्ञोपवीत दिया । किसी ने कमण्डलु तो अन्य महामुनि ने मूँज की मेखला दी ॥ २१ ॥

बृसीमन्यस्तदा प्रादात्कौपीनमपरो मुनिः ॥ २२ ॥
ताभ्यां ददौ तदा हृष्टः कुठारमपरो मुनिः ।

बृसीमिति । तदा तस्मिन्काले अन्यः बृसीम् ऋषियोग्यमासनं प्रादात् । अपरो मुनिः कौपीनं प्रादात् । तदा अपरः हृष्टः मुनिः कुठारं ददौ ॥२२॥

किसी ने वृसी (ऋषियोग्य आसन) दिया, उसी समय दूसरे मुनि ने कौपीन दिया और किसी अन्य मुनि ने प्रसन्न होकर दोनों को कुठार दिया ॥ २२ ॥

काषायमपरो वस्त्रं चीरमन्यो ददौ मुनिः ॥ २३ ॥
जटाबन्धनमन्यस्तु काष्ठरज्जुं मुदान्वितः ।

काषायमिति । अपरः मुनिः काषायं ब्रह्मचारिधार्यंकुसुम्भरक्तं वस्त्रं ददौ । अन्यो मुनिः चीरं खण्डपटं ददौ । अन्यस्तु जटाबन्धनं जटाबन्धनयोग्यं काष्ठरज्जुं पालाशादिमूलनिर्मितरशनां मुदान्वितः सन् ददौ ॥२३॥

किसी मुनि ने गैरिक वस्त्र दिया, अन्य मुनि ने चीर प्रदान किया। किसी ने प्रसन्नता में आकर जटा-बन्धन के लिए काष्ठरज्जु (पलाश या गूलर के जड़ की बनी रस्सी) दी ॥ २३ ॥

यज्ञभाण्डमृषिः कश्चित्काष्ठभारं तथाऽपरः ॥ २४ ॥
औदुम्बरीं बृसीमन्यः स्वस्ति केचित्तदावदन् ।

यज्ञेति । कश्चिदृषिः यज्ञभाण्डं तथाऽपरः काष्ठभारम् अन्यः औदुम्बरीमुदुम्बरनिर्मितां बृसीं पीठं ददाविति पूर्वेणान्वयः । तदा केचिदगृहीतवस्त्रादिकाः स्वस्ति अवदन् ॥ २४ ॥

किसी ऋषि ने यज्ञपात्र, तो अन्य ने काष्ठ का एक भार (बोझ) दिया। किसी ने गूलर का पीढ़ा दिया तो अन्य लोगों ने स्वस्ति कहा ॥ २४ ॥

आयुष्यमपरे प्राहुर्मुदा तत्र महर्षयः ॥ २५ ॥
ददुश्चैवं वरान् सर्वे मुनयः सत्यवादिनः ।

आयुष्यमिति । तदा तस्मिन्काले मुदा हर्षेण अपरे महर्षयः आयुष्यं प्राहुः । एवमनेन प्रकारेण सत्यवादिनः सर्वे अन्येऽपि मुनयः वरान् स्वस्वयोग्यान्ददुः । एतेन तदृषीणां परमानन्दः सूचितः तेनैतत्प्राप्तिरेव परो लाभ इति तेषां निश्चयः सूचितः । अत्र 'अन्यः कृष्णाजिनमदादित्यादि ददुश्चैवं वरान्सर्वे' इत्येतत्पर्यन्ताः पञ्चश्लोकाः भूषणाङ्कितपुस्तकेषु न दृश्यन्ते तत्र हेतुर्लेखप्रमादो बोध्यः सर्वपुस्तकान्तरेष्वेषां प्रसिद्धेः सन्दर्भानुकूलत्वाच्च ॥ २५ ॥

किसी महर्षि ने वहाँ प्रसन्न होकर आयुष्य प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया। इस प्रकार सब सत्यवादी मुनियों ने वर दिये ॥ २५ ॥

आश्चर्यमिदमाख्यानं मुनिना संप्रकीर्तितम् ॥ २६ ॥
परं कवीनामाधारं समाप्तं च यथाक्रमम् ।

आश्चर्यमिति । आश्चर्यं वाङ्मनसगोचरातीतवस्तुबोधकत्वेन स्वभाव-

सिद्धमाधुर्यप्रधानत्वेन च सर्वतन्त्रविलक्षणमाख्यानं प्रबन्धरूपमत एव कवीनां सहृदयाभिज्ञानां परमुत्कृष्टमाधारं सहृदयहृदयाभिहारकमित्यर्थः। मुनिना वाल्मीकिना संप्रकीर्तितमिदं रामायणं यथाक्रमं क्रममनतिक्रम्य समाप्त कुशलवकर्तृकसमाप्तिमगमदित्यर्थः ।।२६।।

वाल्मीकि मुनि के द्वारा कहा हुआ आश्चर्यजनक तथा कवियों का परम आधार यह आख्यान क्रम से समाप्त हुआ ।। २६ ।।

अभिगीतमिदं गीतं सर्वगीतेषु कोविदौ ।। २७ ।।
आयुष्यं पुष्टिजननं सर्वश्रुतिमनोहरम् ।

अमीति । सर्वगीतेषु कोविदौ हे सर्वगीताभिज्ञकुशलवौ आयुष्यमायुर्वर्द्धकं पुष्टिजननं पुष्टिजनकं सर्वश्रुति सर्वाश्श्रुतयः तात्पर्यवृत्त्या यष्मिन् मनोहरं सहृदयहृदयापकर्षकमिदं गीतं भवद्भ्यां मनोहरगानविषयीभूतं कृतमित्यर्थः । एतेन ऋषीणां परमानन्दो जात इति ध्वनितम् ।। २७ ।।

सब गान विद्या में निपुण कुश और लव ने आयु और पुष्टि देने वाले स्वर के अवयवविशेषों से सुन्दर इस गीत का भलीभाँति गान किया है ।। २७ ।।

प्रशस्यमानौ सर्वत्र कदाचित्तत्र गायकौ ।। २८ ।।
रथ्यासु राजमार्गेषु ददर्श भरताग्रजः ।

प्रशस्यमानाविति । रथ्यासु अल्पवीथिषु राजमार्गेषु च सर्वत्र मुन्याश्रमादिषु प्रशस्यमानौ गायकौ गानकर्तारौ कुशलवौ कदाचित्कस्मिँश्चित्समये भरताग्रजो रामो ददर्श ।। २८ ।।

सर्वत्र प्रशंसा पाते हुए उन गायकों को किसी दिन गलियों और राजमार्गों में भरत के बड़े भाई राम ने देखा ।। २८ ।।

स्ववेश्म चानीय ततो भ्रातरौ स कुशीलवौ ।। २९ ।।
पूजयामास पूजार्हौ रामः शत्रुनिबर्हणः ।

स्ववेश्मेति । ततः कुशलवकर्मदर्शनान्तरं शत्रुनिवर्हणः स्वाश्रितारिदोषनिवर्तकः रामः पूजार्हौ पूजायोग्यौ भ्रातरौ कुशीलवौ स्ववेश्म स्वगृहमानीय चकारेण स्वदत्तासने स्थापयित्वा पूजयामास च प्रशंसैव एवेन कृत्यान्तरव्यवच्छेदः तेन रामस्य प्रेमाधिक्यं सूचितम् । द्वितीयश्चकार एवार्थः ।। २९ ।।

शत्रुओं का नाश करने वाले राम ने पूजा करने योग्य उन दोनों भाई कुश और लव को अपने घर लाकर स्वागत-सत्कार किया ॥ २९ ॥

आसीनः काञ्चने दिव्ये स च सिंहासने प्रभुः ॥ ३० ॥
उपोपविष्टैः सचिवैर्भ्रातृभिश्च समन्वितः ।
दृष्ट्वा तु रूपसंपन्नौ विनीतौ भ्रातरावुभौ ॥ ३१ ॥
उवाच लक्ष्मणं रामः शत्रुघ्नं भरतं तथा ।
श्रूयतामेतदाख्यानमनयोर्देववर्चसोः ॥ ३२ ॥
विचित्रार्थपदं सम्यग् गायकौ समचोदयत् ।

आसीन इति । तदा तस्मिन्काले प्रभुः महाराजाधिराजः अत एव काञ्चने स्वर्णमये दिव्ये प्राकृतविलक्षणे सिंहासने आसीनः अत एव परन्तपः आश्रितारिनिवर्तकः सचिवैर्मन्त्रिभि भ्रातृभिश्च उपोपविष्टैः परिवृतः चकारान्तरेण छत्रचामरादिमहाराजाधिराजोपस्करविशिष्टः नियतः स रामः रूपसम्पन्नौ उभौ तौ कुशलवौ दृष्ट्वा अवलोक्य देववर्चसोः अनयोर्बालयोः संबन्धि विचित्रार्थपदं विलक्षणवाच्यवाचकविशिष्टमाख्यानं सम्यक् श्रूयताम् इदं लक्ष्मणं शत्रुघ्नं भरतं च उवाच तथा तेन प्रकारेण गायकौ समचोदयत् गीयतामिदमिति प्रेरयामास। त्रयाणामेकत्रान्वयः । तुश्चार्थे ॥ ३०-३२ ॥

सुवर्ण के बने सिंहासन पर बैठे हुए और समीप में बैठे हुए मन्त्रियों और भाइयों से युक्त स्वामी श्रीराम ने सुन्दर रूप से युक्त विनयी दोनों भाइयों को देखकर लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न से कहा कि देवताओं के समान तेजस्वी इन दोनों के विचित्र अर्थ और पदों वाले आख्यान को सुनो ! यह कहकर अच्छे प्रकार के इन गायकों को (गाने के लिये) प्रेरणा की ॥ ३०-३२ ॥

तौ चापि मधुरं रक्तं सञ्चितायतनिःस्वनम् ॥ ३३ ॥
तन्त्रीलयवदत्यर्थं विश्रुतार्थमगायताम् ।

प्रेरणानन्तरकालिकवृत्तमाह—ताविति । अत्यर्थं गूढतात्पर्यार्थकं विश्रुतार्थं विश्रुतः श्रुतिप्रसिद्धः अर्थो यस्य तन्मधुर स्वाभाविकमाधुर्यविशिष्टमत एव रक्तं श्रोत्रानुरागविषयीभूतं रामायण सञ्चितायतनिस्वनं सञ्चितः सम्यक् संपादितः आयतो दीर्घो निस्वनः आलापो यस्मिंस्तत् तन्त्रीलयवत्तन्त्र्युपलक्षिततन्त्रीमृदङ्गतालादीनां समानकालिकविश्रामः अस्ति

अस्मिन्निति तन्त्रीलयवत् यथा स्यात्तथा तौ प्रसिद्धौ वीरौ कुशलवौ अगायताम् ॥ ३३ ॥

उन दोनों ने भी मधुर, रागयुक्त, अपने और श्रोता के मनोऽनुकूल स्वर में वीणा के गुण और लय से युक्त अत्यन्त स्पष्ट अर्थवाले उस आख्यान को गाया ॥ ३३ ॥

ह्लादयत् सर्वगात्राणि मनांसि हृदयानि च ।
श्रोत्राश्रयसुखं गेयं तद् बभौ जनसंसदि ॥ ३४ ॥

ह्लादयदिति । श्रोत्राश्रयसुखं श्रोत्रं कर्णशष्कुली आश्रयो यस्य तच्छ्रोत्राश्रयं श्रोत्रेन्द्रियं तस्य सुखं यस्मात्तत् । सर्वगात्राणि निखिलावयवान् मनांसि हृदयानि हृत् हृदयमयं स्थानं येषां तानि सान्तर्यामिजीवजातानि च ह्लादयत् गेयं गानं जनसंसदि जनाकुलसभायां बभौ शुशुभे जनाकुलसभायामित्युक्त्या तद्गानस्यातिप्रख्यातिर्ध्वनिता तेन तस्यालौकिकचमत्कारकारित्वं व्यक्तम् ॥ ३४ ॥

सब शरीर, मन, हृदय और कान को आनन्दित करता हुआ वह गेय जनसभा में अत्यन्त रुचिकर हुआ ॥ ३४ ॥

इमौ मुनी पार्थिवलक्षणान्वितौ कुशीलवौ चैव महातपस्विनौ ।
ममापि तद्भूतिकरं प्रवक्ष्यते महानुभावं चरितं निबोधत ॥३५॥

बहुजनसंकुलत्वेन विपुलशब्दप्रभवशङ्कया सावधानीकुर्वन्नाह—इमाविति । महातपस्विनौ गानविषयकपरमज्ञानवन्तौ मुनी मननशीलौ इमौ कुशीलवौ पार्थिवलक्षणान्वितौ स्त इति शेषः । महानुभावं हृदयापकर्षत्वरूपपरमप्रभावविशिष्टं यच्चरितं प्रवक्ष्यते आभ्यां गास्यते तन्ममापि भूतिकरं मत्कर्मकनित्यप्राप्तिसम्पादकमेव अतो निबोधत सावधानतया यूयं शृणुत । पार्थिवलक्षणान्वितावित्यनेन स्वातिप्रीतिविषयत्वं तयोस्सूचितम् । चो हेतौ । अपिशब्दो नित्यार्थकः । भूतिरित्यत्र प्राप्त्यर्थकभूधातोः क्तिः । किञ्च महानुभावं भूतिकरं श्रोतृनित्यप्रभूतिकरमेव मम चरित्तमाभ्यां प्रवक्ष्यत इत्यर्थः । अतो निबोधत । अन्यत्समानम् ॥ ३५ ॥

राम ने कहा कि ये दोनों मुनि कुश और लव राजलक्षण से भूषित हैं, गायक होते हुए भी बड़े तपस्वी हैं । मेरे लिए भी कल्याणकारी और बड़े प्रभाव वाले चरित को जो ये गाते जा रहे हैं, सुनो ॥ ३५ ॥

ततस्तु तौ रामवचःप्रचोदितावगायतां मार्गविधानसंपदा।
स चापि रामः परिषद्गतः शनैर्बुभूषयासक्तमना बभूव ॥३६॥

तत इति। ततः समाधानकरणानन्तरं रामवचःप्रचोदितौ रामप्रेरितौ कुशीलवौ मार्गविधानसंपदा मार्गो देशी चेति गानं द्विविधं तत्र प्राकृतावलम्बिनो देशिसंज्ञा संस्कृतावलम्बिनो मार्गसंज्ञेति सङ्गीतशास्त्रे प्रसिद्धम्। तथा च मार्गस्य संस्कृतावलम्बिगानस्य यद्विधानं सामग्री तस्य सम्पत्तिः परिपूर्णता तदा शनैः अगायतामगायेतामेव। परिषद्गतः सभासद्भिरुपविष्टः स रामोऽपि बुभूषया तादृग्गायकभवनेच्छया आसक्तमना बभूव। तुशब्द एवार्थस्तेन कृत्यान्तरव्यवच्छेदः तेन चित्तैकाग्र्यं ध्वनितम् किञ्च तुना प्रतिश्लोकगानप्रशंसां चकारेत्यर्थः ॥ ३६ ॥

इसके बाद राम के वचन से प्रेरित उन दोनों ने मार्गी नाम की गाने की विधि से गान किया और धीरे धीरे सभा में बैठे हुए राम भी सुखानुभव की इच्छा से उसके सुनने में दत्तचित्त हुए ॥ ३६ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥



चतुर्थः सर्गः

सर्वापूर्वमियं येषामासीत्कृत्स्ना वसुंधरा ।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जयशालिनाम् ॥ १ ॥

सर्गचतुष्टयेन सप्रसङ्गं संक्षिप्तरामायणं वारत्रयं प्रदर्श्य विस्तीर्णरामायणमुपक्रमते—सर्वेत्यादिभिः । प्रजापतिं वैवस्वतमनुमुपादाय आरभ्य जयशालिनां विजययुक्तानां येषां नृपाणामियं कृत्स्ना निखिला वसुन्धरा पृथ्वी सर्वापूर्वं सर्वेषां जनानामपूर्वं फलं यथा भवति तथा आसीत् किञ्च वसुन्धरासर्वमेवापूर्वं फलं येषां राज्ञामासीत् प्रापयत् । गत्यर्थकासधातुप्रयोगः । किञ्च सर्वमपूर्वं यस्य तमिति प्रजापतिविशेषणम् ॥ १ ॥

यह समस्त पृथ्वी प्रजापति मनु से लेकर विजय से शोभित होनेवाले जिन राजाओं के समस्त ऐहलौकिक और पारलौकिक अपूर्व फल का साधन थी ॥१ ॥

येषां स सगरो नाम सागरो येन खानितः ।
षष्टिपुत्रसहस्राणि यं यान्तं पर्यवारयन् ॥ २ ॥

येषामिति । यान्तं भोजनाद्यर्थं गच्छन्तं यं षष्टिपुत्रसहस्राणि पर्यवारयन् सहैवागच्छन् येन सागरः समुद्रजननयोग्या भूमिः खानितः षष्टिसहस्रसंख्याकपुत्रैरवदारितः सः प्रसिद्धः सगरो नाम नृपो येषामभवदिति शेषः। सगरो नामेत्यनेन नृपतिलाभः शब्दार्थयोस्तादात्म्यात् किञ्च नामेति प्रसिद्धार्थकम् ॥ २ ॥

जिन राजाओं में सगर नाम के राजा हुए जिन्होंने समुद्र खोद डाला और यात्रा में जिनको साठ सहस्र पुत्र घेरे रहते थे ॥ २ ॥

इक्ष्वाकूणामिदं तेषां राज्ञां वंशे महात्मनाम् ।
महदुत्पन्नमाख्यानं रामायणमिति श्रुतम् ॥ ३ ॥

इक्ष्वाकूणामिति । येषामिक्ष्वाकूणामिक्ष्वाकुवंशप्रभवाणां महात्मनां राज्ञां वंशे महत्सर्वपूजनीयमिदं रामायणं रामपर्यवसानकमाख्यानमुत्पन्नं प्रकटीभूतमिति श्रुतम् नारदब्रह्मोक्त्या निश्चितम् इक्ष्वाकूणां वंशे रामायणमुत्पन्नमित्यनेन रामरामायणयोस्तादात्म्यं सूचितम् प्रसिद्धं च

प्रतिपाद्यप्रतिपादकयोस्तादात्म्यम् 'रामेति द्व्यक्षरं नाम' इत्यादौ। श्लोकत्रयमेकान्वयि ॥ ३ ॥

उन महत्त्वशाली इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के वंश में पूजा करने योग्य और श्रेष्ठ एक आख्यान उत्पन्न हुआ जिसे रामायण कहा जाता है ॥ ३ ॥

तदिदं वर्तयिष्यावः सर्वं निखिलमादितः।
धर्मकामार्थसहितं श्रोतव्यमनसूयया ॥ ४ ॥

तदिति। धर्मकामार्थसहित धर्मश्च कामश्च अर्थश्च तेन वासनात्यागेन सहितः सहो मोक्षः त्यागार्थकहाधातोः घञर्थे कः। किञ्च समस्तकर्म तदुपलक्षितजन्ममरणादि जहाति हापयति स एव स च ते, ते जाता अस्मात् तारकादित्वादितच् धर्मकामार्थमोक्षप्रदमित्यर्थः। किञ्च धर्मकामार्थाः सन्ति अस्मिन्निति हितेन मोक्षेण सहितं तदेव तदिति कर्मधारयः किञ्चार्थशब्देन लौकिकार्थपुरुषार्थौ गृह्येते पुरुषार्थश्च मोक्ष एवेति सर्वत्र प्रसिद्धम् तथा च धर्मश्च कामश्च अर्थौ च तैः सहितं तत्प्रसिद्धमिदं बुद्धिविषयीभूतं सर्वं विस्तीर्णरामायणमादितः वर्तयिष्यामि प्रकटयिष्यामि अतः अनसूयया असूयारहितबुद्ध्या निखिलं श्रोतव्यं धर्मकामार्थमोक्षार्थिभिः ग्रहीतव्यम् ॥ ४ ॥

मैं (वाल्मीकि) इस धर्म और अर्थ से युक्त सम्पूर्ण रामायण का आदि से लेकर अन्ततक गान करूँगा। इसे असूयारहित होकर (श्रद्धा से) सुनना चाहिए ॥ ४ ॥

कोशलो नाम मुदितः स्फीतो जनपदो महान्।
निविष्टः सरयूतीरे प्रभूतधनधान्यवान् ॥ ५ ॥

प्रतिज्ञातमाह—कोशल इति। मुदितः नित्यानन्दविशिष्टः स्फीतः समृद्धः महान्सर्वोत्कृष्टः सरयूतीरे निविष्टः सरयूभयतीरसमीपवर्ती प्रभूतधनधान्यवान् उद्भूतः धनधान्यविशिष्टः कोशलो नाम प्रसिद्धः जनपदो देशः अस्तीति शेषः। कोशलस्य मुदितत्वोक्त्या तद्देशस्य चेतनत्वं सूचितम् तेन तस्याप्राकृतत्वं ध्वनितम् ॥ ५ ॥

सरयू नदी के तीर पर बसा हुआ, सन्तुष्ट जनवाला, पर्याप्त धन तथा अन्न से पूर्ण समृद्धिशाली कोशल नाम का महान् देश है ॥ ५ ॥

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता ।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ ६ ॥

अयोध्येति । तत्र तस्मिन्कोशलदेशे लोकविश्रुता स्वर्गादिलोकप्रसिद्ध या अयोध्या नाम नगरी स्वयमासीत्स्वेच्छया प्रकटीभूता सा मानवेन्द्रे मानवस्वामिना मनुना पुरी स्वराजधानी निर्मिता कृता ॥ ६ ॥

वहाँ लोकों में प्रसिद्ध अयोध्या नाम की नगरी है जिसका मनुष्यों में श्रे राजा मनु ने स्वयं निर्माण किया था ॥ ६ ॥

आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा ॥ ७ ॥

प्रकटितायोध्याप्रमाणमाह—आयतेति । श्रीमती निखिलैश्वर्यशोभा विशिष्टा सुविभक्ता यथोचितगृहादिविन्यस्ता महापथा तत्तद्गृहगमनो चितप्रशंसनीयमार्गा तयोः कर्मधारयः किञ्च सुविभक्तेभ्यः यथोचितविन्यस्त गृहेभ्यः महापथो यस्यां सा । दश च द्वे च योजनानि आयता द्वादश योजनदीर्घा त्रीणि योजनानि विस्तीर्णा तिर्यग्विस्तारयुक्ता ॥ ७ ॥

शोभा से भरी हुई यह नगरी (अयोध्या) बारह योजन लम्बी और ती योजन चौड़ी थी, जिसमें अलग-अलग विशाल महापथ (बड़ी सड़क) ब हुए थे ॥ ७ ॥

राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता ।
मुक्तपुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः ॥ ८ ॥

राजेति । महता विपुलदीर्घविस्तारवता सुविभक्तेन असंमिलिते नित्यशो मुक्तपुष्पावकीर्णेन विमानगतदेवाङ्गनादित्याजितपुष्पविशिष्टे नित्यशो जलसिक्तेन जलसेकविशिष्टेन राजमार्गेण राजगमनोचिताध्वना शोभिता महापुरी अयोध्या आसीदिति शेषः । द्वयोरेकत्रान्वयः ॥ ८ ॥

बड़े और सुन्दर ढंग से विभक्त, खुले हुए पुष्पों से व्याप्त, जिसमें नित्य ज की सिंचाई होती थी ऐसे राजमार्ग (जिस मार्ग से राजा लोग निकला करते हैं) से शोभित थी ॥ ८ ॥

तां तु राजा दशरथो महाराष्ट्रविवर्धनः ।
पुरीमावासयामास दिवं देवपतिर्यथा ॥ ९ ॥

तामिति । महाराष्ट्रविवर्धनः राष्ट्राणि देशान् विवर्द्धयतीति राष्ट्र

विवर्द्धनः महानेव स इति कर्मधारयः राजा महाराजाधिराजो दशरथोऽपि तां देवलोकादिप्रसिद्धां पुरीमयोध्यां दिवं स्वर्गं देवपतिर्यथा इन्द्र इव आवासयामास 'हेतुमति च' इति णिच् ॥ ९ ॥

राज्य के बढ़ानेवाले महान् राजा दशरथ ने उस पुरी को जैसे स्वर्ग को देवपति इन्द्र ने अच्छी भाँति बसाया वैसे स्थापित किया ॥ ९ ॥

कपाटतोरणवतीं सुविभक्तान्तरापणाम् ।
सर्वयन्त्रायुधवतीमुपेतां सर्वशिल्पिभिः ॥ १० ॥

तामेव वर्णयति—कपाटेत्यादि यावत्सर्गसमाप्ति । कपाटतोरणवतीं प्रशस्तकपाटतोरणसयुक्ताम् तोरणो बहिर्द्वारप्रदेशालङ्कारदारुबन्धः सुविभक्तान्तरापणां सुविभक्तानि परस्परमसंमिलितानि अन्तराणि मध्यानि येषां ते आपणाः निषद्याः यस्यां सा ताम् सर्वयन्त्रायुधवतीं सर्वाणि लोकप्रसिद्धानि यन्त्राणि शिलाक्षेपणीप्रभृतीनि आयुधानि बाणादयः यथोचितस्थाने सन्ति यस्यां सा ताम् सर्वशिल्पिभिः कृत्स्नचित्रकारप्रभृतिभिः उपेतां युक्ताम् 'आपणस्तु निषद्यायाम्' इत्यमरः ॥ १० ॥

यह नगरी किवाड़ और तोरणों वाली (द्वार के समस्त काष्ठों को एक में जोड़नेवाला बाहर का वह काष्ठ जिससे द्वार की शोभा बढ़ती है) भीतर चौड़े बाजारों वाली, सब प्रकार के यन्त्रों और आयुधों वाली और सब कलाओं को जानने वाले शिल्पियों (कारीगरों) की निवासभूमि थी ॥ १० ॥

सूतमागधसंबाधां श्रीमतीमतुलप्रभाम् ।
उच्चाट्टालध्वजवतीं शतघ्नीशतसंकुलाम् ॥ ११ ॥

सूतेति । सूतमागधसम्बाधां सूताः पौराणिकाः मागधाः वंशशंसकाः तैः सम्बाधां व्याप्तां श्रीमतीं धनधान्यसमृद्धामतुलप्रभां तुलारहितकान्तिविशिष्टाम् उच्चाट्टालध्वजवतीमुन्नताट्टध्वजविशिष्टां शतघ्नी शतसङ्कुलां शतघ्नीशतैः प्राकारस्थयन्त्रविशेषानन्तैः सङ्कुलां विन्यस्ताम् 'शतघ्नी तु चतुस्ताला लोहकण्टकसञ्चिता' इति यादवः । शतशब्दोऽनन्तवाची ॥ ११ ॥

बन्दीजन और वंशावलिपाठक भाट से भरी हुई, शोभायमान, अतुलनीय कान्तिवाली, ऊँची अटारी और पताका वाली, तथा सैकड़ों तोपों से व्याप्त थी ॥ ११ ॥

वधूनाटकसंघैश्च संयुक्तां सर्वतः पुरीम् ।
उद्यानाम्रवणोपेता महतीं शालमेखलाम् ॥ १२ ॥

वध्विति । वधूनाटकसङ्घैः स्त्रीनर्तकसमूहैः संयुक्ता सर्वतः चतुर्दिक्षु पुर्यः वाराणस्यादयो यस्यां सा ताम् तथा च स्मृतिः 'साकेतपश्चिमद्वारि वृन्दावनमदूरतः' इत्यादि समासान्तविधेरनित्यत्वात्कबभावः । उद्यानाम्रवणोपेताम् आम्रवनरूपोद्यानविशिष्टाम् आहिताग्न्यादित्वात्परनिपातः। महतीं समाधिकरहितां शालमेखलां शालः प्राकारः शालवनं वा मेखला आवरणं यस्यास्ताम् 'प्राकारो वरणः शालः' इत्यमरः ॥ १२ ॥

जो महापुरी स्थान-स्थान पर स्त्रियों के द्वारा प्रदर्शित नाटकसंघों से युक्त, बगीचे और आम के वनों वाली, और साल की मेखला वाली या परकोटा से घिरी हुई थी ॥ १२ ॥

दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गामन्यैर्दुरासदाम् ।
वाजिवारणसंपूर्णां गोभिरुष्ट्रैः खरैस्तथा ॥ १३ ॥

दुर्गेति । दुर्गगम्भीरपरिखां दुर्गा दुर्गमा गम्भीरा अगाधा परिखा यस्यास्ताम् अत एव दुर्गा गमनानर्हामत एव अन्यैः शत्रुभिः दुरासदामशक्यपराभवां वाजिवारणसंपूर्णामश्वहस्तिसमृद्धां गोभिरुष्ट्रैः खरैश्च तथा संपूर्णाम् ॥ १३ ॥

किले की बड़ी गहरी खाई वाली, दुर्गम तथा अन्य लोगों के न पहुँचने योग्य, अश्व, गज, गौ, ऊँट और गधों से भरी हुई थी ॥ १३ ॥

सामन्तराजसंघैश्च बलिकर्मभिरावृताम् ।
नानादेशनिवासैश्च वणिग्भिरुपशोभिताम् ॥ १४ ॥

सामन्तेति । बलिः करनियमनं कर्म तेषां तैः बलिकर्मभिः सामन्तराजसङ्घैः समन्ताद्भवाः सामन्ताः 'अव्ययानां भमात्रे टिलोपः' इत्यनेन आतो लोपः ते एव राजानः खण्डमण्डलेश्वरास्तेषां सङ्घाः समूहास्तैरावृतां नानादेशनिवासैः वणिग्भिश्च उपशोभिताम् । चकारेण मित्रीभूतखण्डमण्डलेश्वरैश्चावृताम् 'भागधेयः करो बलिः' इत्यमरः ॥ १४ ॥

कर देनेवाले सामन्त राजाओं के समुदाय और अनेक देशों में रहनेवाले वणिक् जनों से शोभित थी ॥ १४ ॥

प्रासादै रत्नविकृतैः पर्वतैश्चोपशोभिताम् ।
कूटागारैश्च संपूर्णामिन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ १५ ॥

प्रासादैरिति । रत्नविकृतैः रत्नैर्विकृतैर्विशेषतो रचितैः प्रासादैः राजगृहैः पर्वतैः क्रीडोपयुक्तगिरिभिश्च उपशोभिताम् किञ्च रत्नानां वयः पक्षिणः कृताः निर्मिताः येषु तैरित्यर्थः । कूटागारैः वलभीभिश्च संपूर्णामत एव इन्द्रस्य अमरावतीमिव इन्द्ररक्षिततत्पुरीसदृशीत्वेन प्रतीयमानामित्यर्थः ॥ १५ ॥

रत्नजटित राजमहलों, क्रीड़ा-पर्वतों तथा स्त्रियों के क्रीडागृहों से व्याप्त होने के कारण वह समस्त नगरी इन्द्र की अमरावती पुरी के समान थी ॥ १५ ॥

चित्रामष्टापदाकारां वरनारीगणायुताम् ।
सर्वरत्नसमाकीर्णां विमानगृहशोभिताम् ॥ १६ ॥

चित्रामिति । चित्रां नानावर्णविशिष्टाम् अष्टापदाकारां शारिफलाकृतिम् 'अष्टापदं शारिफलम्' इत्यमरः । किञ्च अष्टापदस्य सुवर्णस्याकारः आकृतिर्यस्याः अप्राकृतस्वर्णमयीमित्यर्थः । किं च अष्टापदस्य सुवर्णस्य आकारः जनग्रहणार्थं प्रतिदिनं राजमार्गे राजकर्तृकप्रक्षेपो यस्यां तां विक्षेपणार्थककृधातोः प्रयोगः । किञ्च अष्टानां व्यापकानां ब्रह्मविष्णुमहेश्वराणामापस्य व्यापकत्वसदृशव्यापकत्वस्य दः दानं यस्याम् आश्रितजनेभ्यः ब्रह्मादिव्यापकत्वादिसदृशव्यापकत्वादिप्रदात्रीमित्यर्थः । अष्टशब्दो व्याप्तार्थकः अशधातुप्रकृतिककर्तृनिष्ठान्तः, न कारः उत्पत्तिर्यस्याः नित्यामित्यर्थः । सा एव सेति कर्मधारयः तां वरनारीगणायुतां वरनारीगणैरायुतां व्याप्तां सर्वरत्नसमाकीर्णाम् अनेकजातीयरत्नसंपूर्णां विमानगृहशोभितां विमानगृहैः सप्तभूमिकवेश्मभिः शोभिताम् 'विमानोऽस्त्री देवयाने सप्तभूमौ च' इति निघण्टुः । किञ्च विमानगृहैः अपरिमितागारैः शोभिताम् ॥ १६ ॥

जो विचित्र, सुवर्ण[1] के समान शोभावाली, सुन्दर स्त्रियों से युक्त, सब प्रकार के रत्नों से भरी और विमानगृहों से अति शोभित थी ॥ १६ ॥

---

१. अष्टापदाकारां के तीन अर्थ टीकाओं में हैं—नागेश ने 'सुवर्णजलेन कृतः आकारः यस्याः इत्येके द्यूतफलाकारामित्यन्ये' कहा है । गोविन्दराज ने 'मध्ये राजगृहं चतुर्दिक्षु राजवीथयः तन्मध्येष्ववकाशश्च' व्याख्या की है ।

गृहगाढामविच्छिद्रां समभूमौ निवेशिताम् ।
शालितण्डुलसंपूर्णामिक्षुकाण्डरसोदकाम् ॥ १७ ॥

गृहेति । गृहगाढां कुटुम्बिगृहनिबिडाममामपरिमितप्रभावाम् । विच्छिद्रां दोषरहिताम् ज्योतिश्शास्त्रानुकूलामित्यर्थः त्रयाणां कर्मधारयः 'छिद्रं रन्ध्रे दूषणेपि' इति भास्करः । समभूमौ समा वैषम्यरहिता कान्तिविशिष्टा वा या भूमिः तस्यां निवेशितां प्रकटिताम् शालितण्डुल-सम्पूर्णाम् 'शालयः श्वेततण्डुलाः' इति वैजयन्ती । इक्षुकाण्डरसोदका-मिक्षुकाण्डरससदृशोदकविशिष्टाम्, किञ्च उदकसदृशव्ययीक्षुदण्ड-रसविशिष्टाम् ॥ १७ ॥

कुटुम्बियों के घरों से सघन, दोषरहित, समतल भूमि पर बसी हुई, शालि के चावलों से भरी हुई और ईख के काण्ड (पोढ़) के रस के सदृश स्वादु जल वाली थी ॥ १७ ॥

दुन्दुभीभिर्मृदङ्गैश्च वीणाभिः पणवैस्तथा ।
नादितां भृशमत्यर्थं पृथिव्यां तामनुत्तमाम् ॥ १८ ॥

दुन्दुभीभिरिति । दुन्दुभीभिः भेरीभिः मृदङ्गैः वीणाभिश्च पणवैः मर्दलैः भृशं नादितां पृथिव्यां तथा पृथिव्यामपि अत्यर्थमनुत्तमां ताम् किञ्च पृथिव्याः अ न अन्तः परिच्छेदो यस्याः सा ताम् पृथिव्यांतां सर्वलोका-दूर्ध्वमपि विद्यमानामित्यर्थः । अत एव अत्यर्थमनुत्तमामतिश्रेष्ठां दुन्दुभीत्यत्र दीर्घ आर्षः ॥ १८ ॥

भेरी, मृदङ्ग वीणा और ढोल आदि के नादों से अत्यन्त और अधिक शब्दायमान, पृथ्वी में सर्वश्रेष्ठ थी ॥ १८ ॥

विमानमिव सिद्धानां तपसाधिगतं दिवि ।
सुनिवेशितवेश्मान्तां नरोत्तमसमावृताम् ॥ १९ ॥

विमानमिति । तपसा अधिगतं प्राप्तं दिवि सिद्धानां विमानमिव सकलाभीष्टदा त्रीत्वात्तादृशविमानसदृशीत्वेन प्रतीयमानामित्यर्थः । सुनिवेशितवेश्मान्ताम् सुनिवेशिताः वेश्मान्ताः गृहप्रान्ताः यस्यां ताम् नरोत्तमसमावृतां नरोत्तमैः परमविद्वद्भिः समावृताम् अत एव राज-सङ्घैरावृतामित्यनेन पौनरुक्त्यम् ॥ १९ ॥

सिद्धों को तप के द्वारा स्वर्ग में प्राप्त विमान के समान सुन्दर निवेशों से युक्त भीतरी और बाहरी भाग वाले घरों और उत्तम मनुष्यों से व्याप्त थी ॥ १९ ॥

ये च बाणैर्न विध्यन्ति विविक्तमपरापरम् ।
शब्दवेध्यं च विततं लघुहस्ता विशारदाः ॥ २० ॥

ये चेति । लघुहस्ताः शिक्षादिना प्राप्तहस्तलाघवोकाः शीघ्रवेधिन इति यावत् अत एव विशारदाः अस्त्रशस्त्रप्रयोगनिपुणाः अपि ये विविक्तं स्वसङ्घाच्युतमपरापरं न परे पित्रादयः अपरे पुत्रादयः यस्य तं स्ववंशतन्तुमित्यर्थः । शब्दवेध्यं शब्दमात्रलक्षणजनितहननयोग्यं प्रच्छन्नमित्यर्थः । विततं विगतः ततः युद्धविस्तारो यस्य नष्टसामर्थ्यादिना भ्रष्टयुद्धकमित्यर्थः । तं च न विध्यन्ति ॥ २० ॥

जो सिद्धहस्त और शस्त्र चलाने में निपुण यूथभ्रष्ट, अपने परिवार में अकेले, केवल प्रेक्षक, छिपे हुए, और असमर्थ लोगों पर बाणों से प्रहार नहीं करते थे ॥ २० ॥

सिंहव्याघ्रवराहाणां मत्तानां नदतां वने ।
हन्तारो निशितैः शस्त्रैर्बलाद् बाहुबलैरपि ॥ २१ ॥

सिंहेति । ये च मत्तानां मदविशिष्टानामत एव वने नदतां नादयुक्तानां सिंहव्याघ्रवराहाणां बलाद्बलप्रयुक्तैः निशितैस्तीक्ष्णैः शस्त्रैः बाहुबलैः शस्त्रादिरहितबाहुभिश्चेत्यर्थः, हन्तारः ॥ २१ ॥

जो मतवाले और वन में गुजरते हुए सिंह, व्याघ्र और शूकरों को तीखे शस्त्रों और भुजाओं के बल से बलात् मार गिराते थे ॥ २१ ॥

तादृशानां सहस्रैस्तामभिपूर्णां महारथैः ।
पुरीमावासयामास राजा दशरथस्तथा ॥ २२ ॥

तादृशेति । तादृशानां सहस्रैः महारथैः अभिपूर्णां तां पुरीमयोध्यां राजा महाराजाधिराजः तथा पित्राद्यावासनप्रकारेणावासयामास संस्थापयामास पालयामासेत्यर्थः ॥ २२ ॥

ऐसे सहस्रों महारथों से भरी हुई अयोध्या पुरी में राजा दशरथ राज्य करते थे ॥ २२ ॥

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतां द्विजोत्तमैर्वेदषडङ्गपारगैः ।
सहस्रदैः सत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षिकल्पैऋषिभिश्च केवलैः ॥ २३ ॥

तामिति । अग्निमद्भिः अग्निहोत्रिभिः गुणवद्भिः शमदमादिगुणसंपन्नैः वेदषडङ्गपारगैः अधीताध्यापितसाङ्गसर्ववेदः सहस्रदैः बहुप्रदैः सत्यरतैः मिथ्या सम्बन्धशून्यैः महात्मभिः पूजितस्वरूपैः द्विजोत्तमैः ब्राह्मणैः महर्षिकल्पैः वसिष्ठसदृशैः केवलैः अविद्यासम्बन्धशून्यैः ऋषिभिश्चावृतां तां पुरीमावासयामासेति पूर्वेणान्वयः ।। २३ ।।

जो अग्निहोत्रियों, बड़े गुणी, वेद और उनके अङ्गों (व्याकरण, ज्योतिष, शिक्षा, निरुक्त, कल्प, और छन्द) के वेत्ता, सहस्रों तक देनेवाले, सत्यवक्ता, महात्मा, महर्षियों के तुल्य केवल ऋषियों और सुकुल ब्राह्मणों से पूर्ण थी ।।२३।।

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां चतुर्थः सर्गः ।। ४ ।।



पञ्चमः सर्गः

तस्यां पुर्यामयोध्यायां वेदवित्सर्वसंग्रहः ।
दीर्घदर्शी महातेजाः पौरजानपदप्रियः ॥ १ ॥

पूर्वसर्गे पुरीं संवर्ण्य राजानं वर्णयन् तद्वासिनो वर्णयति—तस्यामित्यादिभिः । वेदवित् वेदज्ञः सर्वेषां दुर्गादीनां सङ्ग्रहः सङ्ग्राहकः दीर्घदर्शी विलम्बकालभाविफलदर्शनशीलः महातेजाः परमवर्चस्वी अतएव पौरजानपदप्रियः पुरे भवाः पौराः जनपदे देशे भवाः जानपदास्तेषां प्रियः ॥ १ ॥

उस अयोध्यापुरी में, वेदों का वेत्ता, सब संग्रह करने वाला, दीर्घदर्शी, अतितेजस्वी, पुर और जनपद निवासियों का प्रिय ॥ १ ॥

इक्ष्वाकूणामतिरथो यज्वा धर्मपरो वशी ।
महर्षिकल्पो राजर्षिस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २ ॥

इक्ष्वेति । अतिरथः दशसहस्रमहारथैरसाहाय्येन युद्धकर्ता यज्वा यथाविधि यागकारी इक्ष्वाकूणां धर्मपरः इक्ष्वाकूचितसत्यप्रतिज्ञत्वादिधर्मविशिष्टः नित्यसापेक्षत्वात्समासः वशी स्वतन्त्रः महर्षीन् कल्पयति सामग्रीसम्पादकत्वविघ्नध्वंसकत्वादिना यागादिसमर्थान्करोतीति महर्षिकल्पः महर्षिः महांश्चासौ ऋषिश्चेति कर्मधारयः अतएव त्रिषु कृत्स्नोर्ध्वकृत्स्नमध्यकृत्स्नाधोरूपेषु लोकेषु विश्रुतः ख्यातः ॥ २ ॥

इक्ष्वाकुवंश में अतिबली, यज्ञ करनेवाला, धर्माचरण करनेवाला, सबको वश में करनेवाला, महर्षियों के तुल्य, राजाओं में ऋषि, तीनों लोकों में प्रसिद्ध ॥ २ ॥

बलवान्निहतामित्रो मित्रवान्विजितेन्द्रियः ।
धनैश्च सञ्चयैश्चान्यैः शक्रवैश्रवणोपमः ॥ ३ ॥

बलवानिति । बलवान्साङ्गसेनाविशिष्टः निहतामित्रः निहतः अमित्रः शत्रुर्येन मित्रवान् प्रशस्तमित्रविशिष्टः विजितेन्द्रियः वशीकृतान्तर्बहिःकरणः सञ्चेतुं योग्याः सञ्चयास्तैः सञ्चयैः प्रकृतैर्धनैः अन्यैः प्राकृतविलक्षणैर्दिव्यैश्च

धनैर्विशिष्टः शक्रवैश्रवणोपमः इन्द्रकुबेरसदृशत्वेन प्रतीयमान चकारान्तरेण नित्यत्वादिधर्मेण लौकिकोपमानार्हः ॥ ३ ॥

अति बलिष्ठ, शत्रुनाशक, अच्छे मित्रों वाला, जितेन्द्रिय, धनों और अन्य सामग्रियों के संग्रह में इन्द्र और कुबेर के तुल्य ॥ ३ ॥

यथा मनुर्महातेजा लोकस्य परिरक्षिता ।
तथा दशरथो राजा लोकस्य परिरक्षिता ॥ ४ ॥

यथेति । राजा महाराजाधिराजो दशरथः तस्यां प्रसिद्धायां पुर्यामयोध्यायां वसन् सन्यथा लोकस्य परिरक्षिता लोकपरिरक्षणार्हः महातेजाः मनुः वैवस्वतः जगदपालयत् तथा जगदपालयत् 'अर्हे कृत्यतृचश्च' इति तृच् श्लोकचतुष्टयमेकान्वयि ॥ ४ ॥

जैसे महातेजस्वी वैवस्वत मनु लोक के सब प्रकार से रक्षक थे वैसे ही राजा दशरथ लोक के सब प्रकार से रक्षक थे ॥ ४ ॥

तेन सत्याभिसंधेन त्रिवर्गमनुतिष्ठता ।
पालिता सा पुरी श्रेष्ठा इन्द्रेणेवामरावती ॥ ५ ॥

तेनेति । सत्याभिसन्धेन सत्यप्रतिज्ञेन त्रिवर्गम् अप्राकृतधर्मकामार्थमनुतिष्ठता यथाशास्त्रमनुभवता तेन महाराजाधिराजदशरथेन इन्द्रस्यामरावती इव इन्द्राधिष्ठिता अमरावतीसदृशी श्रेष्ठा सा प्रसिद्धा पुरी अयोध्या पालिता यथाशास्त्रं रक्षिता अभवदिति शेषः ॥ ५ ॥

सच्ची प्रतिज्ञावाले, त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) का अनुष्ठान करते हुए राजा दशरथ ने जैसे इन्द्र अमरावती का पालन करता है वैसे पालन किया ॥ ५ ॥

तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः ।
नरास्तुष्टा धनैः स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः ॥ ६ ॥

तस्मिन्निति । बहुश्रुताः सकलसच्छास्त्रश्रवणसंपन्नाः अत एव स्वैः स्वैर्धनैस्तुष्टाः सन्तोषं प्राप्ताः अत एवालुब्धाः अनुचितद्रव्यादिलोभरहिताः अत एव सत्यवादिनः अत एव धर्मात्मानः धर्मस्वरूपाः अत एव हृष्टाः प्राप्तानन्दाः नराः तस्मिन्प्रसिद्धे पुरवरे अयोध्यानगरे आसन्निति शेषः ॥ ६ ॥

उस श्रेष्ठ नगरी में सब मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत विद्वान्, अपने-अपने धन से सन्तुष्ट, अलोभी और सत्यवादी थे ॥ ६ ॥

नाल्पसन्निचयः कश्चिदासीत्तस्मिन्पुरोत्तमे।
कुटुम्बी यो ह्यसिद्धार्थोऽगवाश्वधनधान्यवान् ॥ ७ ॥

नाल्पेति। यः कुटुम्बी पुत्रकलत्रादिविशिष्टः सः अल्पसन्निचयः अल्पः सन्निचयः कोशो यस्य स कश्चित्तस्मिन्पुरोत्तमे नासीत् अगवाश्वधनधान्यवान् गवाश्वधनधान्यरहितः नासीत् असिद्धार्थः पुरुषार्थरहितश्च नासीत् हिशब्दश्चार्थे नञाद्यावृत्तिः योग्यतावशात् एवमुत्तरत्रापि सर्वोऽपि बहुकोशादिमानासीदित्यर्थः ॥ ७ ॥

उस उत्तम पुरी में कोई भी कुटुम्बी अल्पसंचयवाला, अर्थसिद्धि से विरहित और गौ, अश्व, धन तथा धान्य से विरहित नहीं था ॥ ७ ॥

कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥ ८ ॥

कामीति। कामी कामवशः पुरुषः अयोध्यायां क्वचिद्द्रष्टुं न शक्यम् कदर्यः लोभहेतुकात्मादिपीडकश्च नृशंसः क्रूरश्च पुरुषः अयोध्यायां क्वचिद् द्रष्टुं न शक्यमन्वेषणेनापि न लभ्यते इत्यर्थः अविद्वान् विद्वत्तारहितः न द्रष्टुं शक्यम् नास्तिकः परलोकाभावनिश्चयवान् द्रष्टुं न शक्यम् शक्यमिति सामान्ये नपुंसकम् 'आत्मानं धर्मकृत्यं च पुत्रदारांश्च पीडयेत्। लोभाद्यः पितरौ भ्रातॄन्स कदर्य इति स्मृतः।' 'नृशंसो घातकः क्रूरः' इत्यमरः ॥ ८ ॥

अयोध्या में कामी, लोभवश स्वयं, पुत्र, दारा, माता, पिता और भाई को पीड़ा पहुँचाने वाला, कदर्य (कंजूस), निर्दय, मूर्ख और नास्तिक पुरुष कहीं भी देखे नहीं जा सकते थे ॥ ८ ॥

सर्वे नराश्च नार्यश्च धर्मशीलाः सुसंयताः।
मुदिताः शीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥ ९ ॥

सर्वे इति। नराः नार्यश्च सर्वे धर्मशीलाः वेदतात्पर्यविषयीभूतधर्मविचारपरा अत एव सुसंयता अत एव मुदिताः सम्यग्वशीकृतेन्द्रियाः अत एव अमलाः मलसम्बन्धशून्या अत एव शीलवृत्ताभ्यां स्वभावाचाराभ्यां महर्षय इव महर्षिसदृशाः सन्तीति शेषः सर्वे इत्यत्र 'पुमान् स्त्रिया' इत्येकशेषः विभक्तिविपरिणामेनान्वयो वा ॥ ९ ॥

सब नर और नारी, धर्मात्मा, इन्द्रियों को वस में रखनेवाले, शील और सदाचार से प्रसन्न अमल (निर्मल) महर्षियों के समान थे ॥ ९ ॥

नाकुण्डली नामुकुटी नास्रग्वी नाल्पभोगवान् ।
नामृष्टो न नलिप्ताङ्गो नासुगन्धश्च विद्यते ॥ १० ॥

नाकुण्डलीति । अकुण्डली कुण्डलरहितो न विद्यते एवममुकुटी न अस्रग्वी न अल्पभोगवान्न अमृष्टः अनिर्मलो न न नलिप्ताङ्गः न लिप्तं चन्दनादिलेपयुक्तमङ्गं यस्य स न नशब्देन समासान्नलोपाप्राप्तिः नानुलिप्ताङ्ग इति पाठे अनुलिप्तमङ्गं यस्य स अनुलिप्ताङ्गः न अनुपलिप्ताङ्गः नानुलिप्ताङ्गः अत्र पक्षे नकारोऽनुकर्षणीयः अकारो वा छेत्तव्यः असुगन्धिः शोभनः गन्धो यस्य स सुगन्धिः कुङ्कुमकस्तूर्यादिः न सुगन्धिर्यस्य सोऽपि न नासुगन्ध इति पाठे न सुगन्धः शोभनो गन्धो यस्मिन्स असुगन्धः पुरुषो नेत्यर्थः गन्धस्येत्वे तदेकान्तग्रहणमित्युक्त्येत्त्वविरहः वस्तुतस्तु इकारान्तपाठेऽपि शोभनो गन्धः स्वाभाविकशरीरामोदो यस्येत्यर्थे न क्षतिः ॥१०॥

(अयोध्या में कोई भी ऐसा पुरुष नहीं था) जो कुण्डल, मुकुट और माला धारण न किये हो, अल्प भोगवाला, मैला-कुचैला, चन्दन आदि का लेप न करनेवाला और सुगन्ध युक्त पदार्थों से रहित हो ॥ १० ॥

नामृष्टभोजी नादाता नाप्यनङ्गदनिष्कधृक् ।
नाहस्ताभरणो वापि दृश्यते नाप्यनात्मवान् ॥ ११ ॥

नामृष्टेति । अमृष्टभोजी बलिवैश्वदेवाद्यभावप्रयुक्ताऽशुद्धान्नभोजी नैव दृश्यते अदाता अतिदातृत्वक्रियारहितश्च न अनङ्गदनिष्कधृक् बाहुभूषणोरोभूषणभूषितपुरुषभिन्नश्च न अहस्ताभरणः अङ्गुलीयकादिरहितश्च न अनात्मवान् स्वरूपज्ञानरहितश्च न दृश्यते अपित्रयं वाशब्दश्च चार्थे एको वाशब्द एवार्थे ॥ ११ ॥

बलिवैश्वदेव विना किये ही अपवित्र भोजन करनेवाला, अदाता, अङ्ग में सुवर्ण न धारण करनेवाला, कङ्कणशून्य हाथवाला और मन पर विजय न प्राप्त करनेवाला नहीं था ॥ ११ ॥

नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः ।
कश्चिदासीदयोध्यायां न चावृत्तो न संकरः ॥ १२ ॥

नेति । अनाहिताग्निः निरवच्छिन्नाग्निहोत्ररहितः कश्चित् द्विजः

अयोध्यायां नासीत् अयज्वा सोमयागरहितश्च न क्षुद्रः अल्पविद्यादिकश्च न तस्करश्चोरश्च न निर्वृत्तसङ्करः निर्वृत्तः सम्पादितः सङ्करः परक्षेत्रे बीजाधानादिना साङ्कर्यं येन स च न सङ्कर इति भावप्रधानो निर्देशः वाशब्दश्चार्थे न चावृत्तो न सङ्कर इति भट्टाभिप्रेत पाठः तत्रावृत्तः सदाचाररहितो नेत्यर्थः ॥ १२ ॥

अयोध्या में कोई भी पुरुष अग्निहोत्र और यज्ञ न करनेवाला, अल्पविद्या और अल्प ऐश्वर्यवाला, चोर, सदाचाररहित और वर्णसंकर नहीं था ॥ १२ ॥

स्वकर्मनिरता नित्यं ब्राह्मणा विजितेन्द्रियाः ।
दानाध्ययनशीलाश्च संयताश्च प्रतिग्रहे ॥ १३ ॥

अयोध्यानित्यनिवासिवृत्तमुक्त्वा नैमित्तिकनिवासिद्विजवृत्तमाह—स्वेत्यादिभिः । नित्यं स्वकर्मनिरताः अत एव विजितेन्द्रियाः अत एव दानाध्ययनशीलाः प्रतिग्रहे च संयताः नियमिताः निषिद्धप्रतिग्रहरहिता इत्यर्थः आसन्निति शेषः ॥ १३ ॥

किन्तु सब ब्राह्मण अपने कर्म में तत्पर, इन्द्रियों पर विजय वाले, दान और अध्ययन करने वाले, और दान लेने में संकोच करनेवाले थे ॥ १३ ॥

नास्तिको नानृती वापि न कश्चिदबहुश्रुतः ।
नासूयको न चाशक्तो नाविद्वान्विद्यते क्वचित् ॥ १४ ॥

नेति । नास्तिकः परलोकाभावविषयकनिश्चयविशिष्टः कश्चिन्न विद्यते अनृतकः अनृतमसत्यं कायति वदतीति किञ्च न ऋत सत्यं यस्य स च न अबहुश्रुतः बहुश्रुतभिन्नो न असूयकः गुणेषु दोषाविष्कर्ता न अशक्तः सामर्थ्यरहितो न अविद्वान् विद्वत्तारहितश्च न तथाशब्दश्चार्थे । नास्तिको नानृती वापीति भट्टसम्मतः पाठः तत्रानृत इति पाठे अर्शआद्यच् स एवार्थ इति व्याख्यातम् । तत्पाठद्वये नञावृत्तिर्बोध्या ॥ १४ ॥

वेदों की निन्दा करने वाला नास्तिक, असत्यवादी, केवल एक विषय का जानकार, निन्दक, अशक्त और मूर्ख कहीं भी नहीं था ॥ १४ ॥

नाषडङ्गविदत्रास्ति नाव्रतो नासहस्रदः ।
न दीनः क्षिप्तचित्तो वा व्यथितो वापि कश्चन ॥ १५ ॥

नेति । अषडङ्गवित् वेदाङ्गशिक्षाकल्पादिवेदितृभिन्नः अत्रायोध्यायां कश्चन नासीत् अव्रत एकादश्यादिव्रतशून्यो न असहस्रदः सहस्रदातृ-

भिन्नः अल्पदाता च नेत्यर्थः । दानः दुर्बलशरीरो न क्षिप्तचित्त· अनवस्थित-मनस्कश्च न व्यथितः व्याधिपीडितश्च न वाशब्दद्वयमपिश्च चार्थे ॥१५॥

वेदों के छः अंगों को न जाननेवाला, व्रत न करनेवाला, अनेक विषयों का ज्ञान न रखनेवाला, दुर्बलदेह, व्याकुलचित्त, व्याधि आदि से पीड़ित भी कोई नहीं था ॥ १५ ॥

कश्चिन्नरो वा नारी वा नाश्रीमान्नाप्यरूपवान् ।
द्रष्टुं शक्यमयोध्यायां नापि राजन्यभक्तिमान् ॥ १६ ॥

कश्चिदिति । कश्चिन्नरः नारी च अश्रीमान् सम्पत्तिरहितः अयोध्यायां द्रष्टुं न शक्यम् अरूपवान् सौन्दर्यविशिष्टभिन्नश्च न राजनि महाराजाधिराजे अभक्तिमांश्च न अपी द्वौ च चार्थौ ॥ १६ ॥

अयोध्या में कोई नर अथवा नारी कान्तिरहित, कुरूप और राजा के प्रति भक्ति न रखनेवाला भी देखने में नहीं आता था ॥ १६ ॥

वर्णेष्वग्र्यचतुर्थेषु देवतातिथिपूजकाः ।
कृतज्ञाश्च वदान्याश्च शूरा विक्रमसंयुताः ॥ १७ ॥

वर्णचतुष्टयसाधारणवृत्तमाह—वर्णेष्वित्यादित्रिभिः श्लोकैः । अग्र्यचतुर्थेषु अग्र्यः ब्राह्मणः चतुर्थो येषां तद्गुणसंविज्ञानो बहुव्रीहिः तेषु वर्णेषु ब्राह्मणादिषूद्भवा जनाः देवतातिथिपूजकाः कृतज्ञाः कृतोपकारविस्मृत्यभाववन्तश्च वदान्याः दाननिपुणाश्च शूराः शौर्यविशिष्टाश्च विक्रमसंयुताः पराक्रमवन्तश्च आसन्निति शेषः 'वदान्यो दानशौण्डः स्यात्' इति विश्वः ॥ १७ ॥

ब्राह्मण आदि चारों वर्णों में सब लोग देवता और अतिथि के पूजक, उपकार माननेवाले, उदार, शूर और पराक्रमवाले ॥ १७ ॥

दीर्घायुषो नराः सर्वे धर्मं सत्यं च संश्रिताः ।
सहिताः पुत्रपौत्रैश्च नित्यं स्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥ १८ ॥

दीर्घेति । दीर्घायुषः धर्मं सत्यं च संश्रिताः पुत्रपौत्रैः स्त्रीभिश्च नित्यं सहिताः पुरोत्तमे अयोध्यानगरे सर्वे नराः आसन्निति शेष ॥ १८ ॥

दीर्घायुः धर्म तथा सत्य का आश्रय लेनेवाले, सदा पुत्र और पौत्र से पूर्ण तथा स्त्रियों के सहित उस उत्तम पुर में रहते थे ॥ १८ ॥

क्षत्रं ब्रह्ममुखं चासीद्वैश्याः क्षत्त्रमनुव्रताः ।
शूद्राः स्वकर्मनिरतास्त्रीन्वर्णानुपचारिणः ॥ १९ ॥

क्षत्रमिति । क्षत्रं क्षत्रियकुलं ब्रह्ममुख ब्राह्मणप्रधानकमासीत् वैश्याश्च क्षत्रमनुव्रताः आसन् शूद्राः त्रीन्ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानुपचारिणः सेवका इत्यर्थः अत एव स्वधर्मनिरताः उपचारः सेवा ॥ १९ ॥

क्षत्रिय ब्राह्मणों की, वैश्य क्षत्रियों की आज्ञा पालने वाले थे, शूद्र अपने कर्म में लगे हुए तथा तीनों वर्णों की सेवा में लगे रहते थे ॥ १९ ॥

सा तेनेक्ष्वाकुनाथेन पुरी सुपरिरक्षिता ।
यथा पुरस्तान्मनुना मानवेन्द्रेण धीमता ॥ २० ॥

सेति । पुरस्तात्पूर्वं धीमता मेधाविना मानवेन्द्रेण मानवस्वामिना वैवस्वतेन यथा सा पुरी सुपरिरक्षिता तथा इक्ष्वाकुनाथेन तेन महाराजाधिराजदशरथेन सुपरिरक्षिता आसीदिति शेषः ॥ २० ॥

वह अयोध्यापुरी उन राजा दशरथ से उसी तरह भलीभाँति रक्षित थी जैसो कि पूर्व काल में मनुष्यों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् राजा मनु से रक्षित थी ॥ २० ॥

योधानामग्निकल्पानां पेशलानाममर्षिणाम् ।
संपूर्णा कृतविद्यानां गुहा केसरिणामिव ॥ २१ ॥

योधानामिति । अग्निकल्पानां तेजसाग्निसदृशानामत एव पेशलानां सुन्दराणाममर्षिणां परचिकीर्षितपराभवासहनशीलानां कृतविद्यानां शिक्षितशस्त्रास्त्रादिविद्यानां बोधानां सपूर्णा तैर्व्याप्ता आसीदिति शेषः तत्र दृष्टान्तः केसरिणां सिंहानां संपूर्णा गुहा कन्दरेव ॥ २१ ॥

वह पुरी अग्नि के समान तेजस्वी, बड़े, निपुण, अनादर न सहने वाले और सब विद्याओं में सफल वीरों से सिंहों से भरी हुई गुहा के समान भरी हुई थी ॥ २१ ॥

काम्बोजविषये जातैर्बाह्लीकैश्च हयोत्तमैः ।
वनायुजैर्नदीजैश्च पूर्णा हरिहयोत्तमैः ॥ २२ ॥

काम्बोजेति । काम्बोजविषये काम्बोजनामकदेशे जातैः वाह्लीकैः वाह्लीकदेशोद्भवैश्च वनायुजैः वनायुनामकदेशे जातैश्च नदीजैः सिन्धुनदीसमीपदेशोद्भवैश्च हरिहयोत्तमैः हरिरिन्द्रस्तस्य हय उच्चैःश्रवास्तद्वदुत्तमैः हयोत्तमैः हयश्रेष्ठैः पूर्णा आसीदिति शेषः आवृत्त्या च सर्वत्रान्वेति

रूपवान्नीलरूपवानितिवत् हरिहयोत्तमैः हयोत्तमैरिति प्रयोगः वाह्लीजैरिति क्वचित्पाठ इति भट्टः ॥ २२ ॥

कम्बोज, वाह्लीक, वनायु और सिन्धु देशों में उत्पन्न हुए इन्द्र के उत्तम अश्व (उच्चैःश्रवा) के तुल्य अश्वों से पूर्ण थी ॥ २२ ॥

विन्ध्यपर्वतजैर्मत्तैः पूर्णा हैमवतैरपि ।
मदान्वितैरतिबलैर्मातङ्गैः पर्वतोपमैः ॥ २३ ॥

विन्ध्येति । पर्वतोपमैः पर्वताकारैः मदान्वितैः मदविशिष्टैः अत एव मत्तैः उन्मादविशिष्टैः अत एवातिबलैः महाबलवद्भिः विन्ध्यपर्वतजैः विन्ध्यपर्वतजातैः हैमवतैः हिमवत्पर्वतोद्भवैश्च मातङ्गैः गजैः पूर्णा व्याप्ता आसीदिति शेषः ॥ २३ ॥

विन्ध्याचल और हिमाचलों में उत्पन्न, पर्वत के समान ऊँचे, मतवाले, मद से भरे, अत्यन्त बलशाली हाथियों से पूर्ण थी ॥ २३ ॥

ऐरावतकुलीनैश्च महापद्मकुलैस्तथा ।
अञ्जनादपि निष्क्रान्तैर्वामनादपि च द्विपैः ॥ २४ ॥

ऐरावतेति । ऐरावतकुलीनैः ऐरावतनामकेन्द्रदिग्गजकुलोद्भवैः महापद्मकुलैः महापद्मः पुण्डरीकापरनामकोऽग्निदिग्गजः स एव कुलं येषां तैश्च महापद्मोद्भवैरित्यर्थः वामनात् तदुपलक्षितयमनैर्ऋत्यदिग्गजादपि निष्पन्नैश्च अञ्जनात् तदुपलक्षितवरुणवायुदिग्गजादपि निष्पन्नैश्च अपिना कुबेरेशानदिग्गजान्निष्पन्नैश्च द्विपैः गजैः पूर्णेति पूर्वेणान्वयः तथाशब्दश्चार्थे तथा चामरसिंहः 'ऐरावतः पुण्डरीको वामनः कुमुदोऽञ्जनः । पुष्पदन्तः सार्वभौमः सुप्रतीकश्च दिग्गजाः' ॥ २४ ॥

ऐरावत, महापद्म, अञ्जन और वामन नाम के हाथियों के उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हाथियों से भी वह नगरी भरी हुई थी ॥ २४ ॥

भद्रैर्मन्द्रैर्मृगैश्चैव भद्रमन्द्रमृगैस्तथा ।
भद्रमन्द्रैर्भद्रमृगैर्मृगमन्द्रैश्च सा पुरी ॥ २५ ॥

भद्रैरिति । अचलसन्निभैः पर्वतसदृशैः भद्रैः हिमवत्पर्वतोद्भवजातिविशेषैः मन्द्रैः विन्ध्यपर्वतोद्भवजातिविशेषैश्च मृगैः सह्यपर्वतोद्भवजातिविशेषैश्च भद्रमन्द्रमृगैः परस्परत्रित्वसाङ्कर्यविशिष्टैश्च भद्रमन्द्रैः भद्रमन्द्रनिरूपितद्वित्वसाङ्कर्यविशिष्टैः भद्रमृगैः भद्रमृगनिरूपितद्वित्वसाङ्कर्य-

विशिष्टैश्च मृगमन्द्रैः मृगमन्द्रनिरूपितद्वित्वसाङ्कर्यविशिष्टैश्च नित्यमत्तैः नागैः हस्तिभिः सा पुरी अयोध्या सदा पूर्णा आसीदिति शेषः सार्द्धश्लोक एकान्वयी आवृत्त्या चशब्दः स्वहीनेष्वप्यन्वेति तल्लक्षणमुक्तं वैजयन्त्याम् अङ्गप्रत्यङ्गभद्रत्वसंक्षिप्तं भद्रलक्षणम् पृथुत्वश्लथता स्थौल्यं सङ्क्षिप्त मन्द्रलक्षणम् ।। तनुप्रत्यङ्गदीर्घोच्च प्रायो मृगगुणो मतः । भद्रमन्द्रो भद्रमृगो भद्रमन्द्रमृगोऽपि च ।। मन्द्रभद्रादयोप्येवमिति सङ्करजातयः' इति ।।२५।।

पर्वत के समान ऊँचे तथा नित्य मतवाले हिमालय से उत्पन्न भद्र जाति के, विन्ध्य से उत्पन्न भद्र जाति के, सह्यादि से उत्पन्न मृग जाति के और भद्र मन्द्रमृग, भद्रमन्द्र, भद्रमृग तथा मृगमन्द्र सङ्कर जाति के हाथियों से भी वह अयोध्या सदा व्याप्त थी ।। २५ ।।

नित्यमत्तैः सदा पूर्णा नागैरचलसंनिभैः ।
सा योजने द्वे च भूयः सत्यनामा प्रकाशते ।
[यस्यां दशरथो राजावसञ्जगदपालयत् ।] ।। २६ ।।

सेति । सत्यनामा सत्यं न कैश्चिद्योधितुं शक्या किञ्च अयोभिः विष्णुब्रह्मशिवैः ध्यायते नित्यं स्मर्यते या सेत्यादि तात्त्विकार्थविशिष्टं नाम यस्याः सा अन्वर्थं नामेति यावत् अयोध्या पुरी द्वे योजने गुप्तहरेरारभ्यबिल्वहरिपर्यन्त भूमयः नगरवर्तिदेशान्तरापेक्षया अत्यन्तं नित्यं प्रकाशते यस्यां योजनद्वयपरिच्छिन्नायां राजा महाराजाधिराजो दशरथः आवसन् स्वशिबिरतया नित्यं तिष्ठन्सन् जगदपालयत् । चशब्दान्नित्यलाभः किञ्च सत्य सत्यपदघटितम् अयोध्यापरपर्यायभूतसत्येति नाम यस्याः सेत्यर्थः उक्तं च कौषीतकीब्राह्मणादौ 'अयोध्या सत्यानामत्वेन' 'अकारो वासुदेवः स्याद्यकारस्तु प्रजापतिः उकारो रुद्ररूपस्तु तां ध्यायन्ति मुनीश्वराः' इति पद्मपुराणम्।। २६ ।।

वह अयोध्या नगरी नगर के बाहर भी दो योजन तक 'योद्धुमशक्या अयोध्या' नाम को सार्थक करती हुई प्रकाशमान थी । जिसमें निवास करते हुए राजा दशरथ ने जगत् का पालन किया ।। २६ ।।

तां पुरीं स महातेजा राजा दशरथो महान् ।
शशास शमितामित्रो नक्षत्राणीव चन्द्रमाः ।। २७ ।।

पालनमेव भङ्ग्यन्तरेणाह—तामिति। महान् सर्वोत्कृष्टः अत एव शमितामित्रः दमितशत्रुकः महातेजाः परमवर्चस्को राजा महाराजाधिराजो दशरथः नक्षत्राणि चन्द्रमा इव तां सत्यनामां पुरीं शशास ॥२७॥

अत्यन्त तेजस्वी राजा महान् दशरथ ने सब शत्रुओं को नक्षत्रों को चन्द्रमा के समान शान्त करके उस पुरी का शासन किया ॥ २७ ॥

तां सत्यनामां दृढतोरणार्गलां गृहैर्विचित्रैरुपशोभितां शिवाम्।
पुरीमयोध्यां नृसहस्रसंकुलां शशास वै शक्रसमो महीपतिः ॥२८॥

पुनरपि भङ्ग्यन्तरेणाह—तामिति। दृढतोरणार्गलां दृढस्तोरणार्गलो बहिर्द्वारवर्तिकपाटनिश्चलतासम्पादकतिर्यक्निबद्धकाविशेषो यस्याम् विचित्रैर्गृहैरुपशोभिताम् शिवां परमकल्याणप्रदाम् नृपसिंहसंकुलां नृपसिंहैः खण्डमण्डलेश्वरश्रेष्ठैः सङ्कुलां व्याप्ताम् सत्यनामां तां पुरीमयोध्यामेव शक्रसमः महीपतिः महाराजाधिराजः नित्यं शशास पुरीं नित्यं शशासेत्यनेन देशस्य निःशेषोपद्रवराहित्यं सूचितम्। वैशब्दो नित्यार्थे सत्यनामामित्यत्र 'डाबुभाभ्या०' इति डाप् ॥ २ ॥

इन्द्र के तुल्य राजा दशरथ ने अन्वर्थ नामवाली, दृढ़ तोरण और अर्गला वाली अनेक प्रकार के विचित्र गृहों से शोभित; मङ्गलमयी, सहस्रों मनुष्यों से भरी हुई अयोध्यापुरी का शासन किया ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः

तस्यामात्या गुणैरासन्निक्ष्वाकोः सुमहात्मनः ।
मन्त्रज्ञाश्चेङ्गितज्ञाश्च नित्यं प्रियहिते रताः ॥ १ ॥

मन्त्रिसम्पत्तिमाह—तस्येत्यादिभिः । महात्मनः सर्वपूज्यस्वरूपकस्य गुणैः इक्ष्वाकोस्तु इक्ष्वाकुसदृशस्य तस्य महाराजाधिराजदशरथस्य अमात्याः मन्त्रज्ञाः मन्त्रः कार्याकार्यविचारः तं जानन्तीति इङ्गितज्ञाः पराभिप्रायवेदितारश्च प्रियस्य स्वामिनो हिते नित्यं रताश्चासन् तुशब्द इवार्थे । किंच इक्ष्वाकोरेवामात्यास्तस्य दशरथस्यामात्या आसन्नित्यन्वयः अत्रार्थे तुरेवार्थे अत इव तस्यास्तां तस्य पौर्वका इत्येतद्घटकतच्छब्दाभ्यां दशरथग्रहणं न विरूपम् ॥ १ ॥

बड़े बुद्धिमान् और इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न राजा दशरथ के मन्त्री विचार में निपुण, चेष्टा से दूसरे के अभिप्राय को जानने वाले, गुणों से युक्त और सदा अपने प्रिय राजा के हित में तत्पर थे ॥ १ ॥

अष्टौ बभूबुर्वीरस्य तस्यामात्या यशस्विनः ।
शुचयश्चानुरक्ताश्च राजकृत्येषु नित्यशः ॥ २ ॥

धर्मशास्त्रोक्तसङ्ख्याका मन्त्रिणः सन्तीति बोधयन्नाह—अष्टाविति । शुचयः स्वामिकार्ये कापटयसंसर्गरहिता अत एव राजकृत्येषु एव नित्यशोऽनुरक्ताः अत एव यशस्विनः कीर्तिमन्तः वीरस्य तस्य महाराजाधिराजस्यामात्याः अष्टौ एव बभूवुः 'मन्त्रिणः सप्त वाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्' इति मनुः । च शब्दौ एवार्थौ ॥ २ ॥

बड़े यशस्वी और वीर राजा दशरथ के शुद्धचित्त और राजकार्य में नित्य अनुराग रखने वाले आठ मन्त्री थे ॥ २ ॥

धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः ।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित् ॥ ३ ॥

तत्तन्नामान्याह—धृष्टिरिति । धृष्टिः प्रथमः जयन्तश्च द्वितीयः विजयश्च सिद्धार्थश्च चतुर्थः अर्थसाधकश्च पञ्चमः अशोकश्च षष्ठः मन्त्रपालश्च

सप्तमः सुमन्त्रश्च अष्टमोऽभवत् हिश्चार्थः सचान्यत्राप्यन्वेति। सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः 'अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्' इति भट्टटीकाङ्कितपुस्तकेषु पाठः तत्र तेषां नामान्तराणि बोध्यानि ॥ ३ ॥

जैसे (१) धृष्टि (२) जयन्त (३) विजय (४) सुराष्ट्र (५) राष्ट्रवर्धन (६) अकोप (७) धर्मपाल और (८) अर्थशास्त्र के वेत्ता सुमन्त्र ॥३॥[1]

ऋत्विजौ द्वावभिमतौ तस्यास्तामृषिसत्तमौ।
वसिष्ठो वामदेवश्च मन्त्रिणश्च तथापरे ॥ ४ ॥

ऋत्विजो गणयन्नाह—ऋत्विजावित्यादि। श्लोकद्वयेन। तस्य महाराजाधिराजदशरथस्य अभिमतौ सकलज्ञानविशिष्टौ अत एव ऋषिसत्तमौ सर्वऋषिश्रेष्ठौ वसिष्ठो वामदेवश्चेत्येतौ द्वौ अथ मङ्गलप्रदौ ऋत्विजौ नित्यमास्तामभवताम् तथाशब्दो नित्यार्थकः ॥ ४ ॥

उसके ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ और वामदेव दो प्रधान ऋत्विज थे और अन्य ऋषि मन्त्री थे ॥ ४ ॥

सुयज्ञोऽप्यथ जाबालिः काश्यपोऽप्यथ गौतमः।
मार्कण्डेयस्तु दीर्घायुस्तथा कात्यायनो द्विजः ॥ ५ ॥

अथापरे ताभ्यां भिन्नाः मन्त्रिणः वेदमन्त्रद्रष्टारः सुयज्ञः जाबालिश्च काश्यपश्च गौतमश्च दीर्घायुर्मार्कण्डेयश्च द्विजः अनेकद्विजविशिष्टः कात्यायनश्च ऋत्विजोऽभवन्निति शेष द्विजशब्दस्यावृत्त्या प्रत्येकमन्वये तु नाशं आद्यजन्तत्वकल्पना अपिद्वयं तथातुशब्दौ चार्थौ अथशब्दो मङ्गलार्थकः श्लोकद्वयमेकान्वयि ॥ ५ ॥

सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु मार्कण्डेय और द्विज कात्यायन ॥५॥

एतैर्ब्रह्मर्षिभिर्नित्यमृत्विजस्तस्य पौर्वकाः।
विद्याविनीता ह्रीमन्तः कुशला नियतेन्द्रियाः ॥ ६ ॥

एतैरिति। तस्य महाराजाधिराजदशरथस्य पौर्वकाः पित्रादयः एतैः प्रसिद्धैः ब्रह्मर्षिभिः वसिष्ठादिभिर्नित्यं ऋत्विजः यागकर्तारः आसन् पौर्व-

१ दशरथ के आठ मन्त्रियों के नाम संभवतः पद के नाम से हों, जिनमें १-३ युद्ध के प्रबन्धक, ४–५ अर्थमन्त्री, ६ स्वास्थ्यमंत्री, ७ धर्ममंत्री और ८ मन्त्रणा के प्रधान थे।

कगुणान्वर्णयन्नाह—विद्येत्यादिभिः विद्याविनीता प्राप्तसकलविद्यया विनीताः सरलाः किञ्च विद्यासु विनीताः शिक्षिताः अत एव ह्रीमन्तः जनापवाद-विषयीभूतकर्मवैगुण्याल्लज्जावन्तः अत एव कुशला सर्वसत्कर्मनिपुणाः अत एव नियतेन्द्रियाः नियमितान्तर्बहिरुभयकरणाः ॥ ६ ॥

ये ब्रह्मर्षि उसके परम्परागत नित्य के लिए ऋत्विज थे । जो विद्या में विनीत, लज्जावाले, बड़े चतुर और जितेन्द्रिय थे ॥ ६ ॥

श्रीमन्तश्च महात्मानः शस्त्रज्ञा दृढविक्रमाः ।
कीर्तिमन्तः प्रणिहिता यथावचनकारिणः ॥ ७ ॥

श्रीमन्त इति । श्रीमन्तः लक्ष्मीविशिष्टाः महात्मानः पूज्यस्वरूपाः शस्त्रज्ञाः धनुर्वेदप्रतिपादितशस्त्रविषयकज्ञानवन्तः दृढविक्रमाः अचलपरा-क्रमविशिष्टाः शास्त्रज्ञा इति पाठे शस्त्रप्रतिपादकशास्त्रनिपुणा इत्यर्थः कीर्तिमन्तः प्रशस्तयशोयुक्ताः प्रणिहिताः निखिलकर्मस्वनवधानता-रहिताः किञ्च प्रणः सद्धर्मप्रतिज्ञा अस्ति येषां ते प्रणिनः तेषां हितास्तद्धर्म-साधका इत्यर्थः प्राणशब्दस्य प्रतिज्ञावाचकत्व कोशे प्रसिद्धम् यथावचन-कारिणः यथावचनं वचनमनतिक्रम्य कुर्वन्ति तच्छीलाः सत्यप्रतिज्ञा इत्यर्थः ॥ ७ ॥

लक्ष्मीयुक्त, महात्मा, शास्त्रज्ञ, बड़े शूर, कीर्तिवाले, राजकार्य में सावधान, आज्ञापालक ॥ ७ ॥

तेजःक्षमायशःप्राप्ताः स्मितपूर्वाभिभाषिणः ।
क्रोधात्कामार्थहेतोर्वा न ब्रूयुरनृतं वचः ॥ ८ ॥

तेज इति । तेजःक्षमायशःप्राप्ताः तेजश्च क्षमा च यशश्च तानि प्राप्ताः 'द्वितीयाश्रिता०' इत्यादिना समासः । अत्रत्ययशःशब्दः नित्यप्रवृद्धयशःपरः पूर्वत्र कीर्तिशब्दः प्रतापपरो वा अतो न पौनरुक्त्यम् । स्मितपूर्वाभि-भाषिणः स्मितं पूर्वं यस्मिंस्तदभिभाषन्ते तच्छीलाः क्रोधात् क्रोधहेतोः कामार्थहेतोः कामरूपार्थरूपहेतोर्वाऽनृतं सत्यभिन्नं वचो न ब्रूयुः ॥ ८ ॥

बड़े तेजस्वी, क्षमायुक्त, यशस्वी, मुस्कान के साथ बोलनेवाले, क्रोध, काम तथा अर्थ के कारण असत्य नहीं बोलने वाले थे ॥ ८ ॥

तेषामविदितं किंचित्स्वेषु नास्ति परेषु वा ।
क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम् ॥ ९ ॥

तेषामिति । तेषां पौर्वकानां स्वेषु आत्मोयेषु परेषु ततो भिन्नेषु च क्रियमाणं वर्तमानकालिकवृत्तं कृतं भूतकालिकवृत्तं च यच्चिकीर्षितं भविष्यत्कालिकवृत्तं तच्च चारेण करणभूतेन अविदितं विदितभिन्नं नास्ति शरैः शातितपत्र इतिवदेकदेशान्वयः वाप्यथाः चार्थं ।। ९ ।।

उनको अपने और दूसरों के राज्य में कोई भी किया जाता हुआ, किया गया, अथवा किया जाने वाला कार्य दूतों के द्वारा अविदित नहीं था ।। ९ ।।

कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः ।
प्राप्तकालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि ।। १० ।।

कुशला इति । व्यवहारेषु कुशलाः निपुणा सौहृदेषु परीक्षिताः मित्रवर्गैरिति शेषः पौर्वकाः प्राप्तकालं प्राप्तः कालो यस्य तं दण्डं सुतेषु अपि यथावत् धारयेयुः ।। १० ।।

व्यवहार में निपुण, हृदय की पवित्रता में परीक्षित, अवसर पर अपने अपराधी पुत्रों को भी योग्य दण्ड देने वाले थे ।। १० ।।

कोशसंग्रहणे युक्ता बलस्य च परिग्रहे ।
अहितं चापि पुरुष न हिंस्युरविदूषकम् ।। ११ ।।

कोशेति । कोशसंग्रहणे कोशस्य अर्थसमूहस्य संग्रहणे अर्जने युक्ता बलस्य चतुरङ्गसैन्यस्य परिग्रहे परिज्ञाने तत्तद्गुणपरीक्षणे चेत्यर्थः युक्ता उद्युक्ताः पौर्वकाः अदूषकं दोषरहितमहितमपि पुरुषं न विहिंस्युः पीडयेयुः।

कोष के संग्रह और सेना के संरक्षण में सावधान, निरपराध शत्रु को भी पीड़ा न पहुँचाने वाले थे ।। ११ ।।

वीराश्च नियतोत्साहा राजशास्त्रमनुष्ठिताः ।
शुचिनां रक्षितारश्च नित्यं विषयवासिनाम् ।। १२ ।।

वीरा इति । वीराः शूरतावन्तः अत एव नियतोत्साहाः तात्त्विक युद्धोत्साहविशिष्टा राजशास्त्रं राजनीतिमनुष्ठिताः तदनुष्ठानवन्तः शुचीनां शुद्धान्तःकरणानां विषयवासिनां देशवासिनां चकारेण पुरवासिनां नित्यं रक्षितारश्चासन्निति शेषः ।। १२ ।।

वीर, शत्रु के जीतने में उत्साह वाले, नीतिशास्त्र का अनुसरण करने वाले और अपने देश और पुर में रहने वालों की नित्य रक्षा करते थे ।। १२ ।।

ब्रह्मक्षत्रमहिंसन्तस्ते कोशं समपूरयन् ।
सुतीक्ष्णदण्डाः संप्रेक्ष्य पुरुषस्य बलाबलम् ॥ १३ ॥

ब्रह्मेति । पुरुषस्यापराधिजनस्य बलाबलमपराधतारतम्यं संप्रेक्ष्य सविचार्य ब्रह्म क्षत्र ब्रह्मणो वेदस्य क्षत् अप्रामाण्यप्रतिपादकत्वेन हिंसनं येषां ते नास्तिकास्तेभ्यस्त्रायन्ते वेदाप्रामाण्यवादनिवर्तनपूर्वकवेदप्रामाण्य-व्यवस्थापकत्वेन जनान् रक्षतीति ब्रह्मक्षत्रं ब्राह्मणकुलमित्यर्थः तत् अहिंसन्तः अपीडयन्तस्सुतीक्ष्णदण्डाः सन्तस्ते तत्पौर्वकाः कोशं समपूरयन् दानाधिक्यादिना कोशव्ययेऽपि पुनः पुनरपूरयन्नित्यर्थः। अभिपूरयन्निति पाठे अडभाव आर्ष इति भट्टः ॥ १३ ॥

वेद के रक्षक ब्राह्मणों की हिंसा न करने वाले, पुरुष के अपराध का बलाबल विचार कर तीक्ष्ण दण्ड देने वाले, मन्त्रियों ने कोश को पूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥

शुचीनामेकबुद्धीनां सर्वेषां संप्रजानताम् ।
नासीत्पुरे वा राष्ट्रे वा मृषावादी नरः क्वचित् ॥ १४ ॥

शुचीनामिति । शुचीनां शुद्धानामेकबुद्धीनां मन्त्रिसमानबुद्धीनां संप्रजा-नतां प्रजापालनविषयकसम्यग्विचारवतां सर्वेषां तत्पौर्वकाणां पुरे राष्ट्रे च क्वचित्कदाचिदपि मृषावादी नरो जनः नासीत् एको वाशब्दोऽप्यर्थे अपरश्चार्थे ॥ १४ ॥

शुद्ध, एकमत और समस्त प्रजा का वृत्तान्त जानने वाले उन मंत्रियों के राज्य में कहीं कोई भी व्यक्ति असत्यवादी नहीं था ॥ १४ ॥

क्वचिन्न दुष्टस्तत्रासीत्परदाररतिर्नरः ।
प्रशान्तं सर्वमेवासीद्राष्ट्रं पुरवरं च तत् ॥ १५ ॥

कश्चिदिति । तत्र पौर्वकराज्ये दुष्टो धर्मदूषकः अत एव परदाररतिः कश्चित् नरो नासीत् अत एव राष्ट्रं पुरवरं च यत् यत्सर्वं प्रशान्तं समूल-सर्वोपद्रवरहितमेवासीत् ॥ १५ ॥

उनके राज्य में कहीं भी कोई दुष्ट और परस्त्रीगामी पुरुष नहीं था । किन्तु उनका राज्य और पुर सब उपद्रव रहित प्रशान्त था ॥ १५ ॥

सुवाससः सुवेषाश्च ते च सर्वे शुचिव्रताः ।
हितार्थाश्च नरेन्द्रस्य जाग्रतो नयचक्षुषा ॥ १६ ॥

सुवासस इति । नरेन्द्रस्य पूर्वप्रवृत्तराज्यस्य हितार्थाः हितप्रयोजनाः सुवाससः शोभनवस्त्राः सुवेषा समीचीनालङ्कारकाश्च सुशीलिनः समीचीनस्वभावास्ते प्रसिद्धाः सर्वे मन्त्रिणश्च नयचक्षुषा नीतिनेत्रेण जाग्र आसन् इति शेषः । नरेन्द्रस्येत्यत्रैकत्वं जात्यभिप्रायेण ॥ १६ ॥

वे सब मन्त्री सुन्दर वस्त्र, वेश और पवित्र आचरण वाले, राजा के हित द्रष्टा, नीति के नेत्र से सदा सावधान थे ॥ १६ ॥

गुरोर्गुणगृहीताश्च प्रख्याताश्च पराक्रमैः ।
विदेशेष्वपि विज्ञाताः सर्वतो बुद्धिनिश्चयाः ॥ १७ ॥

गुराविति । गुरौ महात्मनि गुणगृहीताः गुणमात्रदर्शिनः गुरुदोष दर्शका इत्यर्थः । पराक्रमे विषये विदेशेष्वपि प्रख्याताः सर्वतो विज्ञात सर्वविषयकज्ञानवन्तः तत्र हेतुः बुद्धिनिश्चयाः बुद्ध्या बुद्धिपूर्वकविचारे निश्चयः गुरुशास्त्रवाक्यादौ विश्वासो येषां ते मन्त्रिण आसन्निति शेषः गुरोर्गुणगृहीताश्चेति भट्टसंमतः पाठः तत्र गुरुणा गुणवत्तया गृहीत इत्यर्थः गुरोरिति संबन्धसामान्ये षष्ठो गुण इति अर्शआद्यजन्तः गुणागुण गृहीता इति पाठे गुणदोषग्रहीतार इत्यर्थ इति तैर्व्याख्यातम् ॥ १७ ॥

जो गुरु अथवा राजा मे गुणों के कारण अपनाये गये थे, पराक्रम के विष में विदेशों में भी विख्यात, लोक में प्रसिद्ध, निश्चयात्मक बुद्धि वाले थे ॥ १७ ॥

अभितो गुणवन्तश्च न चासन्गुणवर्जिताः ।
संधिविग्रहतत्त्वज्ञाः प्रकृत्या संपदान्विताः ॥ १८ ॥

अभित इति । अभितः सर्वकालं गुणवन्तः । किञ्च अभितश्चतुर्दिक्षु गुणास्तद्वन्तः आसन् अत एव गुणवर्जिताः न अत एव सन्धिविग्रहतत्त्वज्ञा सन्धिर्मेलनं विग्रहः कलहः तयोस्तत्त्वं जानन्तीति प्रकृत्या च स्वभावेनै दुस्त्यजया सम्पदा सम्पत्त्या अन्विता युक्ताः चशब्द इवार्थे ॥ १८ ॥

सब देश और सब काल में गुणों से पूर्ण थे, गुण हीन नहीं थे । सन्धि विग्रह के तत्त्व को जानने वाले थे, सत्त्व, रज तथा तमोगुण वाली त्रिगुणात्मि प्रकृति की सम्पत्ति से युक्त थे[1] ॥ १८ ॥

१. सात्त्विक प्रकृति से शिष्ट पालन में, राजस सम्पत्ति धन-धान्य, दासी-दा अश्व, गज आदि से भोग में और तामस सम्पत्ति से दुष्टनिग्रह में युक्त थे ।

मन्त्रसंवरणे शक्ताः शक्ताः सूक्ष्मासु बुद्धिषु ।
नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः ॥ १९ ॥

मन्त्रेति । मन्त्रसंग्रहणे मन्त्रस्य देशस्वास्थ्यसम्पादकविचारस्य यत्संग्रहणं मन्त्र्यतिरिक्तैर्वानुद्घाटनं तत्र शक्ताः संवरणे इति पाठेऽपि स एवार्थः सूक्ष्मासु दुर्लक्ष्यासु अपि बुद्धिषु विचारेषु श्लक्ष्णाः पारुष्यस्वभावरहिताः नीतिशास्त्रविशेषज्ञाः सततं प्रियवादिनः ते आसन्निति शेषः । शक्ताः सूक्ष्मासु इति पाठकपाठः ॥ १९ ॥

मन्त्र गुप्त रखने में समर्थ, सूक्ष्म विचारशाली बुद्धि वाले, नीतिशास्त्र के विशेष ज्ञाता और सदा प्रिय बोलने वाले थे ॥ १९ ॥

ईदृशैस्तैरमात्यैश्च राजा दशरथोऽनघ ।
उपपन्नो गुणोपेतैरन्वशासद्वसुंधराम् ॥ २० ॥

ईदृशैरिति । ईदृशः विद्याविनीतत्वादिना वर्णितपौर्वकसदृशैः गुणोपेतैः निखिलमन्त्रिगुणयुक्तैः तैः पूर्ववर्णिताष्टभिः अमात्यैः उपपन्नः युक्तः चकारेण ऋत्विग्भिरुपपन्नः अनघः स्वाश्रिताघनिवर्तकः राजा महाराजाधिराजो दशरथः वसुन्धरामन्वशासत् ॥ २० ॥

ऐसे गुणवान् मन्त्रियों से युक्त, सब व्यसनों से रहित और निष्पाप राजा दशरथ ने पृथ्वी का पालन किया ॥ २० ॥

अवेक्षमाणश्चारेण प्रजा धर्मेण रक्षयन् ।
प्रजानां पालनं कुर्वन्नधर्मं परिवर्जयन् ॥ २१ ॥

अवेक्षमाण इति । चारेण चारचक्षुषा अवेक्षमाणः निखिललोकवृत्तान्तं विजानन् धर्मेण धर्माचरणेन प्रजा रञ्जयन् प्रजानुरागनुत्पादयन् प्रजानां पालनं कुर्वन् अधर्मं परिवर्जयन्धर्मविरुद्धप्रवृत्ति निवारयन् ॥ २१ ॥

गुप्तचरों द्वारा देखते, धर्म से प्रजा की रक्षा करते, अधर्म से बचाते हुए प्रजा को पालते ॥ २१ ॥

विश्रुतस्त्रिषु लोकेषु वदान्यः सत्यसङ्गरः ।
स तत्र पुरुषव्याघ्रः शशास पृथिवीमिमाम् ॥ २२ ॥

अत एव त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ख्यातः वदान्यः सयुक्तिकवदनशीलः सत्यसङ्गरः कापट्यरहितसंग्रामकर्ता पुरुषव्याघ्रः पुरुषसिंह स प्रसिद्धो

महाराजाधिराजदशरथः तत्र तस्यामयोध्यायां वसन्निति शेषः इ
पृथिवीं शशास पालयामास द्वयोरेकत्रान्वयः ॥ २२ ॥

तीनों लोकों में विख्यात, दानी, सत्यप्रतिज्ञ, और पुरुषों में व्याघ्र के स
शूर राजा दशरथ ने इस पृथ्वी का शासन किया ॥ २२ ॥

नाध्यगच्छद्विशिष्टं वा तुल्यं वा शत्रुमात्मनः ।
मित्रवान्नतसामन्तः प्रतापहतकण्टकः ॥
स शशास जगद्राजा दिवि देवपतिर्यथा ॥ २३ ॥

नेति । विशिष्टं तुल्यं वा आत्मनः शत्रुं नाध्यगच्छन्मित्रवान्परस्प
कमत्यापन्नबहुमित्रविशिष्टः अत एव नतसामन्तः नताः सामन्ता राजा
यस्य अत एव प्रतापहतकण्टकः प्रतापेन हताः कण्टकाः कण्टकतुल्
शत्रवो यस्य स राजा जगच्छशास तत्र दृष्टान्तः देवपतिर्यथेति ॥ २३ ॥

मित्रों से युक्त, सामन्तों को वश में रखने वाले, प्रभाव से शत्रुओं को
करने वाले राजा दशरथ ने अपने से बड़ा अथवा समान अपना शत्रु नहीं प
और जैसे देवपति इन्द्र स्वर्ग में शासन करता है वैसे शासन किया ॥ २३ ॥

तैर्मन्त्रिभिर्मन्त्रहिते निविष्टैर्वृतोऽनुरक्तैः कुशलैः समर्थैः ।
स पार्थिवो दीप्तिमवाप युक्तस्तेजोमयैर्गोभिरिवोदितोऽर्कः ॥२४॥

उपसंहरन्नाह—तैरिति । मन्त्रहिते मन्त्रस्य कार्याकार्यविषयकविचा
जन्यनिश्चयस्य हिते प्राप्तये निविष्टैः स्थापितैः अनुरक्तैः राजविषयका
रागविशिष्टैः कुशलैः निपुणैः समर्थैः राजकार्यविषयकसामर्थ्यविशिष्टैः
पूर्वोक्तमन्त्रिभिर्वृतः सः प्रसिद्धः पार्थिवो महाराजाधिराजदशरथः ते
मयैर्गोभिः किरणैरुदितः अर्क इव दीप्तिमवाप ॥ २४ ॥

मन्त्र (विचार) और हित में लगे हुए प्रेमयुक्त निपुण और समर्थ
मन्त्रियों से युक्त राजा दशरथ तेजस्वी किरणों से उदय हुए सूर्य के समान कां
से चमक उठे ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः

तस्य चैवंप्रभावस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः ।
सुतार्थं तप्यमानस्य नासीद्वंशकरः सुतः ॥ १ ॥

महाराजाधिराजदशरथस्य नित्यैश्वर्यादिविशिष्टत्वमुक्त्वा रघुनाथप्रादुर्भावमुपक्रमते—तस्येत्यादिभिः । एवं वर्णितः प्रभावो यस्य धर्मज्ञस्य सकलधर्मवेदितुः महात्मनः सर्वपूज्यस्वरूपस्य सुतार्थं तप्यमानस्य विचारयतः किञ्च तपिनो विचारशीलस्य तुशब्द एवार्थे तस्य महाराजाधिराजदशरथस्य वंशकरः स्ववंशप्रवृत्तिहेतुः सुतः नासीत् वात्सल्यरसप्रभूतये षष्टिसहस्रवर्षपर्यन्तं न प्रादुर्बभूवेत्यर्थः ॥ १ ॥

ऐसे प्रभावशाली, धर्म के जानने वाले, महात्मा और पुत्र के लिए संतप्त होने वाले राजा दशरथ के वंश चलाने वाला सुत नहीं था ॥ १ ॥

चिन्तयानस्य तस्यैवं बुद्धिरासीन्महात्मनः ।
सुतार्थं वाजिमेधेन किमर्थं न यजाम्यहम् ॥ २ ॥

चिन्तयानस्येति । एवमुक्तविशेषणविशिष्टस्य महात्मनः सुतार्थं स्वपुत्रप्रकटनोद्योगं चिन्तयानस्य विचारयतः तस्य महाराजाधिराजदशरथस्य सुतार्थं वाजिमेधेन तन्नामकयागेन किमर्थमहं न यजामि इष्टदेवं पूजयामि इति बुद्धिरासीत् विनिगमनाविरहात्सुतार्थमित्युभयान्वयि आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान्मुगभावः 'वर्तमानसामीप्ये' इति भूते लट् ॥ २ ॥

पुत्र की उत्पत्ति के लिए उपाय सोचते हुए श्रेष्ठ राजा दशरथ की यह बुद्धि हुई कि सुत के लिए मैं अश्वमेध यज्ञ क्यों न करूँ ? ॥ २ ॥

स निश्चितां मतिं कृत्वा यष्टव्यमिति बुद्धिमान् ।
मन्त्रिभिः सह धर्मात्मा सर्वैरपि कृतात्मभिः ॥ ३ ॥
ततोऽब्रवीन्महातेजाः सुमन्त्रं मन्त्रिसत्तम ।
शीघ्रमानय मे सर्वान्गुरूंस्तान्सपुरोहितान् ॥ ४ ॥

स इति । ततो यागनिश्चयानन्तरं बुद्धिमान् परमबुद्धिविशिष्टः धर्मात्मा वेदोक्तकर्मप्रवृत्तिविषयकयत्नवान् महाराजाधिराजो दशरथः

कृतात्मभिः सकलकर्मफलीभूतबुद्धिभिः मन्त्रिभिः सर्वैः सहैव यष्टव्यमिति निश्चितां मतिं कृत्वा 'क्लीबे कृतं युगेऽपि स्यात्फलपर्याप्तयोरपि' इति भास्करः। तत इति। राजा महाराजाधिराजो दशरथः मन्त्रिसत्तमं मन्त्रिश्रेष्ठं सुमन्त्रं मे सपुरोहितान् मे पुरोहितवसिष्ठसहितान् प्रसिद्धान् सर्वान्गुरूनृषिश्रेष्ठाञ्छीघ्रमानय इदं वचनमब्रवीत् पुरोहितशब्दस्य वृत्तिघटकीभूतत्वेऽपि नित्यसापेक्षत्वात् तत्र मेशब्दान्वयः श्लोकद्वयमेकान्वयि ॥ ३–४ ॥

बुद्धिमान् और धर्मात्मा राजा दशरथ ने अपने सब कुशल मन्त्रियों के साथ विचार करके निश्चय किया कि अश्वमेध याग करना चाहिए ॥ ३ ॥

तदनन्तर महा तेजस्वी राजा दशरथ ने मन्त्रिश्रेष्ठ सुमन्त्र से कहा कि पुरोहित के सहित मेरे समस्त गुरुओं को शीघ्र लाइये ॥ ४ ॥

ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः।
समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ॥ ५ ॥

तत इति। ततः राजाज्ञापनानन्तरं त्वरितविक्रमः शीघ्रगमनशीलः सः मन्त्रिसत्तमः सुमन्त्रः वेदपारगान् कृतसमस्तवेदाध्ययनाध्यापनांस्तान् राजबोधितान्समस्तान्संमिलितान् त्वरितं गत्वा समानयत् सादरमानयनमकरोत् ॥ ५ ॥

तदनन्तर शीघ्रगामी सुमन्त्र शीघ्रता से जाकर उन समस्त वेद के उद्भट विद्वानों को ले आया ॥ ५ ॥

सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम्।
पुरोहितं वसिष्ठं च ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमाः ॥ ६ ॥

तानेवाह—सुयज्ञमिति। सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिं च काश्यपं च पुरोहितं वशिष्ठ च अन्ये ये द्विजसत्तमास्तांश्च समानयदित्यनुकृष्यते अथशब्दश्चार्थे एकत्र विनापि च समुच्चयः। ये चाप्यन्ये द्विजोत्तमा इति पाठे त्वपिरपि चार्थे ॥ ६ ॥

सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, पुरोहित वशिष्ठ और इनके अतिरिक्त अन्य श्रेष्ठ ब्राह्मणों को भी बुला लिया ॥ ६ ॥

तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा।
इदं धर्मार्थसहितं श्लक्ष्ण वचनमब्रवीत् ॥ ७ ॥

तानिति । धर्मात्मा धर्ममनस्कः राजा महाराजाधिराजो दशरथः तदा तस्मिन्काले तानागतानृषीन्पूजयित्वा धर्मार्थसहितम् अत एप श्लक्ष्णमिदं वक्ष्यमाणं वचनमब्रवीत् ।। ७ ।।

धर्मात्मा राजा दशरथ ने उन सबकी पूजा की और धर्म तथा अर्थ के सहित यह मधुर वाक्य बोले ।। ७ ।।

मम लालप्यमानस्य सुतार्थे नास्ति वै सुखम् ।
तदर्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ।। ८ ।।

ममेति । पुत्रार्थं पुत्रः मत्सुतः अर्थो यस्य तं रामशब्दं लालप्यमानस्य भृशमभिलपतोऽपि मम सुखं नास्ति तत्प्रकटप्राप्तिं विना सुखं न भवतीत्यर्थः तदर्थं स्वपुत्रप्राकट्यार्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मम मतिरजायतेति शेषः वैशब्दोऽप्यर्थे ।। ८ ।।

हे महर्षियों, पुत्र के लिए अत्यन्त विलाप करते हुए मुझको सुख नहीं है । अतः पुत्र के लिए मैं अश्वमेध करूँ यह मेरा विचार है ।। ८ ।।

तदहं यष्टुमिच्छामि शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ।
कथं प्राप्स्याम्यहं कामं बुद्धिरत्र विचिन्त्यताम् ।। ९ ।।

तदिति । तद्वाङ्मनसगोचरातीतं वस्तु यष्टुं प्रत्यक्षतः मेलितुमिच्छामि तच्छास्त्रदृष्टेन वेदबोधितेन कर्मणा अहं कथं किं प्राप्स्यामि वाङ्मनसगोचरातीतं वस्तुप्रत्यक्षतः किं लब्धास्मीत्यर्थः इति कामं नितरां विचार्यताम् ।। ९ ।।

अब तो मैं शास्त्र प्रतिपादित विधि से यज्ञ करना चाहता हूँ । मैं अपने अभिलषित की प्राप्ति कैसे करूँगा इस विषय में आप विचार करें ।। ९ ।।

ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन् ।
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखेरितम् ।। १० ।।

तत इति । ततः राजप्रश्नश्रवणानन्तरं वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ब्राह्मणाः पार्थिवस्य राज्ञः मुखाच्च्युतं प्रश्नवाक्यं साधु सयुक्तिकमुक्तमिति प्रत्यपूजयन् प्रशशंसुः पार्थिवस्य मुखेरितमिति भट्टसंमतः पाठः ।। १० ।।

तदनन्तर वशिष्ठ प्रमुख ब्राह्मणों ने राजा के मुख से निकले हुए उसके वाक्य को 'साधु' कहकर सत्कृत किया ।। १० ।।

ऊचुश्च परमप्रीताः सर्वं दशरथं वचः ।
संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥ ११ ॥

ऊचुरिति । परमप्रीताः राजकृतप्रश्नस्य सूत्तरप्रस्फूर्त्या परमहर्षं प्राप्ता एव सर्वे वसिष्ठप्रमुखाः दशरथं वचः सूत्तरवचनमूचुः । अतः संभाराः अश्वमेधयागसामग्र्यः ते प्रसिद्धाः संभ्रियन्तां संपाद्यन्ताम् तुरगः तदु पयोग्यश्च विमुच्यतां पूर्वश्चशब्द एवार्थे ॥ ११ ॥

और सबने परम प्रसन्न होकर दशरथ से कहा कि आप अश्वमेध यज्ञ की सामग्री जुटाकर तैयारी कीजिए और यज्ञ के उपयुक्त घोड़ा छोड़िए ॥ ११ ॥

सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ।
सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रानभिप्रेतांश्च पार्थिव ॥ १२ ॥
यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता ।

सरय्वा इति । सरय्वा उत्तरे तीरे यज्ञभूमिः यागयोग्यस्थलं विधीयतां यतः हे पार्थिव यस्य ते तव पुत्रार्थमियं धार्मिकी बुद्धिः आगता प्राप्या स त्वमभिप्रेतान्परमप्रीतिविषयीभूतान्पुत्रान् स्वसुतान् सर्वथा प्रकटतोऽपि प्राप्स्यसे एव च शब्द एवार्थे अपरः हेत्वर्थे सार्द्धश्लोक एकान्वयी ॥ १२॥

सरयू के तट पर यज्ञ-भूमि की रचना कीजिए । हे राजन्, अब अभिप्रेत पुत्रों को अवश्य प्राप्त करेंगे क्योंकि तुम्हें पुत्र के लिए इस प्रकार धार्मिक बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १२ ॥

ततस्तुष्टोऽभवद्राजा श्रुत्वैतद् द्विजभाषितम् ॥ १३ ॥

तत इति । राजा एतद्द्विजभाषित श्रुत्वा तुष्टः अभवत् ॥ १३ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणों के वचनों को सुनकर राजा सन्तुष्ट हुआ ॥ १३ ॥

अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षव्याकुललोचनः ।
संभाराः संभ्रियन्तां मे गुरूणां वचनादिह ॥ १४ ॥

ततोऽनन्तरं हर्षपर्याकुलेक्षणः आनन्दाश्रुपूरितनेत्रः राजा मे गुरूणां वचनादिह अस्मिन्काले संभारा यागसामग्र्यः संभ्रियन्तामिति अमात्यानब्रवीत् । सार्द्धः श्लोक एकान्वयी । हर्षव्याकुललोचन इति भट्टसंमतः पाठः ॥ १४॥

हर्ष से व्याकुल दृष्टि हो राजा अपने मन्त्रियों से बोला कि मेरे गुरुओं की आज्ञा के अनुसार यज्ञ सामग्री इकट्ठी की जाय ॥ १४ ॥

समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् ।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ १५ ॥

समर्थेति। समर्थैः अश्वनिग्रहणादिविषयकसामर्थ्यविशिष्टजनैः अधिष्ठितः सहितः सोपाध्यायः मुख्यऋत्विक्सहितश्चाश्वः विमुच्यताम् अश्वरक्षणपुरुषनियोगे श्रुतिः 'चतुः शताः रक्षन्ति इति'। उपाध्यायप्रयोजनं 'अश्वस्य मेध्यस्य पदे पदे जुहोति' इति श्रुतिबोधितकर्मनिर्बहणम् यज्ञभूमिः यागशाला सरय्वा उत्तर तीर एव विधीयताम् च शब्द एवार्थे ॥ १५ ॥

समर्थ (वीर) पुरुषों की सुरक्षा में उपाध्याय के साथ अश्वमेधीय अश्व छोड़ा जाय और सरयू नदी के उत्तरी तट पर यज्ञ भूमि का निर्माण किया जाय॥१५॥

शान्तयश्चापि वर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि ।
शक्यः प्राप्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता ॥ १६ ॥
नापराधो भवेत्कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे ।

शान्तय इति। शान्तयः अश्वमेधोचितविघ्ननिवारककर्माणि यथाकल्पं क्रममनतिक्रम्य यथाविधि शास्त्रोक्तमनतिक्रम्य अवश्यमभिवर्द्धन्तामभिवर्द्धयन्ताम् अन्तर्भावितण्यर्थः। 'क्रमस्तु कथ्यते कल्पः' इति भागुरिः। विघ्नस्यावश्यं भावित्वेन शान्तिरवश्यं कार्येति बोधयन्नाह—शक्य इति। यदि क्रतुसत्तमे क्रतुश्रेष्ठे अस्मिन्नश्वमेधकष्टः परमकष्टसंपादकः अपराधो विधिहीनत्वं न भवेत्तर्हि सर्वेणापि महीक्षिता राज्ञा अयं यज्ञः कर्तुं शक्यः। एतेन दुर्निवारापराधभिया एतत्क्रतुकरणे क्षुद्रराजा न प्रवर्तन्त इति हेतुर्ध्वनितः। सार्द्धश्लोक एकान्वयो चकारोऽवश्यमर्थे ॥ १६ ॥

कल्पसूत्रों में प्रतिपादित शास्त्रीय विधि के अनुसार शान्तियों की वृद्धि हो। यदि इस उत्तम यज्ञ में दुर्निवार तथा कष्ट देने वाली विधि हीनता न आ पड़े तो सब राजा इस यज्ञ को कर लें ॥ १६ ॥

छिद्रं हि मृगयन्ते स्म विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः ॥ १७ ॥
विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति ।

ननु किं विधिहीनत्वेनेत्यत आह—छिद्रमिति। विद्वांसः यागप्रकारविदः ब्रह्मराक्षसाः अयाज्ययाजनाप्रतिग्राह्यप्रतिग्रहीतृत्वादिना राक्षसत्व प्राप्ताः ते एव ब्रह्माणो ब्राह्मणाः कर्मधारयः। अत्र यागे क्षुद्रमपराधं मृगयन्ते। एतेन जातापराधत्यागभागस्य देवानर्हत्वेन ब्रह्मराक्षसा एव गृह्णन्तीत्य-

न्वेषणे हेतुर्ध्वनितः । 'छिद्रं रन्ध्रापराधयोः' इति वैजयन्ती । ननु किं तेने-त्यत आह विधिहीनस्य यज्ञस्य कर्ता सद्यो विनश्यत्येव हि शब्द एवार्थे ॥१७॥

क्योंकि यज्ञ के रहस्य को जानने वाले ब्रह्म राक्षस छिद्र देखा करते हैं और विधिहीन यज्ञ करने वाला (यजमान) शीघ्र ही विनाश प्राप्त करता है ॥१७॥

तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते ॥ १८ ॥
तथा विधानं क्रियतां समर्थाः साधनेष्विति ।
तथेति चाब्रुवन्सर्वे मन्त्रिणः प्रतिपूजिताः ॥ १९ ॥

तदिति । तत्तस्माद्धेतोः यथा येन प्रकारेण एष मे क्रतुः विधिपूर्वम-पराधशून्यपूर्वकं सत् समाप्यते तथा तेन प्रकारेण विधानं यत्नः क्रियतां भवद्भिः संपाद्यताम् तत्र हेतुमाह—यत इह करणेषु निर्विघ्नयागसमापन-कार्येषु भवन्तः समर्थाः । तथेतीति । पार्थिवेन्द्रस्य महाराजाधिराज-दशरथस्य आज्ञप्तं तत्प्रसिद्धं वाक्यं ते सर्वे मन्त्रिणः यथा यथावत् निशम्य श्रुत्वा तथेति अब्रुवन्प्रत्यपूजयन् उत्कृष्टो भवतां निश्चय इति प्राशंसश्च । मन्त्रिणः प्रतिपूजिता इति भट्टसंमतः पाठः ॥ १८–१९ ॥

इसलिए जैसे भी विधिपूर्वक यह मेरा यज्ञ पूर्ण हो वैसा यत्न आप लोग करें क्योंकि सब प्रकार के साधनों से युक्त हैं । उन सब सत्कृत मन्त्रिगण ने 'बहुत अच्छा' ऐसा कहा ॥ १८-१९ ॥

पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथापूर्वं निशम्य ते ।
तथा द्विजास्ते धर्मज्ञा वर्धयन्तो नृपोत्तमम् ॥ २० ॥
अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् ।

तथेति । तथा तेन प्रकारेण धर्मज्ञास्ते सपुरोहितर्त्विजो द्विजाः नृपोत्तमं वर्द्धयन्तो तथेति अब्रुवन् प्रत्यपूजयंश्चेति पूर्वेणान्वयः । ततः प्रोत्साहनानन्तरमनुज्ञाताः राजानुज्ञां प्राप्ताः सर्वे सपुरोहितऋत्विजो यथागतमागतमनतिक्रम्य पुनर्जग्मुः ॥ २० ॥

महाराजाधिराज दशरथ के उस वचन को सुनकर वे धर्म का रहस्य जानने वाले ब्राह्मण भी आशीर्वादों से राजा की वृद्धि की कामना करते हुए उनकी आज्ञा पाकर जिस प्रकार आये थे वैसे ही पुनः अपने-अपने आवास को चले गये ॥ २० ॥

विसर्जयित्वा तान्विप्रान्सचिवानिदमब्रवीत् ॥ २१ ॥
ऋत्विग्भिरुपसंदिष्टो यथावत्क्रतुराप्यताम् ।

विसर्जयित्वेति । तान् सपुरोहितऋत्विजो विप्रान् विसर्जयित्वा विसर्ज्यं ऋत्विग्भिः उपसंदिष्टोऽयं क्रतुः यथावदाप्यताम् इदं वचनं सचिवान्मन्त्रिणः अब्रवीत् ॥ २१ ॥

उन ब्राह्मणों को बिदा कर राजा ने मन्त्रियों से यह कहा कि जिस प्रकार ऋत्विजों ने उपदेश दिया तदनुसार ही यज्ञ किया जाय ॥ २१ ॥

इत्युक्त्वा नृपशार्दूलः सचिवान्समुपस्थितान् ॥ २२ ॥
विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः ।

इत्युक्त्वेति । महामतिः परमप्रकाशः नृपशार्दूलः राजसिंहः इत्युक्त्वा समुपस्थितान्समागतान्सचिवान् विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश ॥ २२ ॥

इस प्रकार कहकर उस महामति राजसिंह ने उपस्थित मन्त्रियों को विसर्जित किया और अपने आवास भवन में प्रवेश किया ॥ २२ ॥

ततः स गत्वा ताः पत्नीर्नरेन्द्रो हृदयंगमाः ॥ २३ ॥
उवाच दीक्षां विशत यक्ष्येऽहं सुतकारणात् ।

तत इति । ततः स्ववेश्मप्रवेशानन्तर स नरेन्द्र. हृदयंगमाः प्रियास्ताः प्रसिद्धाः पत्नीः गत्वा प्राप्य अहं सुतकारणाद्यक्ष्ये अतो यूयं दीक्षां विशत इति उवाच ॥ २३ ॥

तदनन्तर घर जाकर राजा दशरथ ने प्राणप्रिया अपनी यज्ञ में दीक्षित होने योग्य पत्नियों से कहा कि तुम भी यज्ञ में दीक्षित हो जाओ क्योंकि मैं पुत्र के लिए यज्ञ करूँगा ॥ २३ ॥

तासां तेनातिकान्तेन वचनेन सुवर्चसाम् ।
मुखपद्मान्यशोभन्त पद्मानीव हिमात्यये ॥ २४ ॥

तासामिति । सुवर्चसामतितेजस्विनीनां तासां पत्नीनां मुखपद्मानि अतिकान्तेन अतिरमणीयेन तेन पूर्वोक्तेन राजवचनेन हिमात्यये हिमध्वंसे पद्मानीव अशोभन्त ॥ २४ ॥

अत्यन्त रमणीय राजा के इस वचन से उन अति तेजस्विनी राजपत्नियों के मुख हेमन्त ऋतु के बीत जाने के बाद पद्मों की भाँति शोभित हुए ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः

एतच्छ्रुत्वा रहः सूतो राजानमिदमब्रवीत्।
श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम् ॥ १ ॥
ऋत्विग्भिरुपदिष्टोऽयं पुरावृत्तो मया श्रुतः।
सनत्कुमारो भगवान्पूर्वं कथितवान्कथाम् ॥ २ ॥
ऋषीणां संनिधौ राजंस्तव पुत्रागमं प्रति।

पत्न्याज्ञापनोत्तरकालिकं वृत्तमाह—एतदित्यादिभिः। सूतः सुमन्त्रः रहः अन्तः पुरं प्राप्येति शेषः। एतत्पुत्रोद्देश्यकयागारम्भकवचनं श्रुत्वा इदं वक्ष्यमाण वचनं राजानमब्रवीत्। तदेवाह ऋत्विग्भिर्वसिष्ठादिप्रमुखैरुपदिष्टः यः अयं पुत्रोपायभूतो यागः सः पुरा पूर्वं वृत्तः राजभिः संपादितः मया श्रुतः इतिहासपुराणादिश्रवणद्वारा निश्चितः सुमन्त्रस्य मन्त्रित्व-सूतत्वोभयोक्त्या तदुभयधर्माक्रान्तत्वं बोध्यम्। अब्रवीदित्यस्यानन्तरं 'श्रूयतां यत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम्' इत्यर्द्धश्लोकोऽपि भट्टसंमत ॥१॥

स्वश्रुत विशदयन्नाह—सनत्कुमार इति। हे राजन्। ऋषीणां सन्निधौ समीपे तव पुत्रागमं प्रति पुत्रप्राप्तिसंबन्धिनीं कथां भगवान् त्रैकालिक-ज्ञानरूपैश्वर्यविशिष्टः सनत्कुमारः पूर्वं कथितवान् ॥ २ ॥

यह सुनकर सारथि सुमन्त्र ने एकान्त में राजा से यह कहा कि जो पुरावृत्त मैंने पुराणों में सुना है उसे आप सुनें। यह पुरातन वृत्तान्त ऋत्विजों के द्वारा उपदिष्ट है जो मैंने सुना है।

हे राजन्! आपके पुत्रों की प्राप्ति के सम्बन्ध में ऋषियों के समक्ष भगवान् सनत्कुमार ने बहुत पहिले एक कथा कही थी ॥ १–२ ॥

कश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः ॥ ३ ॥
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति।

तामेवाह—कश्यपस्येति। विभाण्डक इति नाम्ना श्रुतः कश्यपस्य पुत्रोऽस्ति। ऋष्यशृङ्ग इति नाम्ना ख्यातः प्रसिद्धः तस्य विभाण्डकस्यापि पुत्रो भविष्यति। तुशब्दोऽप्यर्थे ॥ ३ ॥

कश्यप के विभाण्डक नाम से प्रसिद्ध एक पुत्र है उसके ऋष्यशृङ्ग नाम से विख्यात पुत्र होगा ॥ ३ ॥

स वने नित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा ॥ ४ ॥
नान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रनुवर्तनात् ।

स इति । वनचरैः सह वने नित्यं संवृद्धः विप्रेन्द्रो विप्रश्रेष्ठः स मुनिः नित्यं पित्रनुवर्त्तनात् पितृपरिचर्यातः अन्यत्किञ्चिन्न जानाति ॥ ४ ॥

वह मुनि ऋष्यशृङ्ग सदा वन में रहता है और वहीं वह बढ़ा है। वह ब्राह्मण श्रेष्ठ सदा पिता के साथ रहने से और कुछ भी नहीं जानता ॥ ४ ॥

द्वैविध्यं ब्रह्मचर्यस्य भविष्यति महात्मनः ॥ ५ ॥
लोकेषु प्रथितं राजन्विप्रैश्च कथितं सदा ।

द्वैविध्यमिति । हे राजन् ! ब्रह्मणि वेदे चर्या स्थितिर्यस्य अत एव महात्मनः पूज्य स्वरूपस्य ऋष्यशृङ्गस्य विप्रैः सदा कथितं वर्णितम् । अत एव लोकेषु प्रथित प्रसिद्धं द्वैविध्यं मेखलाजिनादिधारणरूपं मुख्यं ब्रह्मचर्यम्, दारेषु ऋतुगमनरूपं पर गौणम् तत्प्रकारद्वयमप्यस्य भविष्यति ॥ ५ ॥

हे राजन् ! उस महात्मा का संसार में प्रसिद्ध और महात्माओं द्वारा वर्णित ब्रह्मचर्य दो प्रकार का—एक मेखला, मृगचर्म, दण्डधारण और दूसरा ऋतु-कालाभिगमन रूप—होगा ॥ ९ ॥

तस्यैवं वर्तमानस्य कालः समभिवर्तत ॥ ६ ॥
अग्निं शुश्रूषमाणस्य पितरं च यशस्विनम् ।

तस्येति । अग्निं यशस्विनं पितरं च शुश्रूषमाणस्य सेवमानस्य ऋष्यशृङ्गस्य कालः विवाहादिहेतुभूतसमयः समभिवर्तत सम्प्राप्स्यति । भविष्यति लङ् । आगमशास्त्रस्यानित्यत्वादड्विरहः ॥ ६ ॥

इस प्रकार से अग्नि और यशस्वी पिता की सेवा करते हुए उसका समय बीत रहा था ॥ ६ ॥

एतस्मिन्नेव काले तु रोमपादः प्रतापवान् ॥ ७ ॥
अङ्गेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः ।

एतस्मिन्निति । एतस्मिन् विवाहादिहेतुभूते काले एव प्रतापवान्महाबलश्च रोमपादो राजा अङ्गेषु अङ्गदेशेषु प्रथितः ख्यातो भविष्यति । तुश्चार्थे ॥ ७ ॥

उसी समय अंगदेश में प्रसिद्ध, बड़े प्रतापी और बड़े बलवान् रोमपाद नाम के राजा होंगे ॥ ७ ॥

तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा ॥ ८ ॥
अनावृष्टिः सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा ।

तस्येति । तस्य राज्ञो व्यतिक्रमाद्विरुद्धधर्माचरणात्सुदारुणा बहुकालिकत्वेन कठिना सुघोरा सर्वतद्देशव्यापिनीत्वेन दुःसहा अत एव सर्वभूतभयावहा च अनावृष्टिः वृष्ट्यभावो भविष्यति । वैशब्दश्चार्थे ॥ ८ ॥

उस राजा के धर्माचरण से सब लोकों में भय बढ़ाने वाली घोर और दारुण अनावृष्टि होगी ॥ ८ ॥

अनावृष्ट्यां तु वृत्तायां राजा दुःखसमन्वितः ॥ ९ ॥
ब्राह्मणाञ्छ्रुतसंवृद्धान्समानीय प्रवक्ष्यति ।

अनावृष्ट्यामिति । अनावृष्ट्यां वृष्ट्यभावे वृत्तायां प्रवृत्तायां दुःखसमन्वित एव राजा रोमपाद श्रुतवृद्धान् श्रुतेन अनेकलौकिकवैदिकवृत्तश्रवणेन वृद्धान्सम्पन्नान्ब्राह्मणान् चकारेण अन्यानपि बहुश्रुतक्षत्रियादीन्समानीय प्रवक्ष्यति । तुशब्द एवार्थे श्रुतसंवृद्धानिति भट्टसंमतः पाठः ॥ ९ ॥

अनावृष्टि के पड़ जाने पर दुःखी होकर राजा शास्त्र जानने वाले बड़े निपुण ब्राह्मणों को बुला कर कहेगा ॥ ९ ॥

भवन्तः श्रुतधर्माणो लोकचारित्रवेदिनः ॥ १० ॥
समादिशन्तु नियमं प्रायश्चित्तं यथा भवेत् ।
इत्युक्तास्ते ततो राज्ञा सर्वे ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ११ ॥

राजोक्तिमेवाह—भवन्त इति । श्रुतधर्माणः श्रुत्वा धर्मा अनेकलौकिकवैदिकवृत्तानि अत एव लोकचारित्रवेदिनः लोककर्त्तव्यविषयकनिश्चयवन्तः भवन्तः प्रायश्चित्तं मत्कृतपापशोधनं यथा भवेत्तथा नियमं कर्त्तव्यनियमनं समादिशन्तु सम्यग्बोधयन्तु ॥ १०–११ ॥

हे विद्वानो, आप सब लोक के चरित्र के ज्ञाता और शास्त्रविहित कर्म के जानने वाले हैं अतः हमें ऐसा नियम बतावें जिससे अनावृष्टि के कारणभूत मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो जाय ॥ १०–११ ॥

वक्ष्यन्ति ते महीपालं ब्राह्मणा वेदपारगाः ।
विभाण्डकसुतं राजन्सर्वोपायैरिहानय ॥ १२ ॥

वक्ष्यन्ति इति । वेदपारगा: ते ब्राह्मणा: पृष्टाः सन्तः महीपालं वक्ष्यन्ते कथयिष्यन्ति तत्कथनमेवाह हे राजन् । विभाण्डकसुतं ऋष्यशृङ्गं सर्वोपायैः निःशेषयत्नैरिह आनय । प्रायश्चित्तं यथा भवेदित्यस्यानन्तरम् इत्युक्तास्ते ततो राज्ञा सर्वे ब्राह्मणसत्तमा:' इति श्लोकार्द्धमपि भट्टसंमतम् ॥१२॥

राजा के इस प्रश्न के उत्तर में श्रेष्ठ तथा वेदपार जाननेवाले सब ब्राह्मण उससे कहेंगे कि हे राजन् आप सब उपायों से विभाण्डक के पुत्र शृष्यशृङ्ग को बुलाइये ॥ १२ ॥

आनाय्य तु महीपाल ऋष्यशृङ्गं सुसत्कृतम् ।
विभाण्डकसुतं राजन्ब्राह्मणं वेदपारगम् ॥
प्रयच्छ कन्यां शान्तां वै विधिना सुसमाहितः ॥ १३ ॥

आनयनानन्तरकालिककर्त्तव्यमाह—आनाय्येति । हे महीपाल ऋष्यशृङ्गं सुसत्कृतं यथा भवति तथा आनाय्य स्वपुरं प्रापय्यैव सुसमाहितः एकाग्रचित्तास्त्वं शान्तां कन्यां विधिना वेदोक्तविधानेनैव प्रयच्छ तस्मै एव देहीत्यर्थः । तुवैशब्दौ एवार्थौ महीपालेत्यत्र संहिताकार्यविरहः 'ऋत्यक' इति प्रकृतिभावात् । पादान्तस्थत्वेन संहिताया अभावाच्च॥१३॥

राजन् ! रोमपाद विमाण्डक के पुत्र, वेद का पार जाननेवाले, ब्राह्मण ऋष्यशृङ्ग को बुलाइए और सत्कार तथा विधिपूर्वक, सावधानचित्त होकर शान्ता नाम की कन्या दे दीजिये ॥ १३ ॥

तेषां तु वचनं श्रुत्वा राजा चिन्तां प्रपत्स्यते ।
केनोपायेन वै शक्यमिहानेतुं स वीर्यवान् ॥ १४ ॥

तेषामिति । तेषामुपदेष्टृणां वचनं श्रुत्वैव राजा चिन्तां विचारं प्रपत्स्यते प्राप्नोत् तत्स्वरूपमाह—वीर्यवान् तपोजनितपरमबलविशिष्टः स ऋष्यशृङ्ग। इह एवानेतुं केन उपायेन शक्यम् तुवैशब्दौ एवार्थौ शक्यमिति सामान्ये नपुंसकम् ॥ १४ ॥

राजा रोमपाद उन ब्राह्मणों के वचन को सुनकर बड़ा चिन्तित होगा कि किस उपाय से वह जितेन्द्रिय यहाँ बुलाया जा सकता है ॥ १४ ॥

ततो राजा विनिश्चित्य सह मन्त्रिभिरात्मवान् ।
पुरोहितममात्यांश्च प्रेषयिष्यति सत्कृतान् ॥ १५ ॥

तत इति । ततः विचारानन्तरमात्मवान् प्रशस्तबुद्धिविशिष्टः धर्म-

विद्राजा मन्त्रिभिः सह विनिश्चित्य आनयनोपायनिश्चयं कृत्वा पुरोहि-
ममात्यांश्च ततः स्वदेशात् प्रेषयिष्यति ॥ १५ ॥

इसके बाद आत्मवान् राजा रोमपाद मन्त्रियों के साथ निश्चय करके सत्क-
किये हुए अपने पुरोहितों और मन्त्रियों को भेजेगा ॥ १५ ॥

ते तु राज्ञो वचः श्रुत्वा व्यथिता विनताननाः ।
न गच्छेम ऋषेर्भीता अनुनेष्यन्ति तं नृपम् ॥ १६ ॥

ते त्विति । ते पुरोहितादयः राज्ञो वचः श्रुत्वैव ऋषेर्भीताः अत ए-
व्यथिताः व्यथां प्राप्ताः अत एव विनताननाः अवनतमुखाः ते पुरोहिता-
दयः वयं न गच्छेमेति निश्चित्येति शेषः । तं नृपमनुनेष्यन्ति उपायान्तर-
कथनेन सन्तोषयिष्यन्ति । तुशब्द एवार्थे । वनताननाः इति भट्टसम्मत
पाठः । अवस्यादेर्लोप इति तद्व्याख्या ॥ १६ ॥

तब वे राजा का वचन सुन, दुःखी हो, मुख नीचे किये हुए और ऋषि-
भयभीत होकर उसे समझायेंगे कि हम नहीं जायेंगे ॥ १६ ॥

वक्ष्यन्ति चिन्तयित्वा ते तस्योपायांश्च तान्क्षमान् ।
आनेष्यामो वयं विप्रं न च दोषो भविष्यति ॥ १७ ॥

वक्ष्यन्तीति । ते पुरोहितादयः तस्य ऋष्यानयनस्य क्षमान् योग्या-
स्तान्वक्ष्यमाणानुपायान् चिन्तयित्वा विचारेण निश्चित्यैव वक्ष्यन्ति रा-
निवेदयिष्यन्ति । तदेवाह वयं विप्रमानेष्यामः उपायान्तरेण प्रापयिष्या-
यतः दोषः अपराधो न भविष्यति । एकः चशब्दः एवार्थे ॥ १७ ॥

और उनके बुलाने के लिए समर्थ उपाय सोचकर कहेंगे कि हम उस ब्राह्-
ऋष्यश्रृङ्ग को ले आयेंगे और दोष भी नहीं होगा ॥ १७ ॥

एवमङ्गाधिपेनैव गणिकाभिर्ऋषेः सुतः ।
आनीतोऽवर्षयद्देवः शान्ता चास्मै प्रदीयते ॥ १८ ॥

एवमिति । एवं पुरोहितादिबोधितोपायप्रकारेण गणिकाभिः करण-
भूतैः अङ्गाधिपेन कर्त्रा ऋषेः सुतः आनीतः आनेष्यति । अतः दे-
अवर्षयत् वर्षयिष्यति । अतः अस्मै शान्ता प्रदीयते प्रदास्यति । काल-
पात्तभूतादेरविवक्षा । च शब्दो हेत्वर्थे ॥ १८ ॥

इस प्रकार अङ्ग देश का राजा रोमपाद वेश्याओं के द्वारा उस ऋषिपु-
को लायेगा, वर्षा होगी और शान्ता उसे दी जायगी ॥ १८ ॥

ऋष्यश्रृङ्गस्तु जामाता पुत्रांस्तव विधास्यति।
सनत्कुमारकथितमेतावद् व्याहृतं मया ॥ १९ ॥

ऋष्येति। तव जामाता ऋष्यश्रृङ्गः पुत्रानपि विधास्यति त्वया पुत्रान्विशेषेण प्रकटीकार्यं धारयिष्यति। एतावद्वचनं सनत्कुमारकथितं मया व्याहृतं तवाग्रे कथितम् तु शब्दोऽप्यर्थे। विधास्यतीत्यन्तर्भावितणिजर्थः ॥ १९ ॥

जामाता (दामाद) ऋष्यश्रृङ्ग आपके पुत्रों की उत्पत्ति का विधान करेंगे। यह समस्त कथा मैंने सनत्कुमार की कथन की हुई कही ॥ १९ ॥

अथ हृष्टो दशरथः सुमन्त्रं प्रत्यभाषत।
यथर्ष्यश्रृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन सोच्यताम् ॥ २० ॥

अथेति। अथ सुमंत्रोक्तिश्रवणानन्तरं हृष्टो दशरथः सुमंत्रं प्रत्यभाषत। भाषणाकारमाह यथा येन प्रकारेण ऋष्यश्रृङ्गः आनीतः स प्रकारस्त्वया विस्तारेणैवोच्यताम्। तुशब्द एवार्थे। येनोपायेन सोच्यतामिति भट्टसम्मतः पाठः सोच्यतामित्यत्र सन्धिरार्षः अध्याहृतकथाविशेषणं वेति तैर्व्याख्यातम् ॥ २० ॥

इसके बाद प्रसन्न होकर दशरथ ने सुमन्त्र से कहा कि जिस उपाय से ऋष्यश्रृंग बुलाये जायँ—वह उपाय बताइए ॥ २० ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायामष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥



नवमः सर्गः

सुमन्त्रश्चोदितो राज्ञा प्रोवाचेदं वचस्तदा।
यथर्ष्यश्रृङ्गस्त्वानीतो येनोपायेन मन्त्रिभिः॥
तन्मे निगदितं सर्वं शृणु मे मन्त्रिभिः सह॥ १॥

सुमन्त्र इति। राज्ञा चोदितः प्रेरितः सुमन्त्रः तदा तस्मिन्काले इदं व
प्रोवाच। वचनप्रकारमाह—यथा येन प्रकारेण ऋष्यश्रृङ्गः मन्त्रि
रोमपादसचिवादिभिः आनीतः रोमपादपुरं प्रापितस्तन्मया निगदितं
प्रकारं मे मत्तो मन्त्रिभिः सह शृणु हेति हर्षे॥ १॥

तब राजा दशरथ के कहने पर सुमन्त्र ने ये वचन कहे कि हे राजन् मन्त्रि
के जिन उपायों द्वारा ऋष्यश्रृङ्ग लाये गए वह सब कुछ मैं कह रहा हूँ
मन्त्रियों के साथ सुनिए॥ १॥

रोमपादमुवाचेदं सहामात्यः पुरोहितः।
उपायो निरपायोऽयमस्माभिरभिचिन्तितः॥ २॥

रोमेति। सहामात्यः अमात्यसहितः पुरोहितः रोमपाद इदं व
उवाच। तद्वचनमेवाह—निरपायः अवश्यंभावफलविशिष्टः अयमु
अस्माभिः अभिचिन्तितः विचारितः॥ २॥

मन्त्रियों के सहित पुरोहित ने रोमपाद से यह कहा कि हमने ऋषि के
में यह उपाय भलीभाँति विचार लिया है॥ २॥

ऋष्यश्रृङ्गो वनचरस्तपःस्वाध्यायसंयुतः।
अनभिज्ञस्तु नारीणां विषयाणां सुखस्य च॥ ३॥

आनयनोपायमाह—ऋष्येति। यः तपःस्वाध्यायतत्परः तपःस्वा
ययोः निरतः वनचरः वनमात्रवासो स ऋष्यश्रृङ्गः नारीणां स्त्रि
विषयाणामिन्द्रियग्राह्यरूपरसादीनां च सुखस्य इन्द्रियविषयसंयोगज
नन्दतमस्य च अनभिज्ञः अनभिज्ञातास्ति॥ ३॥

ऋष्यश्रृङ्ग वन में विचरने वाले, तप और स्वाध्याय (वेदपाठ) में
रहने वाले हैं और स्त्रियों और विषयों (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्दों
सुख से अपरिचित॥ ३॥

इन्द्रियार्थैरभिमतैर्नरचित्तप्रमाथिभिः ।
पुरमानाययिष्यामः क्षिप्रं चाध्यवसीयताम् ॥ ४ ॥

अभिमतैः प्रीतिविषयभूतैः अत एव नरचित्तप्रमाथिभिः जनहृदयापकर्षकैः इन्द्रियार्थैः इन्द्रियविषयभूतपदार्थैः क्षिप्रं शीघ्रं पुरमानाययिष्यामः इति अध्यवसीयतां निश्चीयताम् । च शब्द इत्यर्थे ॥ ४ ॥

अतः बड़े प्रिय और पुरुषों के चित्र को खींचने वाले इद्रियों के लोभनीय अर्थों से हम ऋष्यश्रृङ्ग को पुर में ले आयेंगे आप शीघ्र प्रयत्न कीजिए ॥ ४ ॥

गणिकास्तत्र गच्छन्तु रूपवत्यः स्वलंकृताः ।
प्रलोभ्य विविधोपायैरानेष्यन्तीह सत्कृताः ॥ ५ ॥

गणिका इति । रूपवत्यः स्वलंकृताः गणिका वेश्यास्तत्र ऋषिसमीपे गच्छन्तु सत्कृता मुनिना आदृतास्ताः विविधोपायैः प्रलोभ्य इह आनेष्यन्ति ॥ ५ ॥

रूपवती और अलंकृत गणिकायें (वेश्यायें) वहाँ जाँय, सत्कार पायी हुई वे अनेक उपायों से प्रलोभन देकर यहाँ उन्हें ले आयेंगो ॥ ५ ॥

श्रुत्वा तथेति राजा च प्रत्युवाच पुरोहितम् ।
पुरोहिते मन्त्रिणश्च तदा चक्रुश्च ते तथा ॥ ६ ॥

श्रुत्वेति । राजा रोमपादः श्रुत्वा स्वमन्त्रिपुरोहितोक्तिं ज्ञात्वैव तथा स्वोक्तप्रकारेण कुरुष्वेति पुरोहितं प्रत्युवाच तथा राजाज्ञापनकाले ते पुरोहितो मन्त्रिणश्च तथा राजाज्ञया स्वोक्तप्रकारेण चक्रुः ऋष्यानयनाय वनप्रवेशं प्रति गणिकाः आज्ञापयामासुरित्यर्थः । च शब्द एवार्थे ॥ ६ ॥

यह सुनकर राजा ने 'ठीक है, वैसा ही हो' अपने पुरोहित से कहा तब पुरोहित और मन्त्रियों ने उसी प्रकार का उपाय किया ॥ ६ ॥

वारमुख्यास्तु तच्छ्रुत्वा वनं प्रविविशुर्महत् ।
आश्रमस्याविदूरेऽस्मिन्यत्नं कुर्वन्ति दर्शने ॥ ७ ॥
ऋषेः पुत्रस्य धीरस्य नित्यमाश्रमवासिनः ।

वारमुख्या इति । वारमुख्याः गणिकाः तद्वनप्रवेशाज्ञापनं श्रुत्वैव महद्वनं प्रविविशुः । अस्मिन्मुनिवनत्वेन प्रसिद्धवने आश्रमस्य विभाण्डकमुनिपर्णशालायाः अविदूरे निकटे स्थित्वेति शेषः । धीरस्य अत एव नित्यमाश्रमवासिनः ऋषिपुत्रस्य ऋष्यश्रृङ्गस्य दर्शने अवलोकने यत्नं प्रयत्नं कुर्वन्ति ।

एतेन मुनिसमीपगमनं नैतासां साध्यमिति ध्वनितम् तेन मुने परम-तेजस्वित्वं सूचितम् सार्धश्लोक एकान्वयी ॥ ७ ॥

श्रेष्ठ गणिकाओं ने आदेश पाकर बड़े वन में प्रवेश किया और इस आश्रम के निकट डेरा डालकर ऋषि के दर्शन का प्रयत्न करने लगीं। ऋषि का पुत्र धीर स्वभाव होने के कारण सदा आश्रम में ही रहता था ॥ ७ ॥

पितुः स नित्यसंतुष्टो नातिचक्राम चाश्रमात् ॥ ८ ॥

पितुरिति। पितुः पितृसेवया पितृकृतलालनादिना वा नित्यसंतुष्टः स ऋष्यशृङ्गः आश्रमान्नातिचक्राम ॥ ८ ॥

पिता से सदा सन्तुष्ट रहने के कारण वह कभी भी आश्रम के बाहर नहीं निकला ॥ ८ ॥

न तेन जन्मप्रभृति दृष्टपूर्वं तपस्विना।
स्त्री वा पुमान्वा यच्चान्यत्सत्त्वं नगरराष्ट्रजम् ॥ ९ ॥

नेति। तेन प्रसिद्धेन तपस्विना ऋष्यशृङ्गेण जन्मप्रभृति जन्मतः आरभ्य नगरराष्ट्रज नगरराष्ट्रोद्भवं स्त्री पुमाँश्च अन्यत्तद्भिन्नं च नपुंसक-मित्यर्थः सत्त्वं नगरराष्ट्रसंबन्धिप्राणिधर्मश्च वृत्तमिति यावत्। एतत्सर्वं दृष्टपूर्वं न अतो न ज्ञायत इति शेषः। दृष्टपूर्वं नगरराष्ट्रजमेतद्द्वयमावृत्त्या लिङ्गविपरिणामेन च सर्वत्रान्वेति। 'नपुंसकमनपुंसकेनैवच्चास्यान्यतर-स्याम्' इति नपुंसकशेषे समुदायान्वयेनावयवान्वये पर्यवसानं वा बोध्यम्। वाशब्दौ चार्थौ ॥ ९ ॥

उस तपस्वी ने जन्म से लेकर कभी पहले स्त्री, पुरुष, नगर और राज्य में उत्पन्न हुए किसी प्राणी को भी नहीं देखा था ॥ ९ ॥

ततः कदाचित्तं देशमाजगाम यदृच्छया।
विभाण्डकसुतस्तत्र ताश्चापश्यद्वराङ्गनाः ॥ १० ॥

तत इति। ततः स्वाश्रमात्कदाचित्कस्मिंश्चित्समये तं गणिकाधिष्ठितं देशं वनप्रदेशं यदृच्छया परमात्मेच्छया विभाण्डकसुतः ऋष्यशृङ्ग आज-गाम तत्र तस्मिन्वनप्रदेशे ताः [illegible]श्चनार्थमागताः वराङ्गनाः गणिकाः अपश्यच्च ॥ १० ॥

तदनन्तर किसी दिन वह विभाण्डक का पुत्र ऋष्यशृङ्ग अपनी इच्छा से ही उस स्थान पर चला आया और वहां उन दिव्य अङ्गनाओ को देखा ॥ १० ॥

ताश्चित्रवेषाः प्रमदा गायन्त्यो मधुरस्वरम्।
ऋषिपुत्रमुपागम्य सर्वा वचनमब्रुवन्॥ ११॥

ता इति। चित्रवेषाः चित्रवेषधराः मधुरस्वरम् गायन्त्यः ताः आनयनार्थमागताः सर्वाः प्रमदाः ऋषिपुत्रमुपागम्य संप्राप्य वचनमब्रुवन्॥११॥

वे विचित्र वेषवाली, हर्ष देने वाली स्त्रियाँ मधुर स्वर से गान करती हुई ऋषि पुत्र के समीप आयीं और बोलीं॥ ११॥

कस्त्वं किं वर्तसे ब्रह्मञ्ज्ञातुमिच्छामहे वयम्।
एकस्त्वं विजने दूरे वने चरसि शंस नः॥ १२॥

वचनमेवाह। क इति। हे ब्रह्मन्! त्वं कः कस्य पुत्रः किन्नामा चासीत्यर्थः। किं वर्तसे किं कर्म वर्तसे प्रवर्तयसि करोषीत्यर्थः अन्तर्भावितणिजर्थः। विजने जनान्तररहिते दूरे वने एकस्त्वं किं किमर्थं चरसि इति वयं ज्ञातुमिच्छामहे इच्छामः अतस्त्वं नः अस्मभ्यं शंस। किमित्यावृत्त्या चरसीत्यत्राप्यन्वेति। विजने दूरे इति भट्टसंमतः पाठः तत्र ग्रामादिभ्यो दूरे इत्यर्थः॥ १२॥

आप कौन है, यहाँ क्या करते हैं और इस दूर निर्जन वन में अकेले क्यों विचरते हैं यह जानने की हमारी इच्छा है आप हमसे कहिए॥ १२॥

अदृष्टरूपास्तास्तेन काम्यरूपा वने स्त्रियः।
हार्दात्तस्य मतिर्जाता आख्यातुं पितरं स्वकम्॥ १३॥

अदृष्टेति। तेन ऋष्यशृङ्गेन अदृष्टरूपाः न दृष्टानि रूपाणि यासां ताः काम्यरूपाः सर्वेच्छाविषयीभूतरूपविशिष्टा परमसुन्दरीरित्यर्थः। वने विद्यमानाः स्त्रियः हार्दादवलोकनमात्रेण जातस्नेहात्स्वकं पितरमुपलक्षणेन तत्पृष्टं सर्वमित्यर्थः। आख्यातुं मतिर्जाता। ख्याधातोर्द्विकर्मकत्वात् कर्मद्वयम्॥ १३॥

ऐसे कमनीय रूपवाली स्त्रियाँ कभी वन में देखी ही न थीं अतः उनके दर्शनजन्य स्नेहवश अपने पिता का नाम आदि बतलाने की उसकी बुद्धि हुई॥ १३॥

पिता विभाण्डकोऽस्माकं तस्याहं सुत औरसः।
ऋष्यशृङ्ग इति ख्यातं नाम कर्म च मे भुवि॥ १४॥

तदाख्यानमेवाह—पितेति। अस्माकं पिता विभाण्डकः विभाण्डकनामा। ऋष्यशृङ्गनामकः तस्य विभाण्डकस्याहमौरसः मुख्यः सुतः कर्मं

तपोरूपं भुवि भूमौ ख्यातं प्रसिद्धं नाम। ऋष्यशृङ्गनामार्थस्तु ऋष्यस्य मृगजातिविशेषस्य शृङ्गमिव शृङ्गं यस्येत्यर्थः। अत्र पौराणिकी प्रसिद्धिः कस्मिश्चित्सरसि विहरन्तीमुर्वशीमवलोक्य स्खलितं विभाण्डकस्य रेतः जले मृग्या पीतं तज्जातत्वाच्छृङ्गित्वमेतस्येति ॥ १४ ॥

हमारे पिता विभाण्डक ऋषि हैं, उनका मैं औरस पुत्र हूँ, ऋष्यशृङ्ग मेरा नाम और तप रूप मेरा कर्म पृथ्वी पर विख्यात है ॥ १४ ॥

इहाश्रमपदोऽस्माकं समीपे शुभदर्शनाः।
करिष्ये वोऽत्र पूजां वै सर्वेषां विधिपूर्वकम् ॥ १५ ॥

इहेति। हे शुभदर्शनाः इह अस्मिन्वने समीपे भवन्निकटे एव आश्रमपदः श्रमनिवर्तकस्थानमस्ति अतः अत्रास्मिन्स्वाश्रमे सर्वेषां वः युष्माकं पूजा विधिपूर्वकं करिष्ये एतेन मदाश्रमे भवद्भिर्गन्तव्यमिति बोधितम्। आश्रमपद इति पुंस्त्वमार्षम्। सर्वेषामिति पुँल्लिङ्गत्वेन निर्देशः स्त्रीपरिज्ञानराहित्यमूलकः। वैशब्दः एवार्थे ॥ १५ ॥

हे प्रियदर्शनाओं, यहाँ से समीप ही हमारा आश्रम स्थान है, वहाँ मैं आप लोगों की विधि पूर्वक पूजा करूँगा ॥ १५ ॥

ऋषिपुत्रवचः श्रुत्वा सर्वासां मतिरास वै।
तदाश्रमपदं द्रष्टुं जग्मुः सर्वास्ततोऽङ्गनाः ॥ १६ ॥

ऋषीति। ऋषिपुत्रवचः श्रुत्वैव आश्रमपदं द्रष्टुं सर्वासां मतिर्निश्चयः आस। अतस्तेन ऋष्यशृङ्गेण सह सर्वाः गणिकास्तदा तस्मिन्काले आश्रमपदं जग्मुः। वैशब्द एवार्थे चो हेतौ। अस्तेर्भूभावाभाव आर्षः दीप्त्यर्थकामो रूपं वा ॥ १६ ॥

ऋषि पुत्र के वचन को सुनकर उन सबकी आश्रम देखने की इच्छा हुई और वे स्त्रियाँ उनके साथ गईं ॥ १६ ॥

गतानां तु ततः पूजामृषिपुत्रश्चकार ह।
इदमर्घ्यमिदं पाद्यमिदं मूल फलं च नः ॥ १७ ॥

गतानामिति। ततोऽनन्तरमेव ऋषिपुत्रः गतानां स्वाश्रमे प्राप्तानां स्त्रीजनानां पूजां चकार। ह इति प्रसिद्धौ। पूजनस्वरूपमाह— इदमर्घ्यादिकं नः अस्माकं दत्तं प्रतिगृह्णन्तु इति शेषः। तुशब्द एवार्थ ॥१७॥

तदनन्तर ऋषि पुत्र ने आश्रम पर गई हुई उन सबकी पूजा की और

कहा कि यह अर्घ है, यह पाद्य (पाँव धोने का जल) है, यह मूल, और फल है ॥ १७ ॥

प्रतिगृह्य तु तां पूजां सर्वा एव समुत्सुकाः ।
ऋषेर्भीताश्च शीघ्रं तु गमनाय मतिं दधुः ॥ १८ ॥

प्रतीति । समुत्सुकाः परमहर्षविशिष्टाः सर्वा गणिकास्तां मुनिदत्तां पूजां प्रतिगृह्यैव तुना शनैः किञ्चित्संभाष्य ऋषेर्विभाण्डकाद्भीता एव सत्यः गमनायैव शीघ्रेण शीघ्रं मतिं दधुः । द्वितीयस्तुशब्द एवार्थे एतेन तस्मिन्काले ऋषिराश्रमादन्यत्र गत इति ध्वनितम् ॥ १८ ॥

उत्सुकतावाली उन सब ने उस दी हुई पूजा को स्वीकार किया और ऋषि (विभाण्डक) से डरकर वहाँ से शीघ्र चलने का विचार किया ॥ १८ ॥

अस्माकमपि मुख्यानि फलानीमानि हे द्विज ।
गृहाण विप्र भद्रं ते भक्षयस्व च मा चिरम् ॥ १९ ॥

अस्माकमपीति । द्विज हे ब्राह्मण इमानि मुख्यानि श्रेष्ठानि अस्माकमपि फलानि गृहाण भक्षयस्व च चिरं विलम्बं मा नैव कुरु हे विप्र ! ते भद्रं भक्षणेन कल्याणं स्यादित्यर्थः वैशब्द एवार्थे ॥ १९ ॥

हे द्विज ! हमारे भी इन सुन्दर फलों को ग्रहण कीजिए और हे विप्र ! शीघ्र इन्हें खा लीजिए, देर न कीजिए, आपका मङ्गल हो ॥ १९ ॥

ततस्तास्तं समालिङ्ग्य सर्वा हर्षसमन्विता ।
मोदकान्प्रददुस्तस्मै भक्ष्यांश्च विविधाञ्छुभान् ॥ २० ॥

तत इति । ततः स्वोक्त्यनन्तरं हर्षसमन्विता सर्वास्ता गणिकाः तं मुनिं समालिङ्ग्य तस्मै मुनये विविधाननेकप्रकाराञ्छुभान्रमणीयान् भक्ष्यान् भक्षयितुं योग्यान्मोदकान्प्रददुः चो हेतौ एतेन कार्यसिद्धौ न विलम्ब इति हर्षं हेतुर्ध्वनितः ॥ २० ॥

तदनन्तर उन लोगों ने उस ऋषि कुमार को आलिङ्गन किया और सब ने हर्ष से युक्त होकर मोदक (लड्डू) और इन्हें अनेक प्रकार के उत्तम भोज्य पदार्थ दिए ॥ २० ॥

तानि चास्वाद्य तेजस्वी फलानीति स्म मन्यते ।
अनास्वादितपूर्वाणि वने नित्यनिवासिनाम् ॥ २१ ॥

तानीति। तेजस्वी मुनिः वने नित्यनिवासिनामनास्वादितपूर्वाणि पूर्वं भक्षणकर्मत्वरहितानि तानि मोदकजातानि आस्वाद्य भक्षयित्वा तानि फलान्येव इति मन्यते स्म। चशब्द एवार्थे ॥ २१ ॥

उस तेजस्वी ने उन मोदकों को खाकर वन में सदा रहने वालों द्वारा पहले कभी भी अनास्वादित फल ही माना ॥ २१ ॥

आपृच्छ्य च तदा विप्रं व्रतचर्यां निवेद्य च।
गच्छन्ति स्मापदेशात्ता भीतास्तस्य पितुः स्त्रियः ॥ २२ ॥

आपृच्छ्येति। अपदानामाश्रयरहितानामीशात्स्वामिनः रक्षकादित्यर्थः तस्य मुनेः पितुः भीता एव ताः स्त्रियः अपदेशाद्व्याजात् व्रतचर्यां निवेद्य उक्त्वा आपृच्छ्य आज्ञां गृहीत्वा च गच्छन्ति स्म स्वस्थानं यान्ति स्म। तुशब्द एवार्थे ॥ २२ ॥

वे स्त्रियां उस विप्र ऋष्यश्रृंग से पूछ और अपने नियम पालन का वहाना बताकर उसके पिता से डरी हुई वहाँ से चली जाया करती थीं ॥ २२ ॥

गतासु तासु सर्वासु काश्यपस्यात्मजो द्विजः।
अस्वस्थहृदयश्चासीद्दुःखाच्च परिवर्तते ॥ २३ ॥

गतास्विति। सर्वासु तासु गणिकासु गतासु काश्यपस्य कश्यपपुत्र-विभाण्डकस्य आत्मजो द्विजो ब्राह्मणः ऋष्यश्रृङ्ग अस्वस्थहृदयः चलित-चित्तः एवासीत् अत एव दुःख यथा स्यात्तथा परिवर्तते स्म नैकत्रा-तिष्ठदित्यर्थः। चशब्द एवार्थे दुःखाच्च परिवर्तते इति भट्टसम्मतः पाठः। एतेन ऋषेस्तन्मनस्कत्वं व्यक्तम् ॥ २३ ॥

उन सब स्त्रियों के चले जाने के बाद कश्यप गोत्र में उत्पन्न विभाण्डक के पुत्र ब्राह्मण ऋष्यश्रृंग का हृदय व्याकुल हो उठा और वह दुःखी रहने लगा ॥२३॥

ततोऽपरेद्युस्तं देशमाजगाम स वीर्यवान्।
विभाण्डकसुतः श्रीमान्मनसाचिन्तयन्मुहुः ॥ २४ ॥
मनोज्ञा यत्र ता दृष्टा वारमुख्याः स्वलंकृताः।

तत इति। स्वलंकृताः शोभनालङ्कारालंकृता अतएव मनोज्ञाः मनो-हराः ताः वारमुख्याः गणिकाः यत्र यस्मिन्देशे दृष्टाः ऋषिपुत्रेणावलो-किताः तं देशं वीर्यवांस्तपोबलविशिष्टः स श्रीमान् विभाण्डकसुतः ऋष्य-

श्रृङ्गः ततः स्वाश्रमात् परेद्युः आजगाम। स वीर्यवानित्येतस्मादुत्तरं मनसा मुहुः अचिन्तयत् ॥ २४ ॥

इसके बाद दूसरे दिन वीर और कान्तिमान वह विभाण्डक ऋषि का पुत्र मन से बारम्बार ध्यान करता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहां कि मन के द्वारा ग्रहण करने योग्य और अलङ्कारों से अलंकृत श्रेष्ठ वेश्याओं को देखा था ॥२४॥

दृष्ट्वैव च ततो विप्रमायान्तं हृष्टमानसाः ॥ २५ ॥
उपसृत्य ततः सर्वास्तास्तमूचुरिदं वचः।

दृष्ट्वैवेति। तदा ऋष्यागमनसमये एव आयान्तं तं विप्रम् ऋष्यश्रृङ्गं दृष्ट्वैव सर्वास्ताः गणिकाः ततः स्वासनादुपसृत्य प्रत्युद्गम्य इदं वचः ऊचुः ॥ २५ ॥

आते हुए ब्राह्मण ऋष्यश्रृंग को देखकर उनका मन हर्षित हो उठा और वे सब उनके समीप जाकर इस प्रकार बोलीं ॥ २५ ॥

एह्याश्रमपदं सौम्य अस्माकमिति चाब्रुवन् ॥ २६ ॥
चित्राण्यत्र बहूनि स्युर्मूलानि च फलानि च।
तत्राप्येष विशेषेण विधिर्हि भविता ध्रुवम् ॥ २७ ॥

तद्वचनमेवाह—एहीति। हे सौम्य अस्माकमपि आश्रमपदमासमन्ताच्छ्रमनिवर्तकं स्थानमेहि आगच्छ तत्र तस्मिन्नस्मदाश्रमपदेपि श्रीमान्सर्वसम्पत्तिसमृद्धः एषः फलादिनिचयविशिष्टः विधिः सत्कारविधानं विशेषेण भविष्यति यतः अत्र चित्राणि बहूनि मूलानि च स्युः ॥ २६-२७ ॥

हे सौम्य आप भी हमारे आश्रम को चलिए। वहां भी अनेक प्रकार के कन्द, मूल और फल हैं। वहां आपका अतिथि सत्कार निश्चय ही विशेष रूप से हो सकेगा ॥ २६-२७ ॥

श्रुत्वा तु वचनं तासां सर्वासां हृदयंगमम्।
गमनाय मतिं चक्रे तं च निन्युस्तथा स्त्रियः ॥ २८ ॥

श्रुत्वेति। सर्वासां हृदयङ्गमं मनोहरं वचनं श्रुत्वैव गमनाय मतिं निश्चयं चक्रे तदा तद्गमननिश्चयकाले एव तं ऋषिं स्त्रियः निन्युः ॥२८॥

उन सब स्त्रियों के हृदयङ्गम वचन सुनकर ऋष्यश्रृङ्ग ने चलने का विचार किया और वे स्त्रियां उन्हें ले गईं ॥ २८ ॥

तत्र चानीयमाने तु विप्रे तस्मिन्महात्मनि ।
ववर्ष सहसा देवो जगत्प्रह्लादयंस्तदा ॥ २९ ॥

तदेति । तदा आनयनकाले तत्र अङ्गदेशे महात्मनि तस्मिन्विप्रे आनीयमाने एव जगदाह्लादयन्नानन्दयन्नेव देवः सहसा त्वरितं ववर्ष तुचशब्दौ एवार्थौ ॥ २९ ॥

उस महात्मा ब्राह्मण के वहां ले जाये जाने पर सब जगत् को आह्लादित करते हुये देव इन्द्र ने अचानक वर्षा की ॥ २९ ॥

वर्षेणैवागतं विप्रं तापसं स नराधिपः ।
प्रत्युद्गम्य मुनिं प्रह्वः शिरसा च महीं गतः ॥ ३० ॥

वर्षेणेति । स प्रसिद्धो नराधिपो रोमपादः वर्षेण वृष्ट्या सहैव विषयं स्वदेशमागतं मुनिं विप्रं प्रत्युद्गम्य प्रत्युद्गमनं कृत्वा प्रह्वः नतिं कुर्वन्नेव शिरसा महीं गतः प्राप्तः साष्टाङ्गं प्रणामं कृतवानित्यर्थः चशब्द एवार्थे ॥ ३० ॥

राजा रोमपाद ने वर्षा के साथ राज्य में आए, बड़े मननशील ब्राह्मण के समीप पहुँच कर पृथ्वी पर शिर रखकर प्रणाम किया ॥ ३० ॥

अर्घ्यं च प्रददौ तस्मै न्यायतः सुसमाहितः ।
वव्रे प्रसादं विप्रेन्द्रान्मा विप्रं मन्युराविशेत् ॥ ३१ ॥

अर्घ्यमिति । सुसमाहितः एकाग्रचित्तो राजा अर्घ्यं पूजार्थमुदकं तस्मै ऋष्यशृङ्गाय न्यायतो यथाविधि प्रददौ विप्रं ऋष्यशृङ्गं तत्पितरं च मन्युः प्रलोभ्यानयनजनितः पुत्रवियोगजनितश्च कोपः मा आविशेत् इति हेतोः विप्रेन्द्रात् प्रसादं स्वापराधक्षमापनपूर्वकतत्प्रसन्नतां वव्रे ययाचे चशब्दो हेत्वर्थे विप्रमन्युशब्दौ विनिगमनाविरहेणार्थद्वयबोधकौ ॥ ३१ ॥

सावधान हो विधिपूर्वक उन्हें अर्घ्य प्रदान किया और उस ब्राह्मण श्रेष्ठ से प्रसन्न होने का वर मांगा कि कदाचित् कपट से ले जाये जाने के कारण क्रोध न उत्पन्न हो जाय ॥ ३१ ॥

अन्तःपुरं प्रवेश्यास्मै कन्यां दत्त्वा यथाविधि ।
शान्तां शान्तेन मनसा राजा हर्षमवाप सः ॥ ३२ ॥

अन्त इति । स राजा अन्तपुरं प्रवेश्य । अस्मै ऋष्यशृङ्गाय शान्तां तन्नामिकां कन्यां शान्तेन मनसा दत्त्वा हर्षं मोदमवाप ॥ ३२ ॥

इन्हें रनिवास में ले जाकर विधि पूर्वक शान्त मन से शान्ता नाम की कन्या देकर राजा रोमपाद बड़े हर्षित हुए ॥ ३२ ॥

एवं स न्यवसत्तत्र सर्वकामैः सुपूजितः ।
ऋष्यश्रृङ्गो महातेजाः शान्तया सह भार्यया ॥ ३३ ॥

एवमिति । एवमुक्तप्रकारेण सर्वकामैः सर्वैरिच्छाविषयोभूत पदार्थैस्तु पूजितः अत्यन्तं सत्कृतः महातेजस्वी परमतेजस्वी ऋष्यश्रृङ्गः शान्तया भार्यया सह तत्र रोमपादपुरे स न्यवसत् । सुखपूर्वकं निवास चकारेत्यर्थः । अत्र महातेजा इत्युक्त्या ऋषेः गणिकास्पर्शजन्यदोषासंसर्गत्वं ध्वनितम् ॥ ३३ ॥

इस प्रकार सब कामनाओं से सत्कार पाते हुए बड़े तेजस्वी ऋष्यश्रृङ्ग अपनी पत्नी शान्ता के साथ वहाँ निवास करने लगे ॥ ३३ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां नवमः सर्गः ॥ ९ ॥



दशमः सर्गः

भूय एव हि राजेन्द्र शृणु मे वचनं हितम् ।
यथा स देवप्रवरः कथयामास बुद्धिमान् ॥ १ ॥

ऋष्यशृङ्गो भवद्भिरवश्यमानेतव्य इति बोधयितुं सुमन्त्रः स्वपूर्वश्रुतमाह—भूय इत्यादिभिः। हे राजेन्द्र देवप्रवरः देवश्रेष्ठः बुद्धिमान् स सनत्कुमारः कथायां नानेतिहासवर्णनावसरे एव हितं हितकारकं वचनं यथा येन प्रकारेणाब्रवीत् एवं तेन प्रकारेणैव मे मत्तः शृणु ॥ १ ॥

सुमन्त्र ने राजा दशरथ से कहा कि श्रेष्ठ राजन्, पुनः आप मेरा हितकर वचन सुनिये जैसा बुद्धिमान् देवश्रेष्ठ सनत्कुमार ने कथा में कहा था ॥ १ ॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातो भविष्यति सुधार्मिकः ।
नाम्ना दशरथो राजा श्रीमान्सत्यप्रतिश्रवः ॥ २ ॥

वचनस्वरूपमाह—इक्ष्वाकूणामिति। सुधार्मिकः परमधर्माचरणशीलः इक्ष्वाकूणां कुले जातः प्रकटितश्रीमान्सर्वसंपत्तिविशिष्टः सत्यप्रतिश्रवः सत्यप्रतिज्ञः राजा महाराजाधिराजो नाम्ना दशरथः दशरथनामा भविष्यति ॥२॥

इक्ष्वाकु के वंश में बड़ा धार्मिक लक्ष्मी सम्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ दशरथ नाम का राजा होगा ॥ २ ॥

अङ्गराजेन सख्यं च तस्य राज्ञो भविष्यति ।
कन्या चास्य महाभागा शान्ता नाम भविष्यति ॥ ३ ॥

अङ्गेति। तस्य प्रसिद्धस्य राज्ञो दशरथस्य अङ्गराजेन रोमपादेन साकं सख्यं भविष्यति अस्य राज्ञो दशरथस्य शान्तानाम कन्या भविष्यति चकारेण कन्याद्वारा वंशप्ररोहणाय दशरथदत्तशान्ता कन्यात्वेन रोमपादेन गृहीता इति तस्यापि कन्या शान्ता भविष्यति ॥ ३ ॥

उस राजा की अंग देश के राजा से मित्रता होगी और उसके शान्ता नाम की बड़े भाग्यशाली एक कन्या होगी ॥ ३ ॥

पुत्रस्त्वङ्गस्य राज्ञस्तु रोमपाद इति श्रुतः ।
तं स राजा दशरथो गमिष्यति महायशाः ॥ ४ ॥

रोमपादः कस्य वश इत्याकाङ्क्षायामाह—पुत्र इति। अङ्गस्य अङ्गसंज्ञस्य राज्ञः पुत्रः रोमपाद इति श्रुतः ख्यातः। महायशाः स दशरथः तं अङ्गराजं रोमपाद गमिष्यति ॥ ४ ॥

अङ्गराज को रोमपाद नाम से विश्रुत पुत्र होगा और बड़े यशस्वी राजा दशरथ अङ्गराज के पास जायेंगे ॥ ४ ॥

अनपत्योऽस्मि धर्मात्मन्शान्ताभर्ता मम क्रतुम्।
आहरेत त्वयाज्ञप्तः संतानार्थं कुलस्य च ॥ ५ ॥

तत्रागतदशरथोक्तिमाह—अनपत्य इति। हे धर्मात्मन् अनपत्यः अप्रादुर्भूतस्वनित्यपुत्रकः अहमस्मि अतः कुलस्य मम वशस्य सन्तानार्थं प्रवृद्ध्यर्थं त्वया आज्ञप्तः त्वदाज्ञां प्राप्तः शान्ताभर्ता शान्तापतिः ऋष्यशृङ्गः मम क्रतुं मदीप्सितयागमाहरेत् कारयेत्। चो हेतौ ॥ ५ ॥

(और कहेंगे कि) हे धर्मात्मन्! मैं सन्तान रहित हूँ इसलिए मेरे सन्तान उत्पन्न होने और कुल की वृद्धि के लिए आप की आज्ञा पाकर शान्ता के पति ऋष्यशृङ्ग मेरा यज्ञ करावें ॥ ५ ॥

श्रुत्वा राज्ञोऽथ तद्वाक्यं मनसा च विचिन्त्य च।
प्रदास्यते पुत्रवन्तं शान्ताभर्तारमात्मवान् ॥ ६ ॥

श्रुत्वेति। राज्ञः दशरथस्य अथ मङ्गलस्वरूपं तत्प्रसिद्धं वाक्यं श्रुत्वा मनसा विचिन्त्य युक्तमेव याचते इति विचार्य चकारेण अतो दास्यामीति निश्चित्य पुत्रवन्तं जातपुत्रकम्। शान्ताभर्तारमात्मवान् परमबुद्धिमान् प्रदास्यते। पुत्रवन्तमित्यनेन 'जातपुत्रः कृष्णकेशोऽग्नीनादधीत' इति विधिबोधिताधिकारवत्ता सूचिता ॥ ६ ॥

तदनन्तर अङ्गराज राजा दशरथ का वचन सुनकर और मन में विचार कर शान्ता के पति श्रेष्ठ तथा पुत्रवान ऋष्यशृङ्ग को देंगे ॥ ६ ॥

प्रतिगृह्य च तं विप्रं स राजा विगतज्वरः।
आहरिष्यति तं यज्ञं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ७ ॥

प्रतीति। तं रोमपादसमर्पितं विप्रं प्रतिगृह्यच विगतज्वरः एतदगमनेनावश्यं पुत्रप्राकट्यं भवितेति निश्चयेन विगतो निवृत्तः ज्वरः पुत्रवियोगजनितसन्तापो यस्य स प्रसिद्धो राजा दशरथः प्रहृष्टेन हर्षविशिष्टेन अन्त-

रात्मना मनसा तमीप्सितं यज्ञमाहरिष्यति ऋषिणा साधयिष्यति। शब्द एवार्थे।। ७ ।।

वह राजा दशरथ उस ब्राह्मण को प्राप्त कर शोक रहित होकर प्रफुल्लि चित्त से वह यज्ञ करेंगे ।। ७ ।।

तं च राजा दशरथो यशस्कामः कृताञ्जलिः ।
ऋष्यश्रृङ्गं द्विजश्रेष्ठं वरयिष्यति धर्मवित् ।। ८ ।।
यज्ञार्थं प्रसवार्थं च स्वर्गार्थं च नरेश्वरः ।

तमिति । यशस्कामः ईश्वरोऽस्य पुत्रोऽस्ति इति इह लोकेऽपि प्रख्यात भिलाषी अत एव कृताञ्जलिः बद्धयुगलकरः धर्मवित्सकलधर्मस्य वेदि राजा दशरथः तं शान्तापतिं द्विजश्रेष्ठमृष्यश्रृङ्गं यथार्थं पुत्रेष्टिनिवृत्य प्रसवार्थमिष्टिफलीभूतस्वनित्यपुत्रप्राकट्यार्थं स्वर्गार्थं रावणोपद्रुतस्वर्गा स्वास्थ्यार्थं च वरयिष्यति ऋत्विक्त्वेन स्वीकरिष्यति ।। ८ ।।

यश की इच्छावाले तथा धर्म को जानने वाले राजा दशरथ यज्ञ कर सन्तान उत्पन्न होने और स्वर्गप्राप्ति के किए हाथ जोड़कर ब्राह्मणों में श्रेष्ठ ऋष्य श्रृङ्ग का वरण करेंगे ।। ८ ।।

लभते च स तं कामं द्विजमुख्याद्विशांपतिः ।। ९ ।।

लभत इति । स प्रसिद्धः विशांपतिः राजा दशरथः विप्रमुख्याद् ऋष्य श्रृङ्गात्तं स्वेप्सितं कामं लभते च प्राप्स्यत्येव । चशब्द एवार्थे ।। ९ ।।

और प्रजापालक वे महाराज अपने मनोरथ को उस ब्राह्मण श्रेष्ठ ऋष्यश्रृ से प्राप्त करेंगे ।। ९ ।।

पुत्राश्चास्य भविष्यन्ति चत्वारोऽमितविक्रमाः ।
वंशप्रतिष्ठानकराः सर्वभूतेषु विश्रुताः ।। १० ।।

ईप्सितं प्रकटयन्नाह—पुत्रा इति । अस्य महाराजाधिराजदशरथ अमितविक्रमाः अप्रमेयपराक्रमाः अत एव वंशप्रतिष्ठानकराः मनुवं प्रतिष्ठासंपादकाः अत एव सर्वलोकेषु विश्रुताः ख्याताः चत्वारः पु भविष्यन्त्येव ।। १० ।।

इस राजा के बड़े पराक्रमी, वंश की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले सब लोकों विख्यात चार पुत्र होंगे ।। १० ।।

एवं स देवप्रवरः पूर्वं कथितवान्कथाम् ।
सनत्कुमारो भगवान्पुरा देवयुगे प्रभुः ॥ ११ ॥

एवमिति । हे देव ! देवप्रवरः देवश्रेष्ठः भगवान् सकलविद्याविज्ञाता प्रभुः तत्त्वबोधनसमर्थः सः प्रसिद्धः सनत्कुमारः पुरायुगे सत्ययुगे पूर्वं युगप्रारम्भे एवमनेन प्रकारेण कथामुक्तवान् ॥ ११ ॥

इस प्रकार देवश्रेष्ठ, समर्थ, भगवान् सनत्कुमार ने पहिले सत्ययुग में कथा का वर्णन किया था ॥ ११ ॥

स त्वं पुरुषशार्दूल समानय सुमानथ सुसत्कृतम् ।
स्वयमेव महाराज गत्वा सबलवाहनः ॥ १२ ॥
[सुमन्तस्य वचः श्रुत्वा हृष्टो दशरथोऽभवत् ।]

स त्वमिति । हे पुरुषशार्दूल पुरुषसिंह राजेन्द्र सबलवाहनः राजपरिकरसहितः सः प्रसिद्धस्त्वं स्वयमेव गत्वा सुसत्कृतं तम् ऋष्यश्रृंगमानयैव । चशब्द एवार्थे ॥ १२ ॥

हे पुरुषसिंह ! हे महाराज ! इसलिए सेना और वाहनों के साथ स्वयं जाकर उत्तम सत्कार के साथ उनको ले आइये । सुमन्त का वचन सुनकर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए ॥ १२ ॥

अनुमान्य वसिष्ठं च सूतवाक्यं निशाम्य च ॥ १३ ॥
[वसिष्ठेनाभ्यनुज्ञातो राजा संपूर्णमानसः ।]
सान्तःपुरः सहामात्यः प्रययौ यत्र स द्विजः ।

अन्विति । सान्तःपुरः अन्तःपुरसहितः सहामात्यः अमात्यसहितः दशरथः सूतवाक्यं निशाम्य श्रावयित्वा वसिष्ठमनुमान्य च वसिष्ठसंमतिं लब्ध्वा चेत्यर्थः । यत्र यस्मिन्पुरे स द्विजः ऋष्यश्रृङ्गः तत्रैव प्रययौ एकश्चकार एवार्थे । सान्तःपुर इत्युक्त्या औत्सुक्याधिक्यं सूचितम् । वसिष्ठमनुमान्येत्यनेन राज्ञो मर्यादापालकत्वं व्यक्तम् । वसिष्ठस्य संमतिदानेन त्रिकालज्ञत्वं व्यक्तम् ॥ १३ ॥

सारथी सुमन्त्र के वचन सुनाकर, वसिष्ठ से सम्मति लेकर वे रानियों और मन्त्रियों के साथ जहाँ वह ब्राह्मण ऋष्यश्रृङ्ग रहता था वहाँ गये ॥ १३ ॥

वनानि सरितश्चैव व्यतिक्रम्य शनैः शनैः ॥ १४ ॥
अभिचक्राम तं देशं यत्र वै मुनिपुंगवः ।

वनानीति। वनानि सरितश्च शनैःशनैः व्यतिक्रम्य पारं प्राप्य यत्र मुनिपुङ्गवः ऋष्यशृङ्गोऽस्ति तं देशमभिचक्राम ॥ १४ ॥

धीरे धीरे वे नदी और वनों को पार करते हुए जहाँ वह मुनिश्रेष्ठ रहते थे उस स्थान पर पहुँच गये ॥ २४ ॥

आसाद्य तं द्विजश्रेष्ठं रोमपादसमीपगम् ॥ १५ ॥
ऋषिपुत्रं ददर्शाथो दीप्यमानमिवानलम् ।

आसाद्येति। तमृष्यधिष्ठितदेशमासाद्य प्राप्य अथो अनन्तरम् रोमपादसमीपगमनमिव दीप्यमानं द्विजश्रेष्ठमृषिपुत्रं ददर्श ॥ १५ ॥

वहाँ पहुँचकर राजा ने रोमपाद के समीप बैठे हुए ऋषि के पुत्र ब्राह्मणों में श्रेष्ठ तथा अग्नि के समान दीप्ति पूर्ण ऋष्यशृङ्ग को देखा ॥ १५ ॥

ततो राजा यथायोग्यं पूजां चक्रे विशेषतः ॥ १६ ॥
सखित्वात्तस्य वै राज्ञः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।

तत इति। ततः तद्दर्शनानन्तरं राजा रोमपादः सखित्वात्सखित्वरूपहेतोः प्रहृष्टेन अतिहर्षं प्राप्तेन अन्तरात्मना मनसा तस्य प्रसिद्धस्य राज्ञो दशरथस्य वैशब्देन तदन्तःपुरादिपरिकरस्य यथान्यायं यथाक्रमं विशेषतः पूजां चक्रे ॥ १६ ॥

तदनन्तर राजा रोमपाद ने मित्रता होने के कारण प्रसन्न मन से राजा दशरथ की विधिपूर्वक विशेष पूजा की ॥ १६ ॥

रोमपादेन चाख्यातमृषिपुत्राय धीमते ॥ १७ ॥
सख्यं संबन्धकं चैव तदा तं प्रत्यपूजयत् ।

रोमपादेनेति। धीमते परमबुद्धिविशिष्टाय ऋषिपुत्राय ऋषिपुत्रं बोधयितुं सख्यम् आत्मदशरथमैत्रीं संबन्धकं शान्ताजनकत्वेन तच्छ्वशुरत्वं च रोमपादेन आख्यातं वर्णितम्। चकारेण पुत्रीकरणार्थमनपत्याय याचते मह्यं दशरथेन स्वपुत्री शान्ता दत्तेत्यपि वर्णितम् तदा तस्मिन्काले एव तं दशरथं प्रत्यपूजयत्। ऋष्यशृङ्ग इति शेषः। ऋषिपुत्रायेत्यत्र चतुर्थी 'क्रियार्थोपपदस्य०' इति सूत्रविहिता। 'अनेन मेऽनपत्याय दत्तेयं वरवर्णिनी। याचते पुत्रतुल्यैषा शान्ता प्रियतरात्मजा। सोऽयं ते श्वशुरो ब्रह्मन् यथैवाहं तथा नृप' इति पौराणिकी गाथा ॥ १७ ॥

रोमपाद ने बुद्धिमान ऋषिपुत्र से अपनी मित्रता और सम्बन्ध बतलाया जिससे मुनि ने राजा दशरथ का सत्कार किया ॥ १७ ॥[1]

एवं सुसत्कृतस्तेन सहोषित्वा नरर्षभः ॥ १८ ॥
सप्ताष्टदिवसान्राजा राजानमिदमब्रवीत् ।

एवमिति । एवमनेन प्रकारेण सुसत्कृतः सत्कारं प्राप्तः नरर्षभः राजा दशरथः तेन रोमपादेन सह सप्ताष्टदिवसान् पञ्चदशदिनानि उषित्वा राजानं रोमपादमिदं वक्ष्यमाणं वचः अब्रवीत् । सप्ताष्टदिवसानित्यत्र द्वितीया 'कालाध्वनोः०' इति सूत्रविहिता । सप्ताष्टेतिलोकवचनपरिपाटी सङ्ख्यानियमोपेक्षाकृता ॥ १८ ॥

इस प्रकार नरश्रेष्ठ राजा दशरथ सत्कार पाते हुए रोमपाद के साथ सात आठ दिन रहे और राजा रोमपाद से बोले ॥ १८ ॥

शान्ता तव सुता राजन्सह भर्त्रा विशांपते ॥ १९ ॥
मदीयं नगरं यातु कार्यं हि महदुद्यतम् ।

तद्वचनमेवाह—शान्तेति । हे राजन् ! मद्विषयकानुरागविशिष्ट विशाम्पते प्रजाधीश भर्त्रा स्वामिना सह तव सुता शान्ता मदीयं नगरं यातु प्राप्नोतु उद्यतम् उत् उत्कृष्टः यतः प्रयत्नो यस्मिस्तन्महत् उत्कृष्टं यागरूपं वस्तु कार्यम् । अनेन निष्पाद्यं हि अस्ति ॥ १९ ॥

हे राजन् ! हे प्रजानाथ ! तुम्हारी पुत्री शान्ता अपने पति के साथ हमारे नगर को चलें, वहाँ बड़ा कार्य आकर उपस्थित हुआ है ॥ १९ ॥

तथेति राजा संश्रुत्य गमनं तस्य धीमतः ॥ २० ॥
उवाच वचनं विप्रं गच्छ त्वं सह भार्यया ।

तथेति । राजा रोमपादः धीमतः तस्य ऋष्यश्रृङ्गस्य गमनं तथेति संश्रुत्य अयमवश्यं यास्यतीति प्रतिज्ञाय त्वं सह भार्यया गच्छेति वचनं विप्रमुवाच ॥ २० ॥

राजा रोमपाद ने बुद्धिमान ऋष्यश्रृङ्ग के जाने के लिए बहुत अच्छा कहकर प्रतिज्ञा की और ब्राह्मण से बोले कि 'तुम अपनी पत्नी के साथ जाओ' ॥ २० ॥

---

१. शान्ता दशरथ की कन्या थी जिसे उन्होंने राजा रोमपाद को अपत्य के रूप में दिया था । इस प्रकार शान्ता के जन्मदाता पिता को पाकर ऋष्यश्रृङ्ग जीने श्वशुर को विधि से सत्कृत किया ।

ऋषिपुत्रः प्रतिश्रुत्य तथेत्याह नृपं तदा ॥ २१ ॥
स नृपेणाभ्यनुज्ञातः प्रययौ सह भार्यया ।

ऋषीति । ऋषिपुत्रः ऋष्यश्रृगः तदा तस्मिन्काले प्रतिश्रुत्यरोम-पादोक्तिमाकर्ण्य नृपं रोमपादं तथा इत्याह । अत एव नृपेणाभ्यनुज्ञात स ऋषिपुत्रः भार्यया सह प्रययौ ॥ २१ ॥

ऋषिपुत्र ने जाना स्वीकार किया और राजा को स्वीकृति दे दी तथा राजा रोमपाद की आज्ञा ले पत्नी के साथ प्रस्थान किया ॥ २१ ॥

तावन्योन्याञ्जलिं कृत्वा स्नेहात्संश्लिष्य चोरसा ॥ २२ ॥
ननन्दतुर्दशरथो रोमपादश्च वीर्यवान् ।

ताविति । वीर्यवान् दशरथो रोमपादश्च तौ प्रसिद्धौ द्वौ स्नेहात्प्रेमा-धिक्यात् अन्योन्याञ्जलिं कृत्वा परस्पर करेण करं गृहीत्वा उरसा संश्लिष्य च ननन्दतुः परमानन्दं प्रापतुः ॥ २२ ॥

बलवान राजा दशरथ और राजा रोमपाद ने परस्पर एक दूसरे से हाथ जोड़ा, स्नेह से छाती मिलाकर आलिङ्गन किया और आनन्दित हुए ॥ २२ ॥

ततः सुहृदमापृच्छ्य प्रस्थितो रघुनन्दनः ॥ २३ ॥
पौरेषु प्रेषयामास दूतान्वै शीघ्रगामिनः ।

तत इति । ततः प्रमोदप्राप्त्यनन्तरं सुहृदं रोमपादमापृच्छ्य तदनु-मतिं संगृह्य प्रस्थितः कृतगमनारम्भः रघुनन्दनो रघुवंशवर्द्धनो दशरथः शीघ्रगामिन एव दूतान् पौरेभ्य अयोध्यापुरोद्भवान् बोधयितुं प्रेषया-मास । वैशब्द एवार्थे ॥ २३ ॥

तब मित्र से पूछकर रघुवंश को आनन्दित करनेवाले महाराज दशरथ ने प्रस्थान करने के अनन्तर शीघ्र चलने वाले दूतों को अयोध्यापुरी में रहने वालों को सूचना देने के लिए भेज दिया ॥ २३ ॥

क्रियतां नगरं सर्वं क्षिप्रमेव स्वलंकृतम् ॥ २४ ॥
धूपितं सिक्तसंमृष्टं पताकाभिरलंकृतम् ।

दूतद्वारा यद्बोधितं तदाह—क्रियतामिति । स्वलंकृतं शोभनालङ्कार-विशिष्टं धूपितं सिक्तसंमृष्टं पूर्वं सिक्तं पश्चात्संमृष्टं पूर्वकालैकेत्यनेन समासः स्वलंकृतं पताकाभिः अलंकृतं क्षिप्रं शीघ्रमेव सर्वं नगरं क्रियताम् ॥२४॥

कि समस्त नगर को शीघ्र ही भली भांति अलंकृत किया जाय तथा धूप देकर, सींच कर, पोंछ कर, पताकाओं से भी अलंकृत किया जाय ॥ २४ ॥

ततः प्रहृष्टाः पौरास्ते श्रुत्वा राजानमागतम् ॥ २५ ॥
तथा चक्रुश्च तत्सर्वं राज्ञा यत्प्रेषितं तदा ।

तत इति । ततः दूतोक्तिश्रवणानन्तरमागतप्रायं राजानं श्रुत्वा प्रहृष्टा अतिहर्षं प्राप्तास्ते पौरा यत् यदर्थं राज्ञा प्रेषितं तत्तथा तेन प्रकारेण तदेव प्रतिचक्रुः । चशब्द एवार्थे ॥ २५ ॥

तदनन्तर राजा के आगमन का समाचार सुनकर पौर लोग बड़े प्रसन्न हुए और राजा ने जैसा आदेश देकर दूतों को भेजा था वैसा सब कुछ अलंकृत किया ॥ २५ ॥

ततः स्वलंकृतं राजा नगरं प्रविवेश ह ॥ २६ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्ह्रादैः पुरस्कृत्वा द्विजर्षभम् ।

तत इति । ततः अयोध्यानिकटप्राप्त्यनन्तरं राजा दशरथः स्वलंकृतं नगरं शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः शङ्खादिघोषैः द्विजर्षभमृष्यश्रृङ्गं पुरस्कृत्य प्रविवेश । ह इति हर्षे ॥ २६ ॥

तदनन्तर भलीभाँति सजाये हुए नगर में राजा ने शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजों की ध्वनि के साथ श्रेष्ठ ब्राह्मण को आगे लेकर प्रवेश किया ॥ २६ ॥

ततः प्रमुदिताः सर्वे दृष्ट्वा वै नागरा द्विजम् ॥ २७ ॥
प्रवेश्यमानं सत्कृत्य नरेन्द्रेणेन्द्रकर्मणा ।
यथा दिवि सुरेन्द्रेण सहस्राक्षेण काश्यपम् ॥ २८ ॥

तत इति । ततः नगरप्रवेशानन्तरं सर्वे पौराः इन्द्रकर्मणा इन्द्रसाहाय्यकर्त्रा नरेन्द्रेण राजा दशरथेन दिवि सुरेन्द्रेण सहस्राक्षेण काश्यपं यथा सत्कृत्य अन्तःपुरं प्रवेश्यमानं तं द्विजमृष्यश्रृङ्गं प्रहृष्टाः आसन्निति शेषः ॥ २७–२८ ॥

इसके बाद समस्त नगरवासी प्रसन्न होकर और इन्द्र के समान कर्म करने वाले दशरथ के द्वारा सत्कार पाकर प्रविष्ट होने वाले उस ब्राह्मण को स्वर्गलोक में सहस्र नेत्र वाले इन्द्र से सत्कृत होकर स्वर्ग में प्रविष्ट होने वाले काश्यप (वामन) की भाँति देखकर प्रसन्न हो उठे ॥ २७–२८ ॥

अन्तःपुरं प्रवेश्यैनं पूजां कृत्वा च शास्त्रतः ।
कृतकृत्यं तदात्मानं मेने तस्योपवाहनात् ॥ २९ ॥

अन्तरिति । तदा तस्मिन्काले एनमृष्यश्रृङ्गमंतः प्रवेश्य विधानतः पूजां कृत्वा तस्य ऋषेरुपवाहनात् स्वसमीपप्रापणादात्मानं कृतकृत्यं कृतार्थं मेने । राजेति शेषः ॥ २९ ॥

इसको रनिवास में ले जाकर विधिपूर्वक पूजा करके उनके ले आने मात्र से दशरथ ने अपने को कृतकृत्य माना ॥ २९ ॥

अन्तःपुराणि सर्वाणि शान्तां दृष्ट्वा तथागताम् ।
सह भर्त्रा विशालाक्षीं प्रीत्यानन्दमुपागमन् ॥ ३० ॥

अन्तरिति । विशालाक्षीमायतनेत्रां भर्त्रा सह तथा तेन प्रकारेण आगतां शान्तां प्रीत्या दृष्ट्वा सर्वाणि अन्तःपुराणि आनन्दमुपागमन् प्रापुः ॥३०॥

राजा दशरथ के रनिवास की समस्त रानियाँ बड़े-बड़े नेत्रवाली तथा अपने पति के साथ आयी हुई शान्ता को देख कर प्रीति से आनन्दित हो उठी ॥ ३० ॥

पूज्यमाना तु ताभिः सा राज्ञा चैव विशेषतः ।
उवास तत्र सुखिता कंचित्कालं सहद्विजा ॥ ३१ ॥

पूज्यमानेति । ताभिः राजपत्नीभिः राज्ञा च विशेषतः पूज्यमानैव सहद्विजा पतिसहिता अतः सुखिता परमसुखं प्राप्ता सा शान्ता तत्रान्तःपुरे कंचित्कालमुवास । सहद्विजा इत्यनेन पितृगृहे स्त्रियाः प्राधान्यं भवतीति व्यवहारः सूचितः ॥ ३१ ॥

वहाँ रानियों तथा राजा द्वारा विशेष रूप से पूजित होकर शान्ता ने ब्राह्मण ऋष्यश्रृङ्ग के साथ सुखपूर्वक कुछ दिन निवास किया ॥ ३१ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदयात्रायां दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः

ततः काले बहुतिथे कस्मिंश्चित्सुमनोहरे।
वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत् ॥ १ ॥

अश्वमेधोपक्रममाह—तत इत्यादिभिः। ततः ऋष्यश्रृङ्गस्य पुरप्राप्त्यनन्तरं बहुतिथेऽनल्पे काले गते सतीति शेषः। सुमनोहरे दोषोपद्रवादि-राहित्येन समुचिततिथ्यादिप्राप्तत्वेन रमणीये कस्मिंश्चिद्विलक्षणे वसन्ते समनुप्राप्ते सति राज्ञो दशरथस्य मनो यष्टुं कर्तुमभवत् प्रावर्तत ॥१॥

तब कुछ काल बीतने के बाद मन को बुझाने वाले वसन्त काल के आने पर राजा दशरथ के मन में यज्ञ करने का विचार हुआ ॥ १ ॥

ततः प्रणम्य शिरसा तं विप्रं देववर्णिनम्।
यज्ञाय वरयामास संतानार्थं कुलस्य च ॥ २ ॥

तत इति। ततः यागानुकूलमनस्कत्वानन्तर देववर्णिनं दिव्यतेजसं तं विप्रं ऋष्यश्रृङ्गं शिरसा प्रणम्य कुलस्य सन्तानार्थमेव यज्ञाय यज्ञं प्रवर्तयितुं वरयामास ब्रह्मत्वेन स्वीचकार चशब्द एवार्थे ॥ २ ॥

तदनन्तर देवतुल्य तेजस्वी उस ब्राह्मण ऋष्यश्रृङ्ग को शिर से वन्दना करके कुल और सन्तान की वृद्धि के लिए होने वाले यज्ञ में उनका वरण किया ॥ २ ॥

तथेति च स राजानमुवाच वसुधाधिपम्।
संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम् ॥ ३ ॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्।

तथेति। स ऋष्यश्रृङ्गः वसुधाधिपं सार्वभौमं राजानं दशरथं तथा यागानुकूलमिति वक्ष्यमाणं वचः उवाच। वचनमेवाह—सम्भाराः सम्भ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम्। सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयतामिति ॥ ३ ॥

पृथ्वी के पालक और प्रजा का अनुरञ्जन करने वाले राजा दशरथ से ऋष्यश्रृङ्ग ने 'बहुत अच्छा कहकर आगे कहा कि यज्ञ की सामग्री इकट्ठी की

जाय, घोड़ा छोड़ा जाय और सरयू के उत्तर तट पर यज्ञभूमि (यज्ञशाला) बनायी जाय ॥ ६ ॥

ततोऽब्रवीन्नृपो वाक्यं ब्राह्मणान्वेदपारगान् ॥ ४ ॥
सुमन्त्रावाहय क्षिप्रमृत्विजो ब्रह्मवादिनः ।

तत इति । ततः ऋष्याज्ञापनानन्तरं राजा दशरथो मन्त्रिसत्तमं सुमंत्रं वाक्यमब्रवीत् । वाक्यमेवाह—हे सुमन्त्र ! ब्रह्मवादिनो वेदज्ञान् ऋत्विजः वेदपारगान् ब्राह्मणान् क्षिप्रं शीघ्रमावाहय मत्समीपं प्रापय ॥ ४ ॥

यह सुनकर राजा ने सुमन्त्र से कहा कि हे सुमन्त्र ! वेदवेत्ता, वेद के रहस्यों को जानने वाले ब्राह्मणों, ऋत्विजों को शीघ्र बुलाइए ॥ ४ ॥

सुयज्ञं वामदेवं च जाबालिमथ काश्यपम् ॥ ५ ॥
पुरोहितं वसिष्ठं च ये चान्ये द्विजसत्तमाः ।
ततः सुमन्त्रस्त्वरितं गत्वा त्वरितविक्रमः ॥ ६ ॥
समानयत्स तान्सर्वान्समस्तान्वेदपारगान् ।
तान्पूजयित्वा धर्मात्मा राजा दशरथस्तदा ॥ ७ ॥
धर्मार्थसहितं युक्तं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ।
मम तातप्यमानस्य पुत्रार्थं नास्ति वै सुखम् ॥ ८ ॥
पुत्रार्थं हयमेधेन यक्ष्यामीति मतिर्मम ।
तदहं यष्टुमिच्छामि हयमेधेन कर्मणा ॥ ९ ॥

सुयज्ञमिति । एतदारभ्य हयमेधेन कर्मणेत्येतत्पर्यन्तं श्लोकसार्द्धचतुष्टयं पूर्वमपीत्थं पठितमिति तद्व्याख्यानमेवैतद्व्याख्यानं बोध्यम् ॥५-९॥

सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, पुरोहित, वसिष्ठ तथा अन्य भी जो श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं उन्हें भी बुलाइए ।

इसके बाद शीघ्रगामी सुमन्त्र तत्काल जाकर उन सब समस्त वेदों के पारगामी ब्राह्मणों को बुला लाया ।

धर्मात्मा राजा दशरथ तब उन सबकी पूजा करके धर्म और अर्थ से युक्त, उचित तथा प्रिय वचन बोले ।

पुत्र के लिए संतप्त मुझे कुछ भी सुख नहीं है । अतः पुत्र के लिए मैं अश्वमेध यज्ञ करूंगा यह मेरा विचार था इस लिए अब मैं अश्वमेध यज्ञ करना चाहता हूँ ॥ ५-९ ॥

ऋषिपुत्रप्रभावेण कामान्प्राप्स्यामि चाप्यहम्।
ततः साध्विति तद्वाक्यं ब्राह्मणाः प्रत्यपूजयन् ॥ १० ॥
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे पार्थिवस्य मुखाच्च्युतम्।

ऋषीति। ऋषिपुत्रस्य ऋष्यशृङ्गस्य प्रभावेण रामसाक्षत्कारजनित-तेजसा अहं कामान्प्राप्स्याम्येव। अपिना देवकार्यसिद्धिश्च भविष्यति चशब्द एवार्थे। तत इति। ततः राजवाक्यश्रवणानन्तरं पार्थिवस्य राज्ञः मुखाच्च्युतं तत्प्रसिद्धं वाक्यं वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ब्राह्मणाः साधु शोभन-मिति प्रत्यपूजयन् ॥ १० ॥

ऋषि पुत्र ऋष्यशृङ्ग के प्रभाव से मैं अपनी अभिलाषा की पूर्ति प्राप्त करूँगा। इसके बाद वशिष्ठ प्रभृति ब्राह्मणों ने राजा के मुख से निकले उस वचन की 'साधु-साधु' ऐसा कहकर बड़ी प्रशंसा की ॥ १० ॥

ऋष्यशृङ्गपुरोगाश्च प्रत्यूचुर्नृपतिं तदा ॥ ११ ॥
संभाराः संभ्रियन्तां ते तुरगश्च विमुच्यताम्।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम् ॥ १२ ॥
सर्वथा प्राप्स्यसे पुत्रांश्चतुरोऽमितविक्रमान्।
यस्य ते धार्मिकी बुद्धिरियं पुत्रार्थमागता ॥ १३ ॥

ऋष्येति। तदा तस्मिन्काले ऋष्यशृङ्गपुरोगा ऋष्यशृङ्गप्रभृतयः नृपतिं राजानं प्रत्यूचुः। तद्वचनमेवाह सम्भारा इत्यादिभिः ॥ ११–१३ ॥

ऋष्यशृङ्ग को आगे करके चलने वाले ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि सामग्री इकट्ठी कीजिए, अश्व छुड़वाइए और सरयू नदी के उत्तर तीर में यज्ञ-शाला बनवाइए ॥ ११–१२ ॥

निःसन्देह आपको बड़े पराक्रमी चार पुत्र पैदा होंगे क्योंकि आपकी यह पुत्र की कामना वाली धार्मिक बुद्धि उत्पन्न हुई है ॥ १३ ॥

ततः प्रीतोऽभवद्राजा श्रुत्वा तु द्विजभाषितम्।
अमात्यानब्रवीद्राजा हर्षेणेदं शुभाक्षरम् ॥ १४ ॥
गुरूणां वचनाच्छीघ्रं संभाराः संभ्रियन्तु मे।
समर्थाधिष्ठितश्चाश्वः सोपाध्यायो विमुच्यताम् ॥ १५ ॥
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे यज्ञभूमिर्विधीयताम्।
शान्तयश्चाभिवर्धन्तां यथाकल्पं यथाविधि ॥ १६ ॥

शक्यः कर्तुमयं यज्ञः सर्वेणापि महीक्षिता ।
नापराधो भवेत्कष्टो यद्यस्मिन्क्रतुसत्तमे ॥ १७ ॥
छिद्रं हि मृगयन्त्येते विद्वांसो ब्रह्मराक्षसाः ।
विधिहीनस्य यज्ञस्य सद्यः कर्ता विनश्यति ॥ १८ ॥
तद्यथा विधिपूर्वं मे क्रतुरेष समाप्यते ।
तथा विधानं क्रियतां समर्थाः करणेष्विह । १९ ॥
तथेति च ततः सर्वे मन्त्रिणः प्रत्यपूजयन् ।
पार्थिवेन्द्रस्य तद्वाक्यं यथाज्ञप्तमकुर्वत ॥ २० ॥

तत इति। द्विजभाषितं श्रुतवान् द्विजभाषितश्रवणविशिष्टो राजा प्रीतोऽभवत् । ततः प्रीतिप्राप्त्यनन्तरं राजा शुभाक्षरं मधुराक्षरविशिष्टमिदं वचनं हर्षेण अमात्यान् अब्रवीत् । इतः प्रभृति षट् श्लोका व्याख्यातार्थाः ॥ १४–२० ॥

तदनन्तर ब्राह्मणों के इन शब्दों को सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और हर्ष पूर्ण होकर मन्त्रियों से इन शुभ अक्षरों वाले वचन बोला ॥ १४ ॥

मेरे गुरुओं के कहने से यज्ञ की सामग्री शीघ्र पूर्ण की जाय । वीर पुरुषों के संरक्षण युक्त और पुरोहितों के साथ यज्ञीय अश्व छोड़ दिया जाय ॥ १५ ॥

सरयू के उत्तर तट पर यज्ञशाला बनायी जाय और कल्प सूत्रों तथा अश्वमेध की पद्धति के अनुसार शान्ति कराई जाय ॥ १६ ॥

इस यज्ञ को समस्त राजा कर डालते, यदि उस उत्तम यज्ञ में कष्टप्रद कोई अपराध न हो तो ॥ १७ ॥

क्योंकि यज्ञ के महत्त्व को जानने वाले ब्रह्मराक्षस इनमें छिद्र (त्रुटि) ही देखते हैं और विघ्न युक्त यज्ञ का कर्ता शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १८ ॥

तो जैसे यह मेरा अश्वमेध यज्ञ विधिपूर्वक पूर्ण हो जाय वैसा विधान कीजिए क्योंकि आप सब साधनों से सम्पन्न हैं ॥ १९ ॥

तदनन्तर मन्त्रियों ने 'बहुत अच्छा' कहकर राजा के आदेश का आदर किया और पृथ्वी के राजा दशरथ के आदेश का यथावत् पालन किया ॥ २० ॥

ततो द्विजास्ते धर्मज्ञमस्तुवन्पार्थिवर्षभम् ।
अनुज्ञातास्ततः सर्वे पुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ २१ ॥

तत इति। धर्मज्ञं पार्थिवर्षभं राजराजं ते तत्रागताः द्विजाः ततः अतिपुण्यसम्पादकधर्माचरणादस्तुवन् प्राशंसन् ततः प्रशंसाकरणानन्तरमनुज्ञाताः राजाज्ञां प्राप्ताः सर्वे द्विजाः यथागतं पुनर्जग्मुः स्वस्वाश्रममिति शेषः ॥ २१ ॥

तदनन्तर धर्म के मर्म को जानने वाले श्रेष्ठ उस राजा की ब्राह्मणों ने स्तुति की और उनसे आज्ञा प्राप्त कर पुनः अपने अपने स्थान में चले गए ॥ २१ ॥

गतानां तेषु विप्रेषु मन्त्रिणस्तान्नराधिपः।
विसर्जयित्वा स्वं वेश्म प्रविवेश महामतिः ॥ २२ ॥

गतानामिति। द्विजातीनां गतानां द्विजातिषु गतेषु सत्सु तानागतान् मन्त्रिणः विसर्जयित्वा संप्रेष्य ल्यबभाव आर्षः। महामतिः नराधिपः स्वं वेश्म अन्तःपुरं प्रविवेश सप्तम्यर्थे षष्ठी ॥ २२ ॥

उन ब्राह्मणों के चले जाने पर बड़ी बुद्धि वाले राजा ने मन्त्रियों को विदा करके अपने घर में प्रवेश किया ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायामेकादशः सर्गः ॥ ११ ॥



द्वादशः सर्गः

पुनः प्राप्ते वसन्ते तु पूर्णः संवत्सरोऽभवत् ।
प्रसवार्थं ततो यष्टुं हयमेधेन वीर्यवान् ॥ १ ॥

पुनः वसन्ते सम्प्राप्ते संवत्सरो पूर्णः अभवत् ततः वीर्यवान् महापराक्रमविशिष्टः राजा दशरथ हयमेधेन अश्वमेधेन प्रसवार्थं सन्तानार्थं यष्टुं वशिष्ठसमीपं गतः इति शेषः ॥ १ ॥

दूसरा वसन्त समय आ जाने पर जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तब वीर राजा दशरथ ने पुत्रोत्पत्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ करने के लिए ॥ १ ॥

अभिवाद्य वसिष्ठं च न्यायतः प्रतिपूज्य च ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं प्रसवार्थं द्विजोत्तमम् ॥ २ ॥

वशिष्ठं अभिवाद्य नमस्कृत्य न्यायतः यथाविधि प्रतिपूज्य च प्रसवार्थं स्वपुत्रप्राकट्यप्रयोजकं प्रश्रितं प्रणययुक्तं वाक्यं द्विजोत्तमं वशिष्ठमब्रवीत् ॥ २ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण वशिष्ठ को प्रणाम किया और विधिपूर्वक पूजा करके बड़ी नम्रता से युक्त वचन पुत्रोत्पत्ति के लिए बोले ॥ २ ॥

यज्ञो मे क्रियतां ब्रह्मन्यथोक्तं मुनिपुंगव ।
यथा न विघ्नाः क्रियन्ते यज्ञाङ्गेषु विधीयताम् ॥ ३ ॥

हे मुनिपुंगव मुनिश्रेष्ठ यथोक्तं यथाशास्त्र मे मम यज्ञः हे ब्रह्मन् क्रियताम् निष्पाद्यताम् यथा येन प्रकारेण यज्ञाङ्गेषु विघ्नाः न क्रियन्ते तथा विधीयताम् ॥ ३ ॥

कि हे मुनिश्रेष्ठ ! मेरा विधि के अनुसार यज्ञ कराइए और ऐसा प्रयत्न कीजिए कि यज्ञाङ्गों में कोई विघ्न न हो ॥ ३ ॥

भवान् स्निग्धः सुहृन्मह्यं गुरुश्च परमो महान् ।
वोढव्यो भवता चैव भारो यज्ञस्य चोद्यतः ॥ ४ ॥

स्निग्धः स्नेहविशिष्टः अत एव सुहृत् मह्यं मम परम उत्कृष्टो गुरुः अत

एव महान् सर्वपूज्यः भवान् एव उद्यतः प्राप्तः यज्ञस्य अश्वमेधाख्यस्य भारः भवतैव वोढव्यः वोढुमर्हः ॥ ४ ॥

आप मेरे बड़े प्रेमी मित्र और परम महान् गुरु भी हैं। इसलिए इस यज्ञ का उपस्थित बड़ा भार आप को ही धारण करने योग्य ॥ ४ ॥

तथेति च स राजानमब्रवीद्द्विजसत्तमः ।
करिष्ये सर्वमेवैतद्भवता यत्समर्थितम् ॥ ५ ॥

भवता यत् एतत् समर्थितम् सम्यक् प्रार्थितम तत् सर्वं तथैव करिष्ये इति राजानम् स द्विजोत्तमः वशिष्ठः अब्रवीत् ॥ ५ ॥

ब्राह्मण श्रेष्ठ वशिष्ठ ने राजा से कहा कि 'बहुत अच्छा' जैसा आपने कहा है सब वैसा ही करूँगा ॥ ५ ॥

ततोऽब्रवीद्द्विजान्वृद्धान्यज्ञकर्मसु निष्ठितान् ।
स्थापत्ये निष्ठितांश्चैव वृद्धान्परमधार्मिकान् ॥ ६ ॥

ततः यज्ञभारस्वीकारानन्तरं यज्ञकर्मसु निष्ठितान् प्रवीणान् वृद्धान् बहुज्ञान् द्विजान् ब्राह्मणान् परमधार्मिकांश्च वृद्धान् लोकव्यवहारद्रष्टॄन् स्थापत्ये निष्ठितांश्चैव अब्रवीत् ॥ ६ ॥

तदनन्तर यज्ञकर्म के पारङ्गत विद्वान् वृद्ध ब्राह्मणों से बोले और रथकार (बढ़ई) के कार्य में निपुण परम धार्मिक वृद्धों से बोले ॥ ६ ॥

कर्मान्तिकाञ्शिल्पकारान्वर्धकीन्खनकानपि ।
गणकाञ्शिल्पिनश्चैव तथैव नटनर्तकान् ॥ ७ ॥
तथा शुचीञ्शास्त्रविदः पुरुषान्सुबहुश्रुतान् ।
यज्ञकर्म समीहन्तां भवन्तो राजशासनात् ॥ ८ ॥

कर्मान्तिकान् आसमाप्ति कर्मनिर्वाहकान् शिल्पकारान् वर्धकीन् यूपादिनिर्माणकर्तॄंतक्षणः (बढ़ई) इति भाषायाम् खनकान् गणकान् ज्योतिषिकान् शिल्पिनः चर्मकारादीन् नटनर्तकान् रसाभिनयभावाभिनय-कर्तॄन् शुचीन् शुद्धान् शास्त्रविदः यागप्रतिपादकशास्त्रेषु निपुणान् बहु-श्रुतान् बहुज्ञान् पुरुषान् भवन्तः राजशासनात् राज्ञः आदेशात् यज्ञकर्म निर्वर्त्तयितुम् इति शेषः समीहन्ताम् व्याप्रियन्ताम् ॥ ७-८ ॥

वृद्ध राजगीरों, सेवकों, ईंट आदि बनाने वालों, खाता खोदने वालों, ज्योति-षियों, शिल्पियों, नटों, नर्तकों और शास्त्रों को जानने वालों, शुद्ध अन्तःकरणों

वाले विद्वानों, बहुश्रुतों से कहा कि राजा की आज्ञा से आप सब यज्ञ
कार्य करें ॥ ७-८ ॥

इष्टका बहुसाहस्री शीघ्रमानीयतामिति ।
उपकार्याः क्रियन्तां च राज्ञो बहुगुणान्विताः ॥ ९ ॥

बहुसाहस्री इष्टका शीघ्रमानीयतां बहुगुणान्विताः राज्ञः योग्य
उपकार्याः राजसद्मानि क्रियन्ताम् ॥ ९ ॥

अनेक सहस्र ईटें शीघ्र लाई जाँय, अनेक प्रकार के उपयोग के योग्य राज
भवन बनाये जाँय ॥ ९ ॥

ब्राह्मणावसथाश्चैव कर्त्तव्याः शतशः शुभाः ।
भक्ष्यान्नपानैर्बहुभिः समुपेताः सुनिष्ठिताः ॥ १० ॥

शतशः शुभाः ब्राह्मणावसथाः चैव ब्राह्मणगृहाणि च, बहुभिः भक्ष्यान्न
पानैः समुपेताः सुनिष्ठिताः परिपूर्णाः कर्तव्याः ॥ १० ॥

भक्ष्य अन्नों, और अनेक प्रकार के पेय पदार्थों से युक्त और पूर्ण, शोभायमान
सैकड़ों की संख्या में ब्राह्मणों के आवास बनाये जाँय ॥ १० ॥

तथा पौरजनस्यापि कर्तव्याश्च सुविस्तराः ।
आगतानां सुदूराच्च पार्थिवानां पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥

तथा पौरजनस्यापि सुदूराच्च आगतानाम् पार्थिवानाम् पृथक् पृथक्
सुविस्तारा: बहुविस्तारयुक्ताः आवासाः कर्तव्या इति शेषः ॥ ११ ॥

इसी प्रकार पौरजनों के लिए बड़े विस्तार में आवास बनाये जाँय, और बड़े
दूर से आए हुए नरेशों के लिए अलग अलग आवासगृह बनाया जाय ॥ ११ ॥

वाजिवारणशालाश्च तथा शय्यागृहाणि च ।
भटानां महदावासा वैदेशिकनिवासिनाम् ॥ १२ ॥

तथा वाजिवारणशालाः वाजिशाला गजशालाश्च शय्यागृहाणि च
वैदेशिकनिवासिनाम् भटानाम् महदावासाः कर्तव्याः ॥ १२ ॥

घोड़े और हाथियों की शालायें, शयनगृह, विदेशी सैनिकों के लिए विशाल
दूतावास-भवन बनाये जाँय ॥ १२ ॥

आवासा बहुभक्ष्या वै सर्वकामैरुपस्थिताः ।
तथा पौरजनस्यापि जनस्य बहुशोभनम् ॥ १३ ॥

तथा पौरजनस्यापि सर्वकामैरुपस्थिताः बहुभक्ष्याः बहुभक्ष्यपदार्थ

युक्ताः जनस्य लोकस्य बहुशोभनाः चित्ताकर्षकाः आवासाः कर्तव्या वै निश्चयेन ।। १३ ।।

इन आवासों में अनेक प्रकार की भक्ष्य-सामग्री रक्खी जाय, जो सब की रुचि के अनुसार हो। पुरजनों के लिए भी जो आवास-भवन आदि हों वे भी अच्छी प्रकार सजाये जाँय ।। १३ ।।

दातव्यमन्नं विधिवत्सत्कृत्य न तु लीलया।
सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः ।। १४ ।।

अन्नं विधिवत् यथाविधि सत्कृत्य दातव्यं देयं लीलया अनादरेण तु न देयम् सुसत्कृताः सर्वे वर्णाः यथा पूजां प्राप्नुवन्ति पूजां मन्यन्ते तथा कार्या इति शेषः ।। १४ ।।

सब को विधिपूर्वक सत्कार के साथ अन्न दिया जाय, अनादर से नहीं, वैसा क्रम बनाया जाय जिससे सब वर्णों के लोग भलीभाँति सत्कृत होकर पूजा प्राप्त करें ।। १४ ।।

न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि।
यज्ञकर्मसु ये व्यग्राः पुरुषाः शिल्पिनस्तथा ।। १५ ।।
तेषामपि विशेषेण पूजा कार्या यथाक्रमम्।
ये स्युः संपूजिताः सर्वे वसुभिर्भोजनेन च ।। १६ ।।
यथा सर्वं सुविहितं न किञ्चित्परिहीयते।
तथा भवन्तः कुर्वन्तु प्रीतियुक्तेन चेतसा ।। १७ ।।

कामक्रोधवशादपि अपिना विलासादपि अवज्ञा अनादरः न प्रयोक्तव्या। यज्ञकर्मसु ये व्यग्राः तदेकचित्ताः पुरुषाः कर्मकराः तथा शिल्पिनः चित्रादि-निर्मातारः तेषां अपि विशेषेण यथाक्रमम् पूजा कार्या येन सर्वे वसुभिः भोजनेन च संपूजिताः स्युः। यथा येन प्रकारेण सर्वं कृत्यं सुविहितम् सुष्ठु साधितम् स्यात् न किञ्चित् परिहीयते विधिना परित्यज्यते तथा भवन्तः प्रीतियुक्तेन स्नेहार्द्रेण चेतसा कुर्वन्तु ।। १५–१७ ।।

काम और क्रोध के वश होकर किसी का अनादर न होने पावे, जो पुरुष और शिल्पी यज्ञ कर्म में लगे हुए हैं उनकी क्रम से विशेष पूजा की जाय ताकि लोग धन और भोजन से तृप्त होकर ऐसा कार्य करें कि कहीं भी कुछ परिहीन

(त्रुटि) न होने पावे अतः आप सब मन में प्रीति लिये हुए सब कुछ करें ॥ १५-१७ ॥

ततः सर्वे समागम्य वसिष्ठमिदमब्रुवन् ।
यथेष्टं तत्सुविहितं न किञ्चित्परिहीयते ॥ १८ ॥

ततः वशिष्ठाज्ञापनानन्तरम् सर्वे समागम्य वशिष्ठम् इदं अब्रुवन् 'तत् सुविहितं वेदबोधितं यथा इष्टं किंचिन्न परिहीयते न्यूनतां गच्छति ॥१८॥

तब वे सब वशिष्ठ जी के समीप आकर बोले कि जो काम आप जैसा चाहते है वह तदनुसार पूर्ण होगा ॥ १८ ॥

यथोक्तं तत्करिष्यामो न किञ्चित्परिहास्यते ।
ततः सुमन्त्रमाहूय वशिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥

यथोक्तं भवदाज्ञापितम् तत् यथावत् करिष्यामः किञ्चिन्न परिहास्यते ततः सर्वेषां अङ्गीकारवचनश्रवणानन्तरम् सुमन्त्रमाहूय वशिष्ठः वाक्यमब्रवीत् ॥ १९ ॥

आप जो कहेंगे वह भलीभाँति किया जायगा उसमें कुछ भी न्यूनता नहीं होने पायेगी । तब सुमन्त्र को बुलाकर वशिष्ठ ने कहा कि ॥ १९ ॥

निमन्त्रयस्व नृपतीन्पृथिव्यां ये च धार्मिकाः ।
ब्राह्मणान्क्षत्रियान्वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥ २० ॥
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान् ।
मिथिलाधिपतिं शूरं जनकं सत्यवादिनम् ॥ २१ ॥
[निष्ठितं सर्वशास्त्रेषु तथा वेदेषु निष्ठितम् ।]
तमानय महाभागं स्वयमेव सुसत्कृतम् ।
पूर्वं संबन्धिनं ज्ञात्वा ततः पूर्वं ब्रवीमि ते ॥ २२ ॥

हे सुमन्त्र नृपतीन् निमन्त्रयस्व । पृथिव्यां ये च धार्मिकाः तान् ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् सहस्रशः शूद्रांश्चैव सर्वदेशेषु मानवान् सत्कृत्य समानयस्व । शूरं सत्यवादिनम् सत्यवक्तारम् मिथिलाधिपतिम् सर्वशास्त्रेषु निष्ठितम् परिनिष्ठितम् वेदेषु निष्ठितम् निष्ठावन्तम् तम् महाभागम् जनकम् स्वयमेव सुसत्कृतमानय पूर्वं सम्बन्धिनम् सीताजनकत्वेन भाविनम् सम्बन्धिनम् ज्ञात्वा ततः पूर्वं इति ते ब्रवीमि प्रियासम्बन्धिनः पूर्वंनिमन्त्रणस्य प्रेमप्रकाशकत्वात् ॥ २०-२२ ॥

पृथ्वी पर जो धार्मिक राजा हैं उन्हें, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को सहस्रों की संख्या में निमन्त्रण दीजिए तथा सब देश के मनुष्यों को सत्कार पूर्वक बुलाइए। मिथिला देश के अधिपति, बड़े वीर, सत्य पराक्रम वाले, महाभाग्यशाली जनक को आप स्वयं जाकर बड़े सत्कार के साथ लाइए क्योंकि उन्हें मैं प्राचीन सुहृद् जानकर सब से पूर्व निमन्त्रण के लिए कहता हूँ ॥२०-२२॥

तथा काशिपतिं स्निग्धं सततं प्रियवादिनम्।
सद्वृत्तं देवसंकाशं स्वयमेवानयस्व ह ॥ २३ ॥

तथा स्निग्धं सततम् निरन्तरम् प्रियवादिनम् सद्वृत्तम् देवसंकाशं देवतुल्यं काशिपतिम् स्वयमेव आनयस्व ह निश्चयेन ॥ २३ ॥

बड़े स्नेही, सदा प्रिय बोलने वाले, सुन्दर आचरण और देव के समान काशिराज को स्वयं जाकर लाइए ॥ २३ ॥

तथा केकयराजानं वृद्धं परमधार्मिकम्।
श्वशुरं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥ २४ ॥

तथा परमधार्मिकं वृद्धं राजसिंहस्य दशरथस्य श्वशुरम् केकयराजानम् सपुत्रं तं इह यज्ञभूमौ आनय केकयराजानम् इति समासान्तविधेरनित्यत्वात् टजभावः ॥ २४ ॥

वृद्ध और बड़े धर्मात्मा केकय देश के राजा को पुत्र के साथ ले आइए क्योंकि वे राजसिंह दशरथ के श्वशुर हैं ॥ २४ ॥

अङ्गेश्वरं महेष्वासं रोमपादं सुसत्कृतम्।
वयस्यं राजसिंहस्य सपुत्रं तमिहानय ॥ २५ ॥

महेष्वासं महाधानुष्कं अङ्गेश्वरं अङ्गराजम् रोमपादम् राजसिंहस्य दशरथस्य वयस्यं सुसत्कृतम् सपुत्रं तं इह यज्ञभूमौ आनयस्व ॥ २५ ॥

अङ्गदेश के राजा, महाधानुष्क, राजसिंह महाराज दशरथ के मित्र रोमपाद को उनके पुत्र के साथ सत्कारपूर्वक लाइए ॥ २४ ॥

तथा कोशलराजानं भानुमन्तं सुसत्कृतम्।
मगधाधिपतिं शूरं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ २६ ॥
प्राप्तिज्ञं परमोदारं सत्कृतं पुरुषर्षभम्।
राज्ञः शासनमादाय चोदयस्व नृपर्षभान् ॥
प्राचीमान्सिन्धुसौवीरान्सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान् ॥ २७ ॥

दाक्षिणात्यान्नरेन्द्रांश्च समस्तानानयस्व ह ।
सन्ति स्निग्धाश्च ये चान्ये राजानः पृथिवीतले ॥ २८ ॥
तानानय यथा क्षिप्रं सानुगान्सहबान्धवान् ।
एतान्दूतैर्महाभागैरानयस्व नृपाज्ञया ॥ २९ ॥

तथा भानुमन्तं प्रकाशवन्तं कोसलराजानम् सर्वशास्त्रविशारदम् सकलशास्त्रज्ञं शूरं मगधाधिपतिम्, सुसत्कृतम् यथा स्यात्तथा आनय इति शेषः ।

प्राप्तिज्ञं परमोदारम् पुरुषर्षभम् पुरुषश्रेष्ठम् सत्कृतम् राज्ञः दशरथस्य शासनम् आदाय गृहीत्वा नृपर्षभान् नृपश्रेष्ठान् प्राचीनान् प्राग्देशभवान् सिन्धुसौवीरान् सिन्धु-सौवीरदेशभवान् सौराष्ट्रेयांश्च पार्थिवान् आनयस्व इति शेषः ।

दाक्षिणात्यान् समस्तान् नरेन्द्रान् ये च अन्ये पृथिवीतले राजानः स्निग्धाः स्नेहयुक्ताः सन्ति तान् आनयस्व ह ।

तान् सानुगान् सहबान्धवान् यथाक्षिप्रम् आनय एतान् महाभागैः दूतैर्नृपाज्ञया आनयस्व ॥ २६–२९ ॥

कोशल देश के राजा भानुमान् और सब शास्त्रों के मर्मज्ञ, मगधदेश के अधिपति को बड़े आदर तथा सत्कार करके लाइए। जो प्राप्ति जानने वाला, बड़ा उदार और पुरुषों में उत्तम है।

राजा का आदेश लेकर श्रेष्ठ राजाओं को आने के लिए प्रेरित कीजिए।

पूर्वदेश, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र और दक्षिण देश के राजाओं को भी दूतों के द्वारा बुलवाइए।

पृथ्वी पर जितने स्नेह रखने वाले राजा हैं उन्हें अनुचरों और बन्धुओं के साथ शीघ्र बुलवाइए।

राजा की आज्ञा पाकर इन्हें निपुण दूतों द्वारा बुलाइए ॥ २६–२९ ॥

वशिष्ठवाक्यं तच्छ्रुत्वा सुमन्त्रस्त्वरितं तदा ।
व्यादिशत्पुरुषांस्तत्र राज्ञामानयने शुभान् ॥ ३० ॥

सुमन्त्रः तदा तत् वशिष्ठवाक्यं श्रुत्वा त्वरितं शीघ्रं तत्र यज्ञे शुभान् शुभजातिभवान् अन्तरंगान् पुरुषान् राज्ञाम् आनयने व्यादिशत् ॥ ३० ॥

वशिष्ठ के वचन को सुनकर सुमन्त ने शीघ्र ही शुभ जाति के पुरुषों को राजाओं के निमन्त्रण के लिए आदेश दिया ।। ३० ।।

स्वयमेव हि धर्मात्मा प्रयातो मुनिशासनात् ।
सुमन्त्रस्त्वरितो भूत्वा समानेतुं महामतिः ।। ३१ ।।

धर्मात्मा महीपतिः सुमन्त्रः मुनिशासनात् वशिष्ठाज्ञया त्वरितः त्वरां प्राप्तः भूत्वा स्वयमेव समानेतु प्रयातः ।। ३१ ।।

मुनि की आज्ञा पाकर धर्मात्मा बड़े विचारशील सुमन्त ने शीघ्रता के साथ राजाओं को बुलाने के लिए स्वयं प्रयाण किया ।। ३१ ।।

ते च कर्मान्तिकाः सर्वे वसिष्ठाय महर्षये ।
सर्वं निवेदयन्ति स्म यज्ञे यदुपकल्पितम् ।। ३२ ।।

ते च कर्मान्तिकाः आसमाप्ति कर्मनिर्वर्तकाः सर्वे महर्षये वसिष्ठाय यज्ञे यज्ञनिमित्तम् यत् उपकल्पितम् निर्मितम् तत् सर्वं निवेदयन्तिस्म ।। ३२ ।।

जो कर्मकर थे सबने महर्षि वशिष्ठ के समीप जो कुछ यज्ञ के लिए था सब उपस्थित कर दिया ।। ३२ ।।

ततः प्रीतो द्विजश्रेष्ठस्तान्सर्वान्मुनिरब्रवीत् ।
अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा ।। ३३ ।।
अवज्ञया कृतं हन्याद्दातारं नात्र संशयः ।
ततः कैश्चिदहोरात्रैरुपयाता महीक्षितः ।। ३४ ।।
बहूनि रत्नान्यादाय राज्ञो दशरथस्य ह ।
ततो वशिष्ठः सुप्रीतो राजानमिदमब्रवीत् ।। ३५ ।।
उपयाता नरव्याघ्र राजानस्तव शासनात् ।
मयापि सत्कृताः सर्वे यथार्हं राजसत्तम ।। ३६ ।।

ततः सर्वकर्मपरिपूरणानन्तरम् प्रीतः प्रसन्नः द्विजश्रेष्ठः मुनिः वशिष्ठः सर्वान् अब्रवीत्, अवज्ञया अनादरेण लालया अश्रद्धया कस्यचित् कस्मैचित् अपि वा न दातव्यम् ।

अवज्ञया अनादरेण कृतम् दातारम् हन्यात् अत्र संशयः न, ततः कैश्चित् अहोरात्रैः राज्ञः दशरथस्य बहूनि रत्नानि आदाय ह महीक्षितः राजानः उपयाताः ।

ततः सुप्रीतः वशिष्ठः राजानम् दशरथम् इदम् अब्रवीत् हे नरव्याघ्र पुरुषसिंह तव शासनात् आदेशात् राजानः उपयाताः मयापि हे राजसत्तम राजश्रेष्ठ यथार्हं यथायोग्यं सर्वं सत्कृताः ॥ ३३-३६ ॥

यह देखकर प्रसन्न हो श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनि ने कहा कि किसी को अनादरपूर्वक अथवा हँसी के साथ कोई वस्तु नहीं देना क्योंकि अनादर से दिया हुआ दान दाता को नष्ट कर देता है इसमें संशय नहीं हैं।

तदनन्तर कुछ दिनों के बाद राजा दशरथ के लिए बहुत रत्न लेकर राजा लोग आये।

इसके बाद वशिष्ठ जी प्रसन्न होकर राजा दशरथ से बोले कि हे नरसिंह आपकी आज्ञा से सब राजा लोग आये हैं और मैंने भी हे राजन् ! यथायोग्य सबका सत्कार किया है ॥ ३३-३६ ॥

यज्ञियं च कृतं सर्वं पुरुषैः सुसमाहितैः।
निर्यातु च भवान्यष्टुं यज्ञायतनमन्तिकात् ॥ ३७॥

सुसमाहितैः पुरुषैः सर्वम् यज्ञियं च यज्ञोपयोगि च कृतम् संपादितम् भवान् यष्टुं अन्तिकात् समीपे वर्तमानम् यज्ञायतनम् यज्ञमण्डपम् निर्यातु निर्गच्छतु ॥ ३७ ॥

सावधान पुरुषों द्वारा यज्ञ की समस्त सामग्री ठीक कर ली गई है। अब आप यज्ञ करने के लिए यज्ञभूमि के निकट चलिए ॥ ३७ ॥

सर्वकामैरुपहृतैरुपेतं वै समन्ततः।
द्रष्टुमर्हसि राजेन्द्र मनसेव विनिर्मितम् ॥ ३८॥

समन्ततः उपहृतैः सर्वकामैः उपेतम् हे राजेन्द्र मनसा विनिर्मितम् इव द्रष्टुं अर्हसि वै ॥ ३८ ॥

जो इकट्ठे किए हुए सब साधनों से सर्वथा युक्त है। हे राजेन्द्र ! उस यज्ञ स्थान को आप देखिए जो ऐसा सुन्दर प्रतीत हो रहा है कि मानो मानसिक कल्पना से ही रचा गया है ॥ ३८ ॥

तथा वशिष्ठवचनादृष्यश्रृङ्गस्य चोभयोः।
दिवसे शुभनक्षत्रे निर्यातो जगतीपतिः ॥ ३९ ॥

तथा वशिष्ठवचनात् ऋष्यश्रृङ्गस्य च उभयोः वचनात् शुभनक्षत्रे शुभे दिवसे जगतीपतिः राजा निर्यातः यज्ञशालां प्राप्तः ॥ ३९ ॥

तब जगत्पालक राजा दशरथ ने वशिष्ठ और ऋष्यश्रृङ्ग दोनों ऋषियों के कहने से मङ्गल दिन और शोभन नक्षत्र में अयोध्या से निर्गमन किया ॥ ३९ ॥

ततो वसिष्ठप्रमुखाः सर्व एव द्विजोत्तमाः ।
ऋष्यश्रृङ्गं पुरस्कृत्य यज्ञकर्मारभंस्तदा ॥ ४० ॥

ततः वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे एव द्विजोत्तमाः द्विजश्रेष्ठाः तदा ऋष्यश्रृङ्गम् पुरस्कृत्य यज्ञकर्म आरभन् ॥ ४० ॥

तदनन्तर वशिष्ठ आदि सब श्रेष्ठ द्विजों ने ऋष्यश्रृङ्ग को आगे करके (उन्हीं के निर्देशन में) यज्ञकार्य आरम्भ किया ॥ ४० ॥

यज्ञवाटं गताः सर्वे यथाशास्त्रं यथाविधि ।
श्रीमांश्च सह पत्नीभी राजा दीक्षामुपाविशत् ॥ ४१ ॥

सर्वं यथाशास्त्रं यथाविधि यज्ञवाटं यज्ञशालाम् गताः श्रीमान् राजा च पत्नीभिः सह दीक्षां उपाविशत् ॥ ४१ ॥

सब लोगों ने यज्ञभूमि में शास्त्र और विधि के अनुसार प्रवेश किया तथा श्रीमान् राजा दशरथ ने पत्नियों के साथ यज्ञदीक्षा प्राप्त की ॥ ४१ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥



त्रयोदशः सर्गः

अथ संवत्सरे पूर्णे तस्मिन्प्राप्ते तुरङ्गमे ।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत ॥ १ ॥

अथेति । अथ तुरङ्गोत्सर्जनानन्तरं पूर्णे संवत्सरे तस्मिन्नुत्सृष्टे तुरङ्गमे प्राप्ते क्रमेण यज्ञशालामागते सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोऽभ्यवर्तत उपाक्रामत् ॥ १ ॥

यज्ञ दीक्षा में प्रवेश करने के बाद एक वर्ष पूर्ण होने और घोड़े के लौट आने के बाद राजा दशरथ का सरयू नदी के उत्तर तट पर यज्ञ आरम्भ हुआ ॥ १ ॥

ऋष्यश्रृङ्गं पुरस्कृत्य कर्म चक्रुर्द्विजर्षभाः ।
अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ॥ २ ॥

ऋष्येति । सुमहात्मनः अतिप्रयत्नविशिष्टस्यास्य त्रिलोक्यां प्रसिद्धस्य राज्ञो दशरथस्य महायज्ञेऽश्वमेधे द्विजर्षभाः ब्राह्मणाः ऋष्यश्रृङ्गं पुरस्कृत्य कर्म स्वस्वोचितकृत्यं चक्रुः ऋष्यश्रृङ्गं पुरस्कृत्वेत्यनेन तस्य प्रधानऋत्विक्त्वं ध्वनितम् ॥ २ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने ऋष्यश्रृङ्ग को आगे करके महात्मा राजा दशरथ के अश्वमेध नामक महायज्ञ में कर्म किया ॥ २ ॥

कर्म कुर्वन्ति विधिवद्याजका वेदपारगाः ।
यथाविधि यथान्यायं परिक्रामन्ति शास्त्रतः ॥ ३ ॥

कर्मेति । वेदपारगाः निखिलवेदतत्त्वावगन्तारो याजका ऋत्विजः कर्म यागोचितस्वस्वकृत्यं विधिवत्कुर्वन्ति यथाविधि विधिमनतिक्रम्य यथान्यायं मीमांसकोक्तं, क्रममनतिक्रम्य शास्त्रतः शिक्षया युक्ताः शिक्षां कुर्वन्त इत्यर्थः परिक्रामन्ति प्रवर्तन्ते ॥ ३ ॥

वेद का पार जानने वाले याजक लोगों ने विधि, प्रक्रिया और शास्त्र के अनुसार कर्म किया ॥ ३ ॥

प्रवर्ग्यं शास्त्रतः कृत्वा तथैवोपसदं द्विजाः ।
चक्रुश्च विधिवत्सर्वमधिकं कर्म शास्त्रतः ॥ ४ ॥

प्रवर्ग्यमिति । द्विजाः ब्राह्मणाः प्रवर्ग्यं अश्वमेधाङ्गभूतकर्मविशेषं उपसदमिष्टिविशेषं च शास्त्रतः मीमांसाद्यनुसारेणैव कृत्वा शास्त्रतः साक्षादुपदिष्टात् अधिकमतिदिष्टं सर्वं कर्म च विधिवच्चक्रुः सम्पादयामासुः तथाशब्दश्चार्थे ॥ ४ ॥

ब्राह्मणों ने (प्रवर्ग्य) नाम के कर्म को कर लेने के पश्चात् 'उपसद' नाम का कर्म किया । तदनन्तर विधि और शास्त्र के अनुसार सब कर्म किए गए ॥४॥

अभिपूज्य तदा हृष्टाः सर्वे चक्रुर्यथाविधि ।
प्रातःसवनपूर्वाणि कर्माणि मुनिपुंगवाः ॥ ५ ॥

अमीति । अभिपूज्य तत्तद्देवतापूजनं विधाय ततः पूजनात् हृष्टाः सर्वे मुनिपुङ्गवाः प्रातःसवनपूर्वाणि प्रातःसवनप्रभृतीनि कर्मविशेषाणि यथाविधि चक्रुः ॥ ५ ॥

तदनन्तर सब श्रेष्ठ मुनियों ने देवताओं की पूजा करके प्रसन्न हो प्रातः सवन कर्म करने के बाद विधिपूर्वक सब कर्म किया ॥ ५ ॥

ऐन्द्रश्च विधिवद्दत्तो राजा चाभिषुतोऽनघः ।
माध्यंदिनं च सवनं प्रावर्तत यथाक्रमम् ॥ ६ ॥

ऐन्द्र इति । ऐन्द्रः इन्द्रदेवताको हविर्विशेषो विधिवद्दत्तः अनघः पापनिवर्तकः राजा सोमवल्ली अभिषुतः अश्मभिरभिहत्य निस्सारितसारोऽभवदित्यर्थः माध्यन्दिनं सवनं च यथाक्रमं प्रावर्त्तत । अत्रार्थं सूत्रं सोमं राजानं दृषदि निधाय दक्षिणतो ब्रह्मा पश्चादध्वर्युः उत्तरतो होता प्रागुद्गाता स्थित्वा दृषद्भिर्हन्यात् ॥ ६ ॥

इन्द्र देवता को विधिवत् आहुति दे लेने के पश्चात् पवित्र सोमलता का अभिषवण (निचोडना) किया गया और सोम के उस रस से 'मध्यन्दिन सवन' नाम का यज्ञकर्म क्रम के अनुसार किया गया ॥ ६ ॥

तृतीयसवने चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ।
चक्रुस्ते शास्त्रतो दृष्ट्वा यथा ब्राह्मणपुंगवा ॥ ७ ॥

तृतीयेति । सुमहात्मानोऽस्य राज्ञो दशरथस्य तृतीयसवनं च ते ब्राह्मण-

पुङ्गवाः ब्राह्मणश्रेष्ठाः शास्त्रतो दृष्ट्वा ज्ञात्वा तथैव पूर्वोक्तप्रकारेणैव चक्रुः ॥ ७ ॥

इसके बाद उन श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने श्रेष्ठ महात्मा राजा दशरथ का फिर तृतीय सवन नामक कर्म शास्त्र के अनुसार किया ॥ ७ ॥

आह्वयांचक्रिरे तत्र शक्रादीन्विबुधोत्तमान् ।
ऋष्यश्रृङ्गादयो मन्त्रैः शिक्षाक्षरसमन्वितैः ॥ ८ ॥

आह्वयामिति । शिक्षाणि शिक्षितानि पाठनकाले गुरुणा बोधितानि एव अक्षराणि तैः समन्वितैः यथावत् स्वरवर्णविशिष्टैरित्यर्थः मन्त्रैः ऋष्यश्रृङ्गादयो विबुधोत्तमान् सुरश्रेष्ठान् शक्रादीन् तत्र यागे आह्वयाञ्चक्रिरे।

उस यज्ञ में ऋष्यश्रृङ्ग आदि ऋषियों ने शिक्षा शास्त्र की उच्चारण-प्रक्रिया से उच्चरित मन्त्रों द्वारा देवश्रेष्ठ इन्द्र आदि का आवाहन किया ॥ ८ ॥

गीतिभिर्मधुरैः स्निग्धैर्मन्त्राह्वानैर्यथार्हतः ।
होतारो ददुरावाह्य हविर्भागान्दिवौकसाम् ॥ ९ ॥

गीतिभिरिति । गीतिभिः यथोचितगानविशिष्टैर्मधुरैः मधुरस्वरविशिष्टैः स्निग्धैर्मनोरमैः मंत्राह्वानैः आह्वानमन्त्रैर्होतार आवाह्य दिवौकसामर्हतो योग्यान्हविर्भागान् ददुः तेभ्यः समर्पयामासुः ॥ ९ ॥

होताओं ने मधुर और कोमल गीतियों के साथ मन्त्र के द्वारा आवाहन करके यथायोग्य सब देवताओं को हवि का प्रदान किया ॥ ९ ॥

न चाहुतमभूत्तत्र स्खलितं वा न किंचन ।
दृश्यते ब्रह्मवत्सर्वं क्षेमयुक्तं हि चक्रिरे ॥ १० ॥

नेति । तत्र तस्मिन्यागे अहुतं यथोक्तहुतविरुद्धं नाभूत् स्खलितं च्युतं च किंचन कर्म नाभूत् तत्र हेतुः सर्वं कर्म ब्रह्मवन्मन्त्रयुक्तं दृश्यते हि यतः क्षेमयुक्तमेव यथा स्यात्तथा चक्रिरे। १० ॥

उस यज्ञ में न तो कुछ आहुत (निष्फल) हुआ और न तो कहीं कुछ भी त्रुटि ही हुई किन्तु सब वेद के अनुसार देखा गया और कल्याण युक्त किया गया ॥ १० ॥

न तेष्वहःसु श्रान्तो वा क्षुधितो वा न दृश्यते ।
नाविद्वान्ब्राह्मणः कश्चिन्नाशतानुचरस्तथा ॥ ११ ॥

नेति। तेषु अहस्सु भोजनाद्यनर्हयोगदिवसेषु श्रान्तः पिपासितः क्षुधितो वा नैव दृश्यते तत्र तस्मिन्यागे अविद्वान् ब्राह्मणो न सर्वे विद्वांस एव समागता इत्यर्थः अशतानुचरः शतसंख्याकानुचररहितश्च न तथाशब्दार्थे एको वाशब्द एवार्थे ॥ ११ ॥

यज्ञ के उन दिनों में कोई ब्राह्मण थका, भूखा नहीं दिखाई देता था, न तो कोई ब्राह्मण मूर्ख था और न तो ऐसा कोई था जिसके सैकड़ों सेवक न हों ॥११॥

ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥ १२ ॥

ब्राह्मण इति। ब्राह्मणा नित्यं यथेच्छं भुञ्जते नाथवन्तः ब्राह्मणस्वामिकाः क्षत्रियविट्शूद्राश्च यथेच्छं भुञ्जते तापसा ब्रह्मचारिप्रभृतयः भुञ्जते तथा श्रमणाः संन्यासिनोपि भुञ्जते वाशब्देन वर्णाश्रमबहिर्भूतपरिग्रहः। तु शब्देन यथेच्छलाभः ॥ १२ ॥

वहां नित्य ब्राह्मण भी भोजन करते थे, सेवक भी भोजन करते थे, तापस भी भोजन करते थे और संन्यासी भी भोजन करते थे ॥ १२ ॥

वृद्धाश्च व्याधिताश्चैव स्त्रीबालाश्च तथैव च।
अनिशं भुञ्जमानानां न तृप्तिरुपलभ्यते ॥ १३ ॥

वृद्धा इति। वृद्धाः वृद्धतां प्राप्ताः व्याधिता व्याधिग्रस्ताश्च स्त्रीबालाः कन्याश्च चकारेण पुंबालाश्च तथैव भुञ्जते इति पूर्वेणान्वयः। अनिशं निरन्तरं भुज्यमानानां भोज्यमानानां जनानां तृप्तिर्नोपलभ्यते एतेन भोज्यानामतिस्वादुत्वं ध्वनितम्। किञ्च अमानानां गर्वरहितानां भोजनदातॄणामनिशं निरन्तर भुजि भोजनायां भोजनदाने इत्यर्थः। अन्तर्भावितणिजर्थकभुजेर्भावे क्विप्। तृप्तिर्नैव लभ्यते ॥ १३ ॥

बूढ़े, रोगी, स्त्री और बालक निरन्तर भोजन करते थे और उन्हें तृप्ति नहीं होती थी ॥ १३ ॥

दीयतां दीयतामन्नं वासांसि विविधानि च।
इति संचोदितास्तत्र तथा चक्रुरनेकशः ॥ १४ ॥

अतृप्तिचिह्नमाह—दीयतामिति। अन्नं विविधानि वासांसि च दीयतां

दीयतामित्यनेन प्रकारेण संचोदिता अधिकारिभिः प्रेरिता अनेकशः जनास्तत्र यागे तथा चक्रुर्ददुरित्यर्थः ॥ १४ ॥

वे बार-बार ये अन्न दीजिये, वो अन्न दीजिए, ये वस्त्र दीजिये, वो वस्त्र दीजिए अनेक प्रकार के अन्नों और वस्त्रों की इच्छा करते थे तथा उनकी मांग के अनुसार उन्हें बारबार अन्न और वस्त्र दिया जाता था ॥ १४ ॥

अन्नकूटाश्च दृश्यन्ते बहवः पर्वतोपमाः ।
दिवसे दिवसे तत्र सिद्धस्य विधिवत्तदा ॥ १५ ॥

अन्नेति । पर्वतोपमाः पर्वततुल्याः अन्नकूटा आमान्नसमूहाः बहवस्तत्र दृश्यन्ते दिवसे दिवसे विधिवत्सिद्धस्यान्नस्य पर्वतोपमसमूहश्च दृश्यते इत्यध्याहृतम् ॥ १५ ॥

वहां अनेक स्थानों पर प्रतिदिन विधिवत् पकाये हुए पर्वत के समान अन्नों के शिखर दिखाई पड़ते थे ॥ १५ ॥

नानादेशादनुप्राप्ताः पुरुषाः स्त्रीगणास्तथा ।
अन्नपानैः सुविहितास्तस्मिन्यज्ञे महात्मनः ॥ १६ ॥

नानेति । नानादेशादनेकविधदेशादनुप्राप्ताः समागताः पुरुषास्तथा स्त्रीगणाः स्त्रीसमूहाश्च महात्मनो राज्ञः तस्मिन्प्रसिद्धे यज्ञे अन्नपानैः सुविहिताः सुतर्पिता आसन्निति शेषः ॥ १६ ॥

उस महापुरुष दशरथ के यज्ञ में अनेक देशों से आये हुए पुरुष और स्त्री-गण अन्न तथा पीने की सामग्रियों से तृप्त कर दिये गए थे ॥ १६ ॥

अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः ।
अहो तृप्ताः स्म भद्रं ते इति शुश्राव राघवः ॥ १७ ॥

अन्नमिति । विधिवत् पाकशास्त्रोक्तविधिनिर्मितमतः स्वादु अतिस्वादु अहो विचित्रमन्नमतस्तृप्ताः स्म अतितृप्तिप्राप्ता वयम् अतस्ते तव भद्रं कल्याणमस्तु इति द्विजर्षभा ब्राह्मणाः प्रशंसन्तीति राघवो महाराजाधिराजो दशरथः शुश्राव इतिरुभयान्वयी हिर्हेतौ ॥ १७ ॥

उत्तम ब्राह्मणों ने विधिपूर्वक बने हुए उस स्वादु अन्न की प्रशंसा की कि 'हम बड़े तृप्त हैं', तुम्हारा कल्याण हो, इन आशीर्वचनों को राजा दशरथ ने सुना ॥ १७ ॥

स्वलंकृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान्पर्यवेषयन् ।
उपासन्ते च तानन्ये सुमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ १८ ॥

स्वलंकृता इति । स्वलंकृताः शोभनालंकारविशिष्टा एव पुरुषाः ब्राह्मणान्पर्यवेषयन्परिवेषणं चक्रुरित्यर्थः । सुमृष्टमणिकुण्डलाः शोधितमणियुक्तकुण्डलविशिष्टा एव अन्ये परिवेषणकर्तृभ्यो भिन्नाः पुरुषाः तान्परिवेषणकर्तॄनुपासते साहाय्यार्थं तैः सहैव गच्छन्तीत्यर्थः । चशब्दावेवार्थौ ॥ १८ ॥

वहाँ आभूषणों से लदे हुए पुरुष ब्राह्मणों को भोजन परोसते थे और सुन्दर मणि और कुण्डल धारण किये हुए दूसरे लोग उनकी सेवा करते थे ॥ १८ ॥

कर्मान्तरे तदा विप्रा हेतुवादान्बहूनपि ।
प्राहुः सुवाग्मिनो धीराः परस्परजिगीषया ॥ १९ ॥

कर्मेति । तदा यागकाले कर्मान्तरे सवनयोर्मध्ये विश्रान्तिकाले इत्यर्थः सुवाग्मिनः सुपटुवचनाः धीराः सावधानाः विप्राः परस्परजिगीषया परस्परं स्वस्वविजयकाङ्क्षया बहून् भिन्न-भिन्नशास्त्रप्रतिपादितानपि हेतुवादान् जगत्कारणविषयकविवादान्प्राहुः । अपिना यागादिविषयकविवादसंग्रहः ॥ १९ ॥

उस समय एक कर्म की समाप्ति के बाद और दूसरे कर्म के आरम्भ होने के पूर्व मध्य के समय मे अच्छे वक्ता, धीर ब्राह्मणों ने एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से अनेक तर्कवाद किया ॥ १९ ॥

दिवसे दिवसे तत्र संस्तरे कुशला द्विजाः ।
सर्वकर्माणि चक्रुस्ते यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥ २० ॥

दिवसे इति । तत्र तस्मिन्संस्तरे यज्ञे कुशलाः निपुणाः प्रचोदिताः प्रेष्यब्रूहीत्यादिवैदिकशब्दैः प्रेरितास्ते प्रसिद्धाः द्विजा ब्राह्मणाः यथाशास्त्रं सर्वकर्माणि दिवसे दिवसे चक्रुः 'संस्तरप्रस्तराध्वराः' इत्यमरः ॥ २० ॥

उस यज्ञ मे कुशल ब्राह्मण आसन पर बैठकर प्रतिदिन शास्त्र के अनुसार निर्देश पाकर सब कर्म करते थे ॥ २० ॥

नाषडङ्गविदत्रासीन्नाव्रतो नाबहुश्रुतः ।
सदस्यास्तस्य वै राज्ञो नावादकुशलो द्विजः ॥ २१ ॥

नेति। तस्य प्रसिद्धस्य राज्ञः यागे यज्ञे अषडङ्गवित्कश्चिन्नासीत् अव्रतश्च कश्चिन्नासीत् अबहुश्रुतश्च कश्चिन्नासीत् तस्य राज्ञः सदस्याः सदसि समवेता द्विजाः अवादकुशला नासन् ॥ २१ ॥

यहाँ राजा के उन सदस्य या ऋत्विज ब्राह्मणों में वेद के छः अंगों को न जानने वाला, व्रतरहित, अनेक शास्त्र न जानने वाला, शास्त्रार्थ न जानने वाला कोई नहीं था ॥ २१ ॥

प्राप्ते यूपोच्छ्रये तस्मिन्षड्बैल्वाः खादिरास्तथा।
तावन्तो बिल्वसहिताः पर्णिनश्च तथा परे ॥ २२ ॥

प्राप्ते इति। तस्मिन्नश्वमेधे यूपोच्छ्रये यूपानां यज्ञस्तम्भानां उच्छ्रय उद्धृत्य स्थापनं तस्मिन्काले इत्यर्थः। षट् षट्संख्याकाः बैल्वाः बिल्वविकारयूपाः उद्धृत्य स्थापिता इति शेषः। बिल्वसहिताः बिल्वयूपसमीपवर्तिनस्तावन्तः षट्सख्याकाः खादिराः खादिरविकारयूपाश्च उद्धृत्य स्थापिताः 'पलाशे किंशुकः पर्णो' इत्यमरः। पूर्वस्तथाशब्दश्चार्थे ॥ २२॥

यूप (पशुबन्धन-स्तम्भ) के गाड़ने के समय में बिल्व और खैर के छः छः खम्भे (यूप) तथा बिल्व सहित पलाश के छः खम्भे गाड़े गए थे ॥ २२ ॥

श्लेष्मातकमयो दिष्टो देवदारुमयस्तथा।
द्वावेव तत्र विहितौ बाहुव्यस्तपरिग्रहौ ॥ २३ ॥

श्लेष्मातकमय इति। अग्निष्ठः अग्निसंमुखवर्ती श्लेष्मातकमयः रज्जुदालविकारयूपः उद्धृत्य स्थापितः एकत्वस्यात्र विवक्षितत्वादयं यूप एक एव देवदारुमयः देवदारु विकारयूपश्च उद्धृत्य स्थापितः अत्रैकत्वस्याविवक्षया तत्संख्याया अनियमे प्राप्ते तां नियमयन्नाह तत्र तस्मिन्यागे देवदारुमयौ द्वावेव विहितौ। तत्परिमाणमाह बाहुव्यस्तपरिग्रहौ बाहुव्यस्ताभ्यां प्रसारितभुजाभ्यां परिग्रहः परिग्रहणं ययोस्तौ दिष्ट इतिपाठे दिष्ट अश्वमेधे उपदिष्ट इत्यर्थः। एवं संकलनया एकविंशतिर्यूपाः संपन्नाः प्रसिद्धाश्चाश्वमेधीयसूत्रश्रुत्योरिति दिक् ॥ २३ ॥

बहेरा की लकड़ी का एक और देवदारू की लकड़ी के दो खम्भे विधान के अनुसार गाड़े गए थे जो इतनी दूर थे कि व्यस्त बाहु से पकड़े जा सकते थे ॥ २३ ॥

कारिताः सर्व एवैते शास्त्रज्ञैर्यज्ञकोविदैः ।
शोभार्थं तस्य यज्ञस्य काञ्चनालंकृता भवन् ॥ २४ ॥

कारिता इति । शास्त्रज्ञैः शास्त्रनिपुणैः यज्ञकोविदैः यागप्रयोगनिपुणैः एते पूर्वोक्ताः सर्वे एकविंशतियूपाः कारिताः यथाशास्त्रं पूर्वं निर्मापितास्ते च तस्य प्रसिद्धस्य यज्ञस्य शोभार्थं काञ्चनालकृता भवन् आगमशास्त्रस्यानित्यत्वादड्विरहः ॥ २४ ॥

शास्त्र के जानकार और यज्ञक्रिया में कुशल लोगों के द्वारा ये बनवाये गए थे । उस यज्ञ की शोभा बढ़ाने के लिए इन पर सोने के पत्र चढ़ा दिये गए थे ॥२४॥

एकविंशतियूपास्ते एकविंशत्यरत्नयः ।
वासोभिरेकविंशद्भिरेकैकं समलङ्कृताः ॥ २५ ॥

एकेति । एकविंशत्यरत्नयः एकविंशत्यरत्निपरिमितोन्नताः एकविंशतियूपाः एक विंशद्भिः एकविंशत्या वासोभिर्वस्त्रैः एकैकं समलंकृताः एकेन वाससा एकः समलंकृतः अपरेणैकेन वाससा अपरः समलंकृताः एवं क्रमेण सर्वे समलंकृता इत्यर्थः । अरत्निश्चतुर्विंशतिरङ्गुलयः 'तथाहि एकविंशत्यरत्नीरश्वमेधस्य'इति श्रुतिः 'चतुर्विंशत्यङ्गुलयोऽरत्निः' सूत्रम् । एकविंशतीत्यत्र सुलोप आर्षः । एकैकमिति सामान्ये नपुंसकम् । एकविंशद्भिरित्यत्र बहुत्वेकारलोपावार्षौ ॥ २५ ॥

इस प्रकार वे इक्कीस यूप (खम्भे), इक्कीस मुष्टिबद्ध हस्त की ऊँचाई वाले थे तथा इक्कीस वस्त्रों से एक एक करके अलग अलग लपेटने से शोभायमान लग रहे थे ॥ २५ ॥

विन्यस्ता विधिवत्सर्वे शिल्पिभिः सुकृता दृढाः ।
अष्टास्रयः सर्वे एव श्लक्ष्णरूपसमन्विताः ॥ २६ ॥

विन्यस्ता इति । शिल्पशास्त्रक्रियाभिज्ञैः विधिवत् यथाविधि विन्यस्ताः संनिवेशिताः सुकृताः शोभनं कृतं क्रिया येषु ते अत एव दृढाः अदार्ढ्यशङ्कारहिताः अष्टास्रयः अष्टकोणयुक्ताः अत एव श्लक्ष्णरूपसमन्विताः एवं सर्वे एकविंशतिः यूपाः ॥ २६ ॥

सब शिल्पियों द्वारा विधिपूर्वक बनाये गए थे, दृढ़, चिकने, मनोहरता से युक्त सब आठ कोण वाले थे ॥ २६ ॥

आच्छादितास्ते वासोभिः पुष्पैर्गन्धैश्च पूजिताः ।
सप्तर्षयो दीप्तिमन्तो विराजन्ते यथा दिवि ॥ २७ ॥

वासोभिः आच्छादिताः पुष्पैर्गन्धैश्च पूजिताः दीप्तिमन्तः ते प्रसिद्धाः सर्वे दिवि सप्तर्षयो यथा सप्तर्षय इव विराजन्ते शोभन्ते । श्लोकद्वयमेकान्वयि ॥ २७ ॥

वे खम्भे वस्त्र से लपेटे जाने एवं पुष्प और चन्दन से पूजित होने से ऐसे दीप्तिमान लगते थे मानों स्वर्ग में सप्तर्षि विराजमान हों ॥ २७ ॥

इष्टकाश्च यथान्यायं कारिताश्च प्रमाणतः ।
चितोऽग्निर्ब्राह्मणैस्तत्र कुशलैः शुल्बकर्मणि ॥ २८ ॥

इष्टका इति । तत्र प्रसिद्धे शुल्बकर्मणि यज्ञकर्मणि कुशलैः निपुणैः ब्राह्मणैः यथान्यायं यथोक्तं प्रमाणतः शास्त्रोक्तपरिमाणतः इष्टकाः कारिताः अग्निः अग्निस्थापनयोग्यो देशश्च चितो निर्मितः 'शुल्बं ताम्रे यज्ञकर्मण्याचारे जलसंनिधौ' इति वैजयन्ती । क्वचिद्यज्ञकर्मणीति पाठः ॥ २८ ॥

शिल्पकर्म में कुशल ब्राह्मणों ने विधि और प्रमाण के अनुरूप ईंटें बनवायीं, उन ईंटों से अग्निकुण्ड बनाया गया ॥ २८ ॥

स चित्यो राजसिंहस्य संचितः कुशलैर्द्विजैः ।
गरुडो रुक्मपक्षो वै त्रिगुणोऽष्टादशात्मकः ॥ २९ ॥

स चित्य इति । कुशलैर्द्विजैः राजसिंहस्य निखिलराजशिरोमणेर्दशरथस्य स चित्यः चयननिष्पादितोऽग्निः संचितः यथाशास्त्रं स्थापितः संचयनप्रकारं बोधयंस्तद्विशेषणान्याह गरुडः गरुडाकृतिः प्रसारितोभयपक्षपुच्छवत्त्वेन अधोवीक्षमाणत्वेन प्राङ्मुखस्थित्या गरुडाकृतित्वं रुक्मपक्षः सुवर्णमयपक्षविशिष्टः तत्त्वञ्च सुवर्णेष्टकाभिः पक्षयोर्निर्माणात् त्रिगुणः त्रिगुणितप्रस्तारविशिष्टः प्रकृतौ षट्प्रस्तारा अत्राष्टादश प्रस्तारा इत्यर्थः । अत एवाष्टादशात्मकः । वैशब्दः प्रसिद्धिद्योतकः रुक्मपक्षत्वे सूत्रमपि 'सहस्रं हिरण्यशकलैः प्रतिदिशमग्निं चिनोति' इति गरुडाकृतित्वे श्रुतिः 'श्येनचित्तिं चिन्वीत' इति तत्र सुपर्णोऽसि गरुत्मानिति मन्त्रात् श्येनशब्दो गरुडार्थकः ॥ २९ ॥

उस वेदी को राजसिंह दशरथ के यज्ञ कर्म में नियुक्त निपुण ब्राह्मणों ने बनाया और उस पर तीन रङ्ग के सुवर्ण के पंख वाले अठारह गरुड बनाये गए ॥ २९ ॥

नियुक्तास्तत्र पशवस्तत्तदुद्दिश्य दैवतम् ।
उरगाः पक्षिणश्चैव यथाशास्त्रं प्रचोदिताः ॥ ३० ॥

नियुक्त इति । तत्तद्दैवतं यथोक्तेन्द्रादिदैवतमुद्दिश्य तत्र तेषु यूपेषु प्रचोदिताः शास्त्रविहिताः पशवः उरगाः सर्पाश्च पक्षिणश्च यथाशास्त्रं यथाशिक्ष नियुक्ता निबद्धाः । एवश्चार्थे ॥ ३० ॥

उन खम्भों में शास्त्र के निर्देशानुसार उन उन खम्भों के देवताओं के उद्देश्य से पशु, सर्प और पक्षी नियुक्त किए गये ॥ ३० ॥

शामित्रे तु हयस्तत्र तथा जलचराश्च ये ।
ऋषिभिः सर्वमेवैतन्नियुक्तं शास्त्रतस्तदा ॥ ३१ ॥

शामित्र इति । तत्र तस्मिन्शामित्रे विहितहिंसाविशसनादिकर्मणि हयोऽश्वः शास्त्रतः शास्त्रोक्तत्वेनैवानयनयोग्या ये जलचराः कूर्मादयस्ते सर्वे आनीता एव सन्तीति शेषः तदा तस्मिन् काले एव एतत्सर्वमानीत-हयादि शास्त्रतः शास्त्र विधानत एव ऋत्विग्भिः नियुक्तं यूपेषु निबद्धम् । तुचतथाशब्दा एवार्थकाः । शास्त्रत इत्युभयान्वयि ॥ ३१ ॥

उस बलिस्थान में ऋषियों ने शास्त्र के निर्देशानुसार घोड़े और जलचर आदि सब उपयोगी जीव नियुक्त किये ॥ ३१ ॥

पशूनां त्रिशतं तत्र यूपेषु नियतं तदा ।
अश्वरत्नोत्तमं तत्र राज्ञो दशरथस्य ह ॥ ३२ ॥

नियोजितपशुसंख्यामहि—पशूनामिति । तदा तस्मिन्काले तत्र तेषु यूपेषु पशूनां त्रिशतं नियत बद्धम् । राज्ञः राजराजस्य दशरथस्य अश्व-रत्नोत्तमं च तत्र नियतं बद्धम् । अश्वरत्नोत्तममित्यपि क्वचित्पठ्यते तत्र त्रिशतमित्युक्तिः प्रधानपश्वपेक्षया अत एव पञ्चशतैकोनविंशतिप्रतिपादक-भास्करग्रन्थेन न विरोधः ॥ ३२ ॥

वहां यूपों में तीन सौ पशु बांधे गए और राजा दशरथ का वह उत्तम अश्वरत्न भी बांधा गया ॥ ३२ ॥

कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य समन्ततः ।
कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥ ३३ ॥

कौसल्येति । कौसल्या महिषी तत्र शामित्रकर्मणि तं नियतमेनं हयं समन्ततः परिचर्य प्रोक्षणादिना संस्कृत्य परमया मुदा परमहर्षेण त्रिभिः कृपाणैः असिभिः विशशास कौसल्येति पत्न्यतरस्याप्युपलक्षकम् । तथाच सूत्रम् 'महिष्यश्चास्यासिना कल्पयन्ति' इति ॥ ३३ ॥

वहां बलिस्थान में कौशल्या ने उस घोड़े की परिक्रमा करके परम प्रसन्न चित्त से तीन तलवार से उसका वध किया ॥ ३३ ॥

पतत्त्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा ।
अवसद्रजनीमेकां कौशल्या धर्मकाम्यया ॥ ३४ ॥

पत्न्या कर्तव्यान्तरमाह—पतत्त्रिणेति । तदा विशसनानन्तरकाले सुस्थितेन चेतसा युक्ता कौशल्या पतत्त्रिणा पक्षविशिष्टेनाश्वेन सार्द्धं धर्मकाम्यया एकां रजनीमवसत् पतत्त्रिणा गरुडसदृशवेगविशिष्टेनेति केचित् । पुराश्वानां पक्षाः सन्तिस्मेति प्रसिद्धयैवंवादः ॥ ३४ ॥

इसके बाद कौशल्या ने धर्मसिद्धि के लिए सावधान चित्त से उस अश्व के निकट एक रात्रि निवास किया ॥ ३४ ॥

होताध्वर्युस्तथोद्गाता हयेन समयोजयन् ।
महिष्या परिवृत्त्याथ वावातामपरां तथा ॥ ३५ ॥

रात्रिवासोत्तरकालिकं होत्रादिकृत्यमाह—होतेति । होत्रादयस्त्रयः तथा-शब्देन ब्रह्मा च महिष्या कृताभिषेकया परिवृत्त्या उपेक्षितया च सहितां वावातां भोगिनीम् अपरां पालाकलीं च हयेन अश्वेन समयोजयन् अश्वाङ्ग-संयोजनरूपविधिं कारयामासुरित्यर्थः । 'कृताभिषेका महिषी परिवृत्ति-रुपेक्षिता । वावाता भोगिनी पात्रप्रदा पालाकली मता' इति वैजयन्ती ॥

होता, अध्वर्यु और उद्गाता ने महिषी (रानी कौशल्या) वावाता (वैश्य जाति की पत्नी) और परिवृत्ति (शूद्रजाति की पत्नी) को अश्व के पास नियोजित किया ॥ ३५ ॥

पतत्त्रिणस्तस्य वपामुद्धृत्य नियतेन्द्रियः ।
ऋत्विक्परमसंपन्नः श्रपयामास शास्त्रतः ॥ ३६ ॥

पतत्त्रिण इति। नियतेन्द्रियः यतचित्तः परमसंपन्नः श्रौतप्रयोगादिनिपुणः ऋत्विक् तस्य विधिना हिंसितस्य पतत्रिणोऽश्वस्य वपां चन्द्रापरनामकं मेदः उद्धृत्य निस्सार्य शास्त्रतः यथाशास्त्रं श्रपयामास पपाच ॥

उस अश्व की वपा (चरबी) को लेकर जितेन्द्रिय, बड़े निपुण ऋत्विक् ने शास्त्र की विधि से पकाया ॥ ३६ ॥

धूमगन्धं वपायास्तु जिघ्रति स्म नराधिपः ।
यथाकालं यथान्यायं निर्णुदन्पापमात्मनः ॥ ३७ ॥

वपाहोमं व्यञ्जयन्नाह—धूमेति। नराधिपो दशरथः वपायाः धूमगन्धं यथाकालं विहितकालमनतिक्रम्यैव यथान्यायं यथाविधि आत्मनः पापं प्रकटपुत्रवियोगहेतुत्वेन प्रतीयमानविघ्नविशेषं निर्णुदन् दूरीकुर्वन् जिघ्रति स्म। तु शब्द एवार्थे ॥ ३७ ॥

राजा दशरथ अपने पापों को दूर करने के लिए समय पर विधि के अनुसार वपा (चरबी) के धूम का गन्ध सूँघते थे ॥ ३७ ॥

हयस्य यानि चाङ्गानि तानि सर्वाणि ब्राह्मणाः ।
अग्नौ प्रास्यन्ति विधिवत्समस्ताः षोडशर्त्विजः ॥ ३८ ॥

वपाहवनकृत्यं बोधयित्वाङ्गहवनमाह—हयस्येति। हयस्य यानि अङ्गानि तानि सर्वाणि समस्ताः संमिलिताः षोडशर्त्विजः ब्राह्मणाः अग्नौ विधिवत्प्रास्यन्ति ॥ ३८ ॥

सब सोलहों ऋत्विज, ब्राह्मण घोड़े के कितने अङ्ग थे सबको विधिपूर्वक अग्नि में हवन करते थे ॥ ३८ ॥

प्लक्षशाखासु यज्ञानामन्येषां क्रियते हविः ।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य वैतसो भाग इष्यते ॥ ३९ ॥

अवदाने शाखानियममाह—प्लक्षेति। अन्येषामश्वमेधभिन्नानां यज्ञानां हविः देवतोद्देश्यकपशुविशेषः प्लक्षशाखासु क्रियते धृत्वा अवदीयते अश्वमेधस्य यज्ञस्य भागः, देवतोद्देश्यकपशुविशेषः वैतसो वेतसशाखावस्तुनि क्रियते धृत्वा अवदीयते इष्यते। इत्याचार्यैर्वान्छ्यत इत्यर्थः। अत्रार्थे श्रुतिः 'प्लक्षशाखायामन्येषां पशूनामवद्यन्ति वैतसशाखायामश्वस्य' इति। एतेन वैतसे कटे इत्यर्थो निर्मूलः ॥ ३९ ॥

अन्य यज्ञों में हवि को पाकड़ की डाली पर रखकर हवन किया जाता है किन्तु अश्वमेध यज्ञ में तो वेंत में स्थापन करके हवन किया जाता है ॥ ३९ ॥

त्र्यहोऽश्वमेधः संख्यातः कल्पसूत्रेण ब्राह्मणैः ।
चतुष्टोममहस्तस्य प्रथमं परिकल्पितम् ॥ ४० ॥
उक्थ्यं द्वितीयं संख्यातमतिरात्रं तथोत्तरम् ।
कारितास्तत्र बहवो विहिताः शास्त्रदर्शनात् ॥ ४१ ॥

अश्वमेधसाधकदिनसंख्यामाह—त्र्यह इति । कल्पसूत्रेण ब्राह्मणैस्तत्कारणभूतब्राह्मणवाक्यैश्च अश्वमेधः त्र्यहः संख्यातः । अत्राहःशब्देन यथोक्ताहःसाध्यसवनानि उच्यते । एवं च त्रीणि यथोक्ताहस्साध्यसवनानि यस्मिन् 'अचप्रत्यन्दव०' इत्यत्राजिति योगविभागादच् । तान्यहान्येव पृथक्कृत्याह तस्य सवनत्रयात्मकयागस्य प्रथममहः तत्साध्यसवन चतुष्टोमं परिकल्पितं कथितम् द्वितीयमहस्साध्यसवनमुक्थ्यं संख्यातं कथितम् । उत्तरं तृतीयमतिरात्रं तथा संख्यातं तत्र अश्वमेधसमाप्त्युत्तरकाले शास्त्रदर्शनात् शास्त्रावलोकनमाश्रित्य विहिताः कर्तव्यत्वेन बोधिता बहवः अन्येऽपि यज्ञाः कारिता महाराजेन संपादिताः ॥ ४०-४१ ॥

कल्पसूत्रों और ब्राह्मणों में अश्वमेध के लिए तीन दिन की संख्या की गई है जिनमें 'चतुष्टोम' नाम का पहिला दिन कहा गया है ।

दूसरा उक्थ और तीसरा अतिरात्र कहा गया है । वहाँ शास्त्र में देखे गए विधान के अनुसार सब कर्म कराये गए ॥ ४०-४१ ॥

ज्योतिष्टोमायुषी चैवमतिरात्रौ च निर्मितौ ।
अभिजिद्विश्वजिच्चैवमाप्तोर्यामौ महाक्रतुः ॥ ४२ ॥

तानेव गणयन्नाह—ज्योतिष्टोमेति । ज्योतिष्टोमायुषी अग्निष्टोमायुष्टोमौ प्रथम द्वितीयौ अतिरात्राविति द्विवचनान्तेनातिरात्रद्वयलाभः तृतीयचतुर्थौ चेत्यर्थः । निर्मितौ विधिना संपादितौ पञ्चमोऽभिजिच्च षष्ठो विश्वजिच्च आप्तोर्यामौ सप्तमाष्टमौ च महाक्रतुः एते महाक्रतव इत्यर्थः ॥ ४२ ॥

तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित और आप्तोर्याम नामक महायज्ञ किये गए ॥ ४२ ॥

प्राचीं होत्रे ददौ राजा दिशं स्वकुलवर्धनः ।
अध्वर्यवे प्रतीचीं तु ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ ४३ ॥
उद्गात्रे तु तथोदीचीं दक्षिणैषा विनिर्मिता ।
अश्वमेधे महायज्ञे स्वयंभूविहिते पुरा ॥ ४४ ॥

दक्षिणाप्रकारमाह—प्राचीमित्यादिभिः । पुरा पूर्वं स्वयंभूविहिते ब्रह्मणा प्रकटीकृते महायज्ञे यागश्रेष्ठे हयमेधेऽश्वमेधे स्वकुलवर्द्धनो राजा प्राचीं दिशं होत्रे ददौ प्रतीचीं पश्चिमां च दिशं अध्वर्यवे ददौ दक्षिणां दिशं ब्रह्मणे ददौ उदीचीमुत्तरा च दिशमुद्गात्रे तथा ददौ एषा सर्वदिग्दानरूपा दक्षिणा विनिर्मिता सूत्रे उक्ता द्वयोरेकत्रान्वयः । तथा च सूत्रम् 'प्रतिदिशं ददाति प्राची दिक् होतुः दक्षिणा ब्रह्मणः प्रतीच्यध्वर्योरुदीच्युद्गातुः' इति । यागस्य पूर्वं ब्रह्मनिष्पाद्यत्वे श्रुतिः 'प्रजापतिरश्वमेधमसृजत' इति ॥ ४३–४४ ॥

तब अपने कुल की वृद्धि चाहने वाले राजा दशरथ ने होता को पूर्व की, अध्वर्यु को पश्चिम की, ब्रह्मा को दक्षिण की ।

और उद्गाता को दक्षिण की दिशा दक्षिणा में दी । क्योंकि पूर्वकाल में स्वयम्भू ब्रह्मा ने जो महायज्ञ अश्वमेध किया था उसमें इसी प्रकार दक्षिणा का विधान किया था ॥ ४३–४४ ॥

क्रतुं समाप्य तु तदा न्यायतः पुरुषर्षभः ।
ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः ॥ ४५ ॥

दानानन्तरकालिकब्रह्मणोक्तिमाह (?) क्रतुमिति । यदा कुलवर्द्धनः पुरुषर्षभ पुरुषश्रेष्ठो राजा न्यायतः यथाविधि क्रतुं समाप्य ऋत्विग्भ्यस्तां पूर्वोक्तां धरां पृथ्वीं हर्षतो ददौ । तुशब्द एवार्थे हिर्हर्षद्योतकः ॥ ४५ ॥

पुरुषश्रेष्ठ कुल की वृद्धि चाहने वाले राजा दशरथ ने विधिपूर्वक यज्ञ को पूर्ण करके उन ऋत्विजों को पृथ्वी दान किया ॥ ४५ ॥

एवं दत्त्वा प्रहृष्टोऽभूच्छ्रीमानिक्ष्वाकुनन्दनः ।
ऋत्विजस्त्वब्रुवन्सर्वे राजानं गतकिल्विषम् ॥ ४६ ॥
भवानेव महीं कृत्स्नामेको रक्षितुमर्हति ।

तदैव सर्वे ऋत्विजःगतकिल्विष पापरहितं राजानं सर्वे ऋत्विजोऽब्रुवन् ।

सार्धश्लोक एकान्वयी। तदुक्तिमेवाह श्लोकत्रयेण एकः अखण्डमण्डलेश्वरो भवानेव कृत्स्नां महीं रक्षितुमर्हति। तुशब्दस्तदार्थे ॥ ४६ ॥

इक्ष्वाकु वंश को आनन्दित करनेवाले दशरथ इस प्रकार दान देकर बड़े हर्षित हुए। तदनन्तर निष्पाप राजा से सब ऋत्विओं ने कहा कि आप हीं अकेले इस समस्त पृथ्वी की रक्षा करने में सक्षम हैं ॥ ४६ ॥

न भूम्या कार्यमस्माकं न हि शक्ताः स्म पालने ॥ ४७ ॥
रताः स्वाध्यायकरणे वयं नित्यं हि भूमिप।
निष्क्रयं किञ्चिदेवेह प्रयच्छतु भवानिति ॥ ४८ ॥
मणिरत्नं सुवर्णं वा गावो यद्वा समुद्यतम्।
तत्प्रयच्छ नृपश्रेष्ठ धरण्या न प्रयोजनम् ॥ ४९ ॥

नेति। हे भूमिप भूम्याऽस्माकं न कार्यं न प्रयोजनम् हि यतः पालने वयं न शक्तास्तत्रापि हेतुः हि यतः स्वाध्यायकरणे वेदाध्यापनादौ वयं नित्यं रताः। इति अतः इह अस्मिन्नेव समये किञ्चित् यथाकामं निष्क्रयं दत्तपृथ्वीमूल्यं भवान् प्रयच्छतु। तदेवाह मणिरत्नं मणिश्रेष्ठं सुवर्णं च गावश्च यत् अन्यत्समुद्यतं अस्मदर्थमुपस्थापितं च हे नृपश्रेष्ठ तदस्माद्यु चितं प्रयच्छ देहि धरण्या पृथिव्या न प्रयोजनं नास्मत्कार्यसिद्धिः एतेन तत्रस्थब्राह्मणानां संतोषातिशयः सूचितः ॥ ४७–४९ ॥

न तो हमें भूमि की आवश्यकता है और न तो हम इसकी रक्षा कर ही सकते हैं।

हे राजन् ! हम नित्य वेदाध्ययन में लगे रहने वाले हैं इसलिए आप इसके निष्क्रय रूप में कुछ धन हमें दे दें।

हे नृपश्रेष्ठ ! मणि, रत्न, सुवर्ण, गौ अथवा जो कुछ भी उपलब्ध हो वह हमें दीजिए मुझे पृथ्वी नहीं चाहिये ॥ ४७–४९ ॥

एवमुक्तो नरपतिर्ब्राह्मणैर्वेदपारगैः।
गवां शतसहस्राणि दश तेभ्यो ददौ नृपः ॥ ५० ॥
दशकोटि सुवर्णस्य रजतस्य चतुर्गुणम्।

एवमनेन प्रकारेण वेदपारगैर्ब्राह्मणैरुक्तो नरपतिः राजा यद्वा चक्रवर्तीत्यर्थः। नृपो दशरथः गवां दश दशगुणितानि शतसहस्राणि दशलक्षगवीरित्यर्थः। सुवर्णस्य सुवर्णमुद्रायाः दशकोटीः। रजतस्य

रजतमुद्रायाः चतुर्गुणं चत्वारिंशत्कोटिमित्यर्थः तेभ्यः ऋत्विग्भ्यो ददौ ॥ ५० ॥

वेद के पारगामी ब्राह्मणों के ऐसा कहने पर राजा ने उन्हें दश लक्ष गौ दिया और दश करोड़ सुवर्ण और उसकी चौगुनी चाँदी की मुद्रायें दीं ॥ ५० ॥

ऋत्विजस्तु ततः सर्वे प्रददुः सहिता वसु ॥ ५१ ॥
ऋष्यश्रृङ्गाय मुनये वसिष्ठाय च धीमते ।

ऋत्विज इति । ततः राजदत्तदक्षिणास्वीकारानन्तरमेव सहिताः मिलिताः सर्वे ऋत्विजः मुनये मननशीलाय धीमते प्रशस्तबुद्धियुक्ताय ऋष्यश्रृङ्गाय वशिष्ठाय च वसु सर्वं प्राप्तं धनं प्रददुः तयोरग्रे स्थापयामासुः । तुशब्द एवार्थे ॥ ५१ ॥

तदनन्तर समस्त ऋत्विजों ने मिलकर मुनि ऋष्यश्रृङ्ग और बुद्धिमान् वसिष्ठ को दे दिया ॥ ५१ ॥

ततस्ते न्यायतः कृत्वा प्रविभागं द्विजोत्तमाः ॥ ५२ ॥
सुप्रीतमनसः सर्वे प्रत्यूचुर्मुदिता भृशम् ।

तत इति । ततः द्रव्यस्थापनानन्तरं सर्वे द्विजोत्तमाः ब्राह्मणा मुनयो न्यायतः यथाशास्त्रं प्रविभागं कृत्वा ऋष्यश्रृङ्गवसिष्ठाभ्यां कारयित्वा भृशं सुप्रीतमनसः सन्तः प्रत्यूचुः कृत्वेत्यत्र अन्तर्भावितणिजर्थः ॥ ५२ ॥

तब सब प्रसन्नचित्त हुए वे श्रेष्ठ ब्राह्मण न्यायपूर्वक विभाजन करके बोले कि हे राजन् हम सब मोद से भर गये हैं ॥ ५२ ॥

ततः प्रसर्पकेभ्यस्तु हिरण्यं सुसमाहितः ॥ ५३ ॥
जाम्बूनदं कोटिसंख्यं ब्राह्मणेभ्यो ददौ तदा ।

तत इति । ततः ऋत्विग्दक्षिणादानानन्तरं तदा तत्प्रसादकाले सुसमाहितः एकाग्रचित्तो राजा प्रसर्पकेभ्यो यज्ञदर्शनार्थमागतेभ्यः ब्राह्मणेभ्यः कोटिसंख्यं जाम्बूनदं जम्बूनदीसंभवं हिरण्यं सुवर्णं ददौ विभज्य यथाकामं समर्पयामास । तुशब्देन अन्येभ्योऽपि यथाकामं ददौ । कोटिशब्दोऽनन्तवाची ॥ ५३ ॥

तदनन्तर राजा ने यज्ञ देखने के लिए आये हुए ब्राह्मणों को एक करोड़ संख्या के जाम्बूनद (उत्तम कोटि के सुवर्ण) का सावधान चित्त से दान किया ॥ ५३ ॥

दरिद्राय द्विजायाथ हस्ताभरणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
कस्मैचिद्याचमानाय ददौ राघवनन्दनः ।

दरिद्रायेति । अथ सर्वसंतोषप्रापणानन्तरम् उत्तमं हस्ताभरणं याचमानाय कस्मैचिद्द्विजाय राघवनन्दनः रघुकुलवर्धनो दशरथो ददौ ॥ ५४ ॥

किसी याचक दरिद्र ब्राह्मण को उसकी याचना सुनकर उत्तम हस्ताभरण (कङ्कण) राजा दशरथ ने दिया ॥ ५४ ॥

ततः प्रीतेषु विधिवद्द्विजेषु द्विजवत्सलः ॥ ५५ ॥
प्रणाममकरोत्तेषां हर्षव्याकुलितेन्द्रियः ।

तत इति । ततः हस्ताभरणदानानन्तरं द्विजेषु विधिवत्प्रीतेषु प्रसादितेषु द्विजवत्सलो हर्षपर्याकुलेक्षणो राजा तेषां द्विजानां प्रणाममकरोत् ॥ ५५ ॥

इसके बाद ब्राह्मणों से प्रेम करनेवाले राजा दशरथ ने ब्राह्मणों के प्रसन्न हो जाने के बाद हर्ष से व्याकुल इन्द्रियों वाले होकर सब लोगों को विधिवत् प्रणाम किया ॥ ५५ ॥

तस्याशिषोऽथ विविधा ब्राह्मणैः समुदाहृताः ॥ ५६ ॥
उदारस्य नृवीरस्य धरण्यां पतितस्य च ।

तस्येति । उदारस्य अदेयवस्त्वभाववतः धरण्यां प्रणतस्य विप्रोद्देश्यकसाष्टाङ्गप्रणाम कुर्वतः नृवीरस्य वीरपुरुषस्य तस्य प्रसिद्धस्य राज्ञः विविधा अनेकप्रकारा अथाशिषः परममङ्गलाशीर्वादाः ब्राह्मणैः समुदाहृताः सम्यगुच्चारिताः अशोभन्तेति शेषः ॥ ५६ ॥

तदनन्तर ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के आशिर्वाद दिये जो उदार मनुष्यों में शूर, और ब्राह्मणों के सामने पृथ्वी पर दण्डवत् प्रणाम कर रहा था ॥ ५६ ॥

ततः प्रीतमना राजा प्राप्य यज्ञमनुत्तमम् ॥ ५७ ॥
पापापहं स्वर्नयनं दुस्तरं पार्थिवर्षभैः ।

तत इति । अनुत्तमं न उत्तमं यस्मात् सर्वोत्तममित्यर्थः । पापापहं स्वनित्यपुत्रवियोगहेतुभूतविघ्नध्वंसकम् स्वर्नयनं प्राकृतजनानां स्वर्गप्रापकम् पार्थिवर्षभैः खण्डमण्डलेश्वरश्रेष्ठैर्दुस्तरं दुष्प्रापं यज्ञं प्राप्य राजा ततः ब्राह्मणाशीर्वादश्रवणात् प्रीतमनाः अतिप्रसन्नचितो बभूवेति शेषः ॥ ५७

तदनन्तर राजा दशरथ उस उत्तम यज्ञ को प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए जो

पापों को काटनेवाला, स्वर्ग देनेवाला, और अन्य श्रेष्ठ राजाओं के बूते के बाहर था ॥ ५७ ॥

ततोऽब्रवीदृष्यश्रृङ्गं राजा दशरथस्तदा ॥ ५८ ॥
कुलस्य वर्धनं त्वत्तु कर्तुमर्हसि सुव्रत ।

अश्वमेधसमाप्त्युत्तरकालिकं वृत्तमाह—तत इति। तदा साङ्गाश्वमेधसमाप्त्यनन्तरकाले ततः सुमन्त्रवचनस्मरणात् राजा दशरथः ऋष्यश्रृङ्गमब्रवीत् । तद्वचनमेवाह हे सुव्रत शोभनो व्रतः संकल्पो यस्मात् ईप्सितपूर्तिसंपादकेत्यर्थः कुलस्य वर्द्धनं यत् तत्कर्म कर्तुं त्वमर्हस्येव तुशब्दः एवार्थे ॥ ५८ ॥

इसके बाद राजा दशरथ ने ऋष्यश्रृङ्ग से कहा हे सुव्रत ! कुल की वृद्धि के लिए जो विधि है आप अब उसे कीजिए ॥ ५८ ॥

तथेति च स राजानमुवाच द्विजसत्तमः ।
भविष्यन्ति सुता राजंश्चत्वारस्ते कुलोद्वहाः ॥ ५९ ॥

तथेति । द्विजसत्तमो द्विजश्रेष्ठः स प्रसिद्धः ऋष्यश्रृङ्गः हे राजन् तथा तत्कर्माहं करिष्यामि येन कर्मणा कुलोद्वहाः चत्वारस्ते सुताः भविष्यन्ति इति राजानमुवाच । चशब्दो येनेत्यर्थे ॥ ५९ ॥

श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋषि ने 'अच्छा' कह कर राजा से कहा कि हे राजन्, कुल को बढ़ानेवाले चार पुत्र आपको होंगे ॥ ५९ ॥

स तस्य वाक्यं मधुरं निशम्य प्रणम्य तस्मै प्रयतो नृपेन्द्रः ।
जगाम हर्षं परमं महात्मा तमृष्यश्रृङ्गं पुनरप्युवाच ॥ ६० ॥

स इति। महात्मा स प्रसिद्धो नृपेन्द्रो राजराजो दशरथः तस्य ऋष्यश्रृङ्गस्य मधुरं वाक्यं निशम्य श्रुत्वा परममतुलं हर्षं जगाम प्राप । तमनुकूलयितुं प्रणम्य नमस्कृत्य प्रयत मत्पुत्रप्राकट्यार्थं प्रयत्नं कुरु इति तमृष्यश्रृङ्गं पुनःपुनरुवाच । उरित्यर्थे (?) अपिः पुनरर्थे ॥ ६० ॥

राजा दशरथ ने ऋष्यश्रृङ्ग के मधुर वचन को सुनकर प्रणाम किया । महात्मा, यत्नवान्, नरेन्द्र परम हर्ष से युक्त हो गया और ऋष्यश्रृंग से पुनः बोला ॥ ६० ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः

मेधावी तु ततो ध्यात्वा स किञ्चिदिदमुत्तरम् ।
लब्धसञ्ज्ञस्ततस्तं तु वेदज्ञो नृपमब्रवीत् ॥ १ ॥

मेधावीति । ततः राजवचनश्रवणानन्तरमेव मेधावी परमबुद्धिमान् वेदज्ञः निखिलवेदशब्दार्थतत्त्वज्ञाता अत एव लब्धसंज्ञः लब्धा विचारेण प्राप्ता संज्ञा सम्यग्ज्ञानं येन अत एव ततः सकलयागविस्तारकर्ता स ऋष्यश्रृङ्गः उत्तरं रामप्राकट्यहेतुभूतकरिष्यमाणकृत्यं किंचित्काल ध्यात्वा विचार्य इदं वचनं नृपमब्रवीत् तुशब्द एवार्थे ॥ १ ॥

तब बुद्धिमान, वेद जाननेवाले ऋषि ने उत्तर देने के लिए कुछ देर तक ध्यान किया और वस्तु स्थिति समझ कर राजा से बोले ॥ १ ॥

इष्टिं तेऽहं करिष्यामि पुत्रीयां पुत्रकारणात् ।
अथर्वशिरसि प्रोक्तैर्मन्त्रैः सिद्धां विधानतः ॥ २ ॥

तदुक्तिमेवाह—इष्टिमिति । तं पुत्रकारणान्नित्यपुत्रप्रकटनार्थं पुत्रीयां पुत्रप्राकट्य हेतुभूतां अथर्वशिरसि अथर्ववेदे प्रोक्तैः पुत्रेष्टिसाधकत्वेन निर्णीतैर्मन्त्रैः सिद्धां निष्पाद्यामिष्टिं विधानतः यथाविधि अहं करिष्यामि ॥ २ ॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र के लिए मैं पुत्रेष्टि करूँगा । जो अथर्वशीर्ष में पठित मन्त्रों से होती है और जो विधानतः मुझे सिद्ध है ॥ २ ॥

ततः प्राक्रमदिष्टिं तां पुत्रीयां पुत्रकारणात् ।
जुहावाग्नौ च तेजस्वी मन्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ३ ॥

तत इति । ततः इष्टिं करिष्यामीत्युत्तरानन्तरं पुत्रकाराणात्तां पुत्रीयामिष्टिं तेजस्वी ऋष्यश्रृङ्गः प्राक्रमत् मन्त्रदृष्टेन वेदबोधितेन कर्मणा विधिना जुहाव च ॥ ३ ॥

तदनन्तर, पुत्र के लिए उस पुत्रेष्टि का आरम्भ किया गया । और उस तेजस्वी ने मन्त्र में देखे गये क्रम के अनुसार अग्नि में आहुति दी ॥ ३ ॥

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
भावप्रतिग्रहार्थं वै समवेता यथाविधि ॥ ४ ॥

ततः सगन्धर्वाः गन्धर्वसहिता देवाश्च सिद्धा सिद्धगणाश्च परमर्षयश्च भागप्रतिग्रहार्थं यथाविधि समवेताः प्रकटीभूय यागे स्थिताः ॥ ४ ॥

इसके बाद वे गन्धर्वों के साथ देवता, सिद्ध और महर्षि गण राजा के आदर भाव के ग्रहण के लिए यज्ञस्थान में एकत्रित हुए ॥ ४ ॥

ताः समेत्य यथान्यायं तस्मिन्सदसि देवताः ।
अब्रुवँल्लोककर्तारं ब्रह्माणं वचनं ततः ॥ ५ ॥

ता इति । तस्मिन्प्रसिद्धे सदसि यागसभायां ता आगता देवताः यथान्यायं समेत्य ब्रह्मसमीपं प्राप्य लोककर्तारं लोकानां कर्तारं किंच लोकनं लोको दृष्टिः तत्कर्तारं यज्ञद्रष्टृत्वेनाहूतं साकेतस्थब्रह्माणमित्यर्थः । महत्सर्वप्रशंसनीय वचनमब्रुवन् ॥ ५ ॥

तब वे देवता यथा क्रम उस सदोमण्डप में एकत्रित होकर लोकों के रचनेवाले ब्रह्मा से बोले ॥ ५ ॥

भगवंस्त्वत्प्रसादेन रावणो नाम राक्षसः ।
सर्वान्नो बाधते वीर्याच्छासितुं तं न शक्नुमः ॥ ६ ॥

तदाकारमाह—भगवन्निति । हे भगवन् त्वत्प्रसादेन त्वत्कृपया प्राप्तं यद्वीर्यं साकेताधीशातिरिक्तसर्वावध्यत्वं तस्माद्वीर्यात् नोऽस्माकं विहारास्पदीभूताः ये सर्वलोकास्तान् रावणो नाम राक्षसो बाधते तं रावणं शासितुं स शक्नुमः ॥ ६ ॥

हे भगवन् आपकी प्रसन्नता से वरदान पाकर रावण नाम का राक्षस हम सबको पराक्रम से पीड़ा दे रहा है और हम उसे दण्डित करने में समर्थ नहीं हैं ॥

त्वया तस्मै वरो दत्तः प्रीतेन भगवंस्तदा ।
मानयन्तश्च तं नित्यं सर्वं तस्य क्षमामहे ॥ ७ ॥

तदेव विशदयन्नाह—त्वयेति । हे भगवन् प्रीतेन त्वया पुरा पूर्वं अस्मै वरो दत्तः अतस्तं वरं नित्य मानयन्तो वयं तस्य क्षमामहे । तस्येति सम्बन्धसामान्ये षष्ठी । अपराधमिति शेषो वाचो हेतौ ॥ ७ ॥

उस समय (तप के समय) प्रसन्न होकर आपने उसे वरदान दिया । हम

सब उसके गौरव की रक्षा के लिए रावण के समस्त अत्याचारों पर क्षमा ही कर देते हैं ॥ ७ ॥

उद्वेजयति लोकांस्त्रीनुच्छ्रितान्द्वेष्टि दुर्मतिः ।
शक्रं त्रिदशराजानं प्रधर्षयितुमिच्छति ॥ ८ ॥

उद्वेजयतीति । उच्छ्रितान्समृद्धान् त्रीन् लोकान् दुर्मतिः द्वेष्टि अत एव उद्वेजयति चालयति त्रिदशराजानमस्मदंशभूत शक्रमपि प्रधर्षयितुं पराभावयितुमिच्छति । समासान्तविधेरनित्यत्वाट्टजभावः ॥ ८ ॥

दुष्टबुद्धि वह रावण तीनों लोकों को उद्विग्न कर रहा है, बड़ों से द्वेष करता है और देवराज इद्र पर मी प्रभाव डालना चाहता है ॥ ८ ॥

ऋषीन्यक्षान्सगन्धर्वान्ब्राह्मणानसुरांस्तदा ।
अतिक्रामति दुर्धर्षो वरदानेन मोहितः ॥ ९ ॥

ऋषीनिति । दुर्धर्षो दुष्टस्वभावः अत एव वरदानेन मोहितः रावणः ऋष्यादीनतिक्रामति बाधते ॥ ९ ॥

वरदान से मोहित और दुर्धर्ष रावण ऋषियों, यक्षों, गन्धर्वों, ब्राह्मणों और असुरों का भी अतिक्रमण (अनादर) करता है ॥ ९ ॥

नैनं सूर्यः प्रतपति पार्श्वे वाति न मारुतः ।
चलोर्मिमाली तं दृष्ट्वा समुद्रोऽपि न कम्पते ॥ १० ॥

नैनमिति । एनं रावणं सूर्यो न प्रतपति न संतापयति एतद्भिया एतत्संचारादिसमये मन्दकिरणो भवतीत्यर्थः । पार्श्वेऽस्य समीपे मारुतो वायुर्न वाति शनैर्वातीत्यर्थः । चलोर्मिमाला स्वाभाविकचञ्चलतरङ्गसमूह-विशिष्टोऽपि समुद्रस्त दृष्ट्वा न कम्पते स्थिरतरङ्गो भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

इसके समीप सूर्य भी प्रकृष्ट ताप नहीं करते, वायु मी तीव्र नहीं बहता; सदा चञ्चल लहरों वाला समुद्र भी उसे देखकर प्रशान्त हो कांपता तक नहीं है ॥ १० ॥

तन्महन्नो भयं तस्माद्राक्षसाद्घोरदर्शनात् ।
वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि ॥ ११ ॥

तदिति । घोरदर्शनाद्राक्षसात्प्राप्तरक्षःस्वभावाद्रावणाद्यन्महद्भय-मस्मदंशानां भीतिः तदस्माकमेव भयं तस्माद्धेतोः हे भगवन् तस्य रावणस्य वधार्थमुपायं यत्नं कर्तुं त्वमर्हसि योग्योऽसीत्यर्थः ॥ ११ ॥

इसलिए हे भगवन् ! उस भयङ्कर दिखाई पड़नेवाले राक्षस से हम लोगों को बहुत बड़ा भय उत्पन्न हो गया है। अतः आप उसके वध के लिए उपाय कीजिए ॥ ११ ॥

एवमुक्तः सुरैः सर्वैश्चिन्तयित्वा ततोऽब्रवीत् ।
हन्तायं विदितस्तस्य वधोपायो दुरात्मनः ॥ १२ ॥

एवमिति। सर्वैः सुरैरेवमनेन प्रकारेण उक्तो ब्रह्मा ततो देवोक्त्य-नन्तरं चिन्तयित्वा पूर्ववृत्तमनुस्मृत्य अब्रवीत्। तद्वचनमेवाह दुरात्मनः प्राप्तरक्षस्स्वभावेन दुष्टमनसस्तस्य रावणस्य हन्त इति हर्षे अयं वक्ष्यमाणः वधोपायो विहित परमात्मनैव विनिर्मितः ॥ १२ ॥

सब देवताओं के निवेदन को सुनकर तथा विचार कर ब्रह्मा बोले कि उस दुरात्मा के वध का उपाय सोच लिया गया है ॥ १२ ॥

तेन गन्धर्वयक्षाणां देवतानां च रक्षसाम् ।
अवध्याऽस्मीति वागुक्ता तथेत्युक्तं च तन्मया ॥ १३ ॥

उपायं वक्तुमुपक्रमते—तेनेति। गन्धर्वयक्षाणां देवदानवरक्षसां च अवध्यः अहमस्मि स्यामिति वाक् तेन रावणेनउक्ता प्रार्थिता तत् तदा तथा इति मया उक्तम् चकारेणान्येभ्योऽपि स्वज्ञानविषयीभूतेभ्योऽभयं प्रार्थित तदपि तथेति मया उक्तम् ॥ १३ ॥

उसने गन्धर्व, यक्ष, देवता और राक्षसों से अवध्य होने का वरदान माँगा था और मैंने भी उसी रूप में 'तथास्तु' कह कर वरदान दिया था ॥ १३ ॥

नाकीर्तयदवज्ञानात्तद्रक्षो मानुषांस्तदा ।
तस्मात्स मानुषाद्वध्यो मृत्युर्नान्योऽस्य विद्यते ॥ १४ ॥

नाकीर्तयदिति। अवात् ईश्वरस्यापि रक्षकात् रामात् प्राप्तं यज्ज्ञानं नियोगः आज्ञा इतःप्रभृति प्राप्तरक्ष शरीरे मां न ज्ञास्यसीति संकुचितबोधो वा इतः प्रभृति मदतिरिक्तमेव ज्ञास्यसीति वा यस्मात्तद्रक्षो रावणस्तदा वरयाचनसमये मानुषान्परमात्मा नराकृतिरित्यागमगम्यं साकेताधीशं नित्यद्विभुजं नाकीर्तयत् तस्माद्धेतोः स मानुषात् नराकृतिपरमात्मनो रामात् वध्यः अन्यः तस्मात् भिन्नः अस्य मृत्युर्विघातको न विद्यते एतेन नाकीर्तयदवज्ञानादित्यस्य अवज्ञानात् अनादरात् मानुषान्नाकीर्तयदित्यर्थः

प्रत्युक्ता दशरथनहुषादीनां देवसाहाय्यकर्तृत्वस्य प्रसिद्धत्वान्मानुषानादरस्यासंभवात् ॥ १४ ॥

मनुष्यों को तुच्छ समझ कर अनादर करनेवाले राक्षस रावण ने मनुष्यों का नाम नहीं लिया। इसलिए वह मनुष्यों के हाथ मारा जायगा, दूसरे से उसकी मृत्यु नहीं हो सकती ॥ १४ ॥

एतच्छ्रुत्वा प्रियं वाक्यं ब्रह्मणा समुदाहृतम् ।
देवा महर्षयः सर्वे प्रहृष्टास्तेऽभवंस्तदा ॥ १५ ॥

एतदिति । तदा तस्मिन्काले ब्रह्मणा समुदीरितं सम्यक् कथितं प्रियं सर्वहितमेतत् वाक्यं ते तत्रागताः सर्वे महर्षयः सर्वे-देवाश्च श्रुत्वा प्रहृष्टा अभवन् ॥ १५ ॥

ब्रह्मा के मुख से कहे गए प्रिय वाक्य को सुनकर सब देव और महर्षि तब प्रसन्न हो गये ॥ १५ ॥

एतस्मिन्नन्तरे विष्णुरुपयातो महाद्युतिः ।
शङ्खचक्रगदापाणिः पीतवासा जगत्पतिः ॥ १६ ॥
वैनतेयं समारुह्य भास्करस्तोयदं यथा ।
तप्तहाटककेयूरो वन्द्यमानः सुरोत्तमैः ॥ १७ ॥

एतस्मिन्निति । एतस्मिन्नन्तरे देवब्रह्मसंवादानन्तरकाले महाद्युतिः समाधिकरहितप्रकाशविशिष्टः शङ्खादयो रेखारूपेण पाणावस्य सः पीतवासाः पीतवस्त्रधारी तप्तहाटककेयूरः सुरोत्तमैः वन्द्यमानः जगत्पतिः सर्वलोकस्वामी विष्णुः यथा तोयदं समारुह्य भास्करः (तथा) वैनतेयं समारुह्य उपयातः प्राप्तः ॥ १६-१७ ॥

उसी समय वहाँ बड़ी कान्तिवाले, जगत् के पालक विष्णु भगवान् आ पड़े, जिनके हाथ में शङ्ख, चक्र और गदा थी, जो पीत वस्त्र पहिने थे, जैसे मेघ के ऊपर सूर्य सवार रहते हैं वैसे गरुड़ पर चढ़े हुए थे, तप्त सुवर्ण के विजायठ पहिने थे और उत्तम देवता लोग उनको नमस्कार कर रहे थे ॥ १६–१७ ॥

ब्रह्मणा च समागत्य तत्र तस्थौ समाहितः ।
तमब्रुवन्सुराः सर्वे समभिष्टूय संनताः ॥ १८ ॥

ब्रह्मणेति । समाहितः ब्रह्मादिष्वपि स्वतेजसा परिपूर्णो तत्र यागे तस्थौ

तं रामं ब्रह्मणा सह सन्नता एव सर्वे सुराः समागम्य समीप प्राप्य समभिष्टूय सम्यक् स्तुत्वाऽब्रुवन् प्रार्थयाञ्चक्रुः । चशब्द एवार्थे ॥१८॥

विष्णु वहाँ आकर जब ब्रह्मा से मिलकर सावधान होकर बैठ गए तब नम्र भाव से उनकी स्तुति करके सब देवताओं ने इस प्रकार कहा ॥ १८ ॥

त्वां नियोक्ष्यामहे विष्णो लोकानां हितकाम्यया ।
राज्ञो दशरथस्य त्वमयोध्याधिपतेर्विभो ॥१९॥
धर्मज्ञस्य वदान्यस्य महर्षिसमतेजसः ।
अस्य भार्यासु तिसृषु ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु च ॥२०॥
विष्णो पुत्रत्वमागच्छ कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ।

प्रार्थनाकारमाह—त्वमिति । हे विष्णो ब्रह्मादित्रिदेवव्यापक विभो सर्वसामर्थ्यविशिष्ट लोकानां जनानां हितकाम्यया त्वां नियोक्ष्यामहे । अयोध्याधिपतेः प्रकटीभूतायोध्यास्वामिनः धर्मज्ञस्य सकलधर्मवेदितुः वदान्यस्य धर्मोपदेशकर्तुः अत एव महर्षिसमतेजसो राज्ञः महाराजाधिराजस्य तस्य प्रकटोभूतस्य दशरथस्य ह्रीश्रीकीर्त्युपमासु तिसृषु भार्यासु चतुर्विधं चतुरः अर्थधर्मकाममोक्षान् विशेषणं दधाति दानार्थं गृह्णाति तमात्मानं कृत्वा प्रकटय्य पुत्रत्वं आगच्छ लोकान्बोधय किञ्च आत्मानं साक्षात्स्वांशद्वारा च चतुर्विधं भरतादिसहितं कृत्वा प्रकटय्येत्यर्थः ॥१९-२०॥

हे विष्णो ! लोक-कल्याण की भावना से हम आपकी नियुक्ति कर रहे हैं कि आप अयोध्या के राजा, धर्म जाननेवाले, उदार और महर्षियों के समान तेजस्वी दरथ की ह्री, श्री और कीर्ति के समान तीनों पत्नियों में अपने चार रूप बनाकर पुत्र बनकर आवें ॥ १९–२० ॥

तत्र त्वं मानुषो भूत्वा प्रवृद्धं लोककण्टकम् ॥ २१ ॥
अवध्यं दैवतैर्विष्णो समरे जहि रावणम् ।

तत्रेति । हे विष्णो ब्रह्मादित्रिदेवव्यापक मानुषो नराकृतिर्नित्यद्विभुजः परमात्मा त्वं तत्र तासु भार्यासु भूत्वा साक्षात् स्वांशद्वारा च प्रकटीभूय प्रवृद्धं लोककण्टकं दैवतैः देवतानां इमे अधीशाः देवताः ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः दैवतानि देवाः ते च तानि चेत्येकशेषः तैरवध्यं रावणं समरे त्वं जहि ॥ २१ ॥

हे विष्णो ! वहाँ आप मनुष्य बनकर देवताओं से अवध्य लोककण्टक और बढ़े हुए (निर्मर्याद) रावण को समर भूमि में मारें ॥ २१ ॥

स हि देवान्सगन्धर्वान्सिद्धांश्च ऋषिसत्तमान् ॥ २२ ॥
राक्षसो रावणो मूर्खो वीर्योद्रेकेण बाधते ।

स इति । राक्षसः रघुनाथेच्छया प्राप्तरक्षःस्वभावः अत एव मूर्खः कार्याकार्यविचाररहितः स प्रसिद्धो रावणः वीर्योत्सेकेन वीर्यहेतुकगर्वविशिष्टेनैव देवादीन्बाधते हिशब्द एवार्थे ॥ २२ ॥

क्योंकि वह राक्षस, मूर्ख, रावण अपने बल के अहंकार से देव, गन्धर्व, सिद्ध और श्रेष्ठ ऋषियों को अति पीड़ित करता है ॥ २२ ॥

ऋषयश्च ततस्तेन गन्धर्वाप्सरसस्तथा ॥ २३ ॥
क्रीडन्तो नन्दनवने रौद्रेण विनिपातिताः ।

ऋषय इति । ततः प्राप्तरक्षस्स्वभावत्वात् ऋषयः नन्दनवने क्रीडन्तो गन्धर्वाप्सरसश्च रौद्रेण भयंकरेण तेन रावणेनैव प्रसिद्धौ विनिपातिताः हिंसिताः तुशब्दश्चार्थे तथाशब्द एवार्थे ॥ २३ ॥

उस क्रूर रावण ने ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं को जो इन्द्र के नन्दन वन में क्रीड़ा कर रही थीं मार डाला ॥ २३ ॥

वधार्थं वयमायातास्तस्य वै मुनिभिः सह ॥ २४ ॥
सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च ततस्त्वां शरणं गताः ।

वधार्थमिति । तस्य रावणस्य वधार्थं वधरूपप्रयोजनमुद्दिश्य वयं मुनिभिः सह सिद्धगन्धर्वयक्षाश्च आयाताः संमिलिताः ततो वै तस्मादेव हेतोः शरणं रक्षकं त्वां गताः प्राप्ताः ॥ २४ ॥

उसके वध की प्रार्थना के लिए हम सब मुनियों, सिद्धों, गन्धर्वों और यक्षों के साथ आए हैं और आपकी शरण में हैं ॥ २४ ॥

त्वं गतिः परमा देव सर्वेषां नः परंतप ॥ २५ ॥
वधाय देवशत्रूणां नृणां लोके मनः कुरु ।

त्वमिति । हे देव नित्यं क्रीडाविशिष्ट हे परंतप आश्रितशत्रुसूदन सर्वेषां नोऽस्माकं परमा उत्कृष्टा गतिः अतः नृणां लोके विद्यमानानां देवशत्रूणां वधाय त्वं मनः कुरु ॥ २५ ॥

हे शत्रुओं को ताप देनेवाले ! हे देव ! हम सब के एक आप ही सहायक

हैं ! देव शत्रुओं के वध के लिए आप मनुष्य लोक में चलने के लिए मन लगाइये ॥ २५ ॥

एवं स्तुतस्तु देवेशो विष्णुस्त्रिदशपुङ्गवः ॥ २६ ॥
पितामहपुरोगांस्तान्सर्वलोकनमस्कृतः ॥
अब्रवीत्त्रिदशान्सर्वान्समेतान्धर्मसंहितान् ॥ २७ ॥

एवमिति । देवेशः देवे नित्यं क्रीडने ईशः समर्थः त्रिदशा ब्रह्मादयः पुङ्गवा नसि प्रोता वृषभा इव यस्य सोविष्णुः विष्णुर्व्यापकः अत एव सर्वलोकनमस्कृतो पितामहपुरोगान् ब्रह्मप्रभृतीन् धर्मसंहितान् धर्मं प्राप्तान् समेतान् मिलितान् सर्वान् त्रिदशानब्रवीत् ॥ २६-२७ ॥

इस प्रकार प्रार्थना करने पर देवताओं के स्वामी, देवश्रेष्ठ ! विष्णु ने सब लोकों में नमस्कार पाने वाले ब्रह्मा को आगे लेकर चलने वाले देवताओं, और इकट्ठे हुए समस्त धार्मिकों से (इस प्रकार) बोले ॥ २६-२७ ॥

भयं त्यजत भद्रं वो हितार्थं युधि रावणम् ।
सपुत्रपौत्रं सामात्यं समन्त्रिज्ञातिबान्धवम् ॥ २८ ॥
हत्वा क्रूरं दुराधर्षं देवर्षीणां भयावहम् ।
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ॥ २९ ॥
वत्स्यामि मानुषे लोके पालयन्पृथिवीमिमाम् ।

तद्वचनमेवाह—भयमित्यादि । सार्द्धश्लोकद्वयेन भयं त्यजत वो युष्माकं भद्रं कल्याणं भवितेति शेषः । कल्याणहेतुमाह देवर्षीणां भयावहं भयप्रदं दुरात्मानं दुर्व्यसनं क्रूरं क्रूरकर्माणं सपुत्रपौत्रं पुत्रपौत्रसहितं सामात्यं अमात्यसहितं समन्त्रिज्ञातिबान्धवं मन्त्रिज्ञातिबान्धवसहितं रावणं वो हितार्थं युधि हत्वा क्रूरकर्महेतुभूतशरीरं संत्यज्य दशवर्षसहस्राणि दश-गुणितत्रिसहस्रवर्षाणि त्रिंशत्सहस्रवर्षाणीत्यर्थः दशवर्षशतानि दशगुणित-त्रिशतवर्षाणि च त्रिसहस्रवर्षाणीत्यर्थः । संकलनया त्रयस्त्रिंशत्सहस्र वर्षाणि इमां पृथिवीं पालयन्साक्षाद्रक्षन्मानुषे लोके मनुष्यदृष्टिपथे वत्स्यामि ॥ २८-२९ ॥

भय का परित्याग कीजिए, आपका कल्याण होगा, आपके हित के लिये मैं संग्राम में पुत्र, पौत्र, अमात्य, मन्त्री, जाति और बन्धुओं के सहित क्रूर, दुर्धर्ष,

देवर्षियों को भयभीत करने वाले रावण को मारकर ग्यारह सहस्र वर्ष तक मनुष्य लोक में पृथ्वी का पालन करते हुए निवास करूँगा ॥ २८–२९ ॥

एवं दत्त्वा वरं देवो देवानां विष्णुरात्मवान् ॥३०॥
मानुष्ये चिन्तयामास जन्मभूमिमथात्मनः ।

एवमिति । आत्मवान् आत्मसमानो नियम्यत्वेन सन्ति अस्येति आत्मवान् विष्णुः ब्रह्मादित्रिदेवव्यापकः एवमनेन प्रकारेण देवानां देवेभ्यो वरं दत्त्वा मानुषे लोके प्रकटीभूतामथ सकलमङ्गलरूपामात्मनो जन्मभूमिमयोध्यां चिन्तयामास सस्मार ॥ ३० ॥

इस प्रकार जितेन्द्रिय देवों के देव विष्णु ने वर प्रदान किया और मनुष्यलोक में अपनी जन्मभूमि के लिए चिन्ता करने लगे ॥ ३० ॥

ततः पद्मपलाशाक्षः कृत्वात्मानं चतुर्विधम् ॥३१॥
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ।

ततइति । ततः देवप्रार्थितस्वीकाराद्धेतोः तदा अयोध्यास्मृत्यनन्तरकाले पद्मपलाशाक्षः पद्मपत्रायतनेत्रो रामः चतुर्विधं साक्षात्स्वांशद्वारा च चतुर्मूर्तिमात्मानं कृत्वा पितृमनसि प्रापय्य नृपं राजराजं पितरं दशरथं रोचयामास प्रकाशयामास ॥ ३१ ॥

तदनन्तर कमलपत्र के समान नेत्रवाले विष्णु ने अपने को चार अंशों में बाँट कर राजा दशरथ को पिता के रूप में चुना ॥ ३१ ॥

ततो देवर्षिगन्धर्वाः सरुद्राः साप्सरोगणाः ।
स्तुतिभिर्दिव्यरूपाभिस्तुष्टुवुर्मधुसूदनम् ॥३२॥

तत इति । ततः प्रार्थितस्वीकारानन्तरं सरुद्राः ब्रह्मरुद्रविष्णुसहिताः साप्सरोगणा अप्सरोगणसहिताः देवर्षिगन्धर्वा दिव्यरूपाभिः दिव्यं प्राकृतविलक्षणं रूपमस्ति वर्णनीयत्वेन यासु ताभिः गुणबोधनवाक्यैः मधुसूदनं तुष्टुवुः। मधुसूदनशब्दार्थस्तु मधुं दैत्यं नारायणद्वारा सूदयति हिंसयतीति मधुसूदनः । यद्वा मधौ चैत्रे सः प्रादुर्भावो यस्य स मधुसूः ईश्वरानुत्कर्षणानिति पालयतीति उदनः मधुसूश्चासौ उदनश्च मधुसूदनः। यद्वा उना शंभुना उच्यते अहर्निशमुच्यते इति ऊत् रामतारकमन्त्रः तेनानिति संसारमृत्युवारणेन शरणागतान् पालयतीति ऊदनः मधुसूश्चासौ ऊदनश्च मधुसूदनस्तम् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर देव, ऋषि, गन्धर्व, रुद्र और अप्सराओं के गणों ने दिव्यरूपवाली स्तुतियों से मधुसूदन की स्तुति की ॥ ३२ ॥

तमुद्धतं रावणमुग्रतेजसं प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरद्विषम् ।
विरावणं साधु तपस्विकण्टकं तपस्विनामुद्धर तं भयावहम् ॥ ३३ ॥

स्तुत्यनन्तरं पुनः प्रार्थितं तदाह—तमिति । उद्धतं प्रसिद्धमुग्रतेजसमुत्कटप्रतापं प्रवृद्धदर्पं प्रभूतगर्वविशिष्टं त्रिदशेश्वरद्विषमिन्द्रद्रोहिणं अत एव निरावणं सर्वसज्जनदुःखप्रदं तपस्विकण्टकं तपस्विनां परमात्मविचारशीलानां कण्टकं शत्रुं विचारविघातकमित्यर्थः । तपस्विनां व्रतपरायणानां भयावहं भयप्रदं तं रावणं साधु यथा स्यात्तथा उद्धर विनाशय 'क्षुद्रे शत्रौ च कण्टकम्' इति वैजयन्ती ॥ ३३ ॥

हे भगवन् ! आप उजड्ड, उग्रप्रतापी, वर पाने से अभिमानी, देवताओं के राजा इन्द्र के शत्रु, संसार के रुलाने वाले, साधु और तपस्वियों के शत्रु तपस्वियों को भय देनेवाले रावण को इस लोक से उठा दीजिये ॥ ३३ ॥

तमेव हत्वा सबलं सबान्धवं विरावणं रावणमुग्रपौरुषम् ।
स्वर्लोकमागच्छ गतज्वरश्चिरं सुरेन्द्रगुप्तं गतदोषकल्मषम् ॥ ३४ ॥

तमेवेति । सबलं ससैन्यं सबान्धवं राक्षसधर्मत्वेन बन्धुतां प्राप्तं विरावणं सर्वसज्जनदुःखप्रदमुग्रपौरुषमतिबलवन्तं तं रावणं हत्वैव । गतदोषकल्मषं गतं नित्यं निवृत्तं दोषकल्मषं रागद्वेषादिरूपं यस्मात् तं सुरेन्द्रगुप्तं स्वर्लोकं गतज्वरः निर्वर्तितसुरसंतापस्त्वमागच्छ प्राप्नुहि अत्र ॥ ३४ ॥

उस लोक को रुलाने वाले, बड़े पुरुषार्थी रावण को सेना और बन्धु वर्ग के साथ मार कर क्रोध ज्वर से शान्त होकर दोष रहित, इन्द्र से रक्षित स्वर्ग लोक को फिर लौट आइए ॥ ३४ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥



पञ्चदशः सर्गः

ततो नारायणो विष्णुर्नियुक्तः सुरसत्तमैः ।
जानन्नपि सुरानेवं श्लक्ष्णं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

तत इति । ततः देवस्तवनानन्तरं सुरसत्तमैः सुरश्रेष्ठैः साकेतस्थैरित्यर्थः । नियुक्तः प्रार्थितः नारायणो विष्णुः जानन् वधोपायं विज्ञातापि एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण श्लक्ष्णं मनोहरं वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर नारायण विष्णु श्रेष्ठ देवताओं से नियुक्त होकर जानते हुए भी इस प्रकार मधुर प्रिय वचन बोले ॥ १ ॥

उपायः को वधे तस्य राक्षसाधिपतेः सुराः ।
यमहं तं समास्थाय निहन्यामृषिकण्टकम् ॥ २ ॥

तद्वचनमेवाह— उपाय इति । हे सुराः तस्य राक्षसाधिपतेः रावणस्य वधे उपायः कः यमुपायं आस्थाय संपाद्य ऋषिकण्टकं तं रावणमहं हन्याम् ॥ २ ॥

हे देवताओं, उस राक्षसों के राजा के वध का क्या उपाय है जिस उपाय का अवलम्ब करके ऋषियों के इस कण्टक को मैं मारूँ ॥ २ ॥

एवमुक्ताः सुराः सर्वे प्रत्यूचुर्विष्णुमव्ययम् ।
मानुषीं तनुमास्थाय रावणं जहि संयुगे ॥ ३ ॥

एवमिति । एवमनेन प्रकारेण उक्ताः विष्णुना पृष्टाः सर्वे सुराः अव्ययं प्राकृतदेशकालवस्तुपरिच्छेदशून्यं विष्णुं ब्रह्मादित्रिदेवव्यापकं रामं प्रत्यूचुः। तदुक्तिमेवाह-मानुषीमिति । मानुषींनित्यद्विभुजनराकृतिं स्वविग्रहं आस्थाय प्रकटायोध्यायां प्रकटय्य संयुगे सग्रामे रावणं जहि ॥ ३ ॥

ऐसा कहने पर देवताओं ने अनश्वर विष्णु से कहा कि मनुष्य रूप धारण करके रावण का संग्राम भूमि में वध कीजिए ॥ ३ ॥

स हि तेपे तपस्तीव्रं दीर्घकालमरिंदम ।
येन तुष्टोऽभवद् ब्रह्मा लोककृल्लोकपूर्वज ॥ ४ ॥

रावणस्यान्यावध्यत्वे हेतुमाह—स इति। हे अरिन्दम आश्रितारिनिवर्तक स रावणः दीर्घकलं तीव्रं तपस्तेपे हि प्रसिद्धमेतत् येन तपसा लोककृत्साक्षात् स्वांशद्वारा च लोककर्ता अत एव लोकपूर्वजः लोके सत्यपूर्वजः स्वांशद्वारा पूर्वं प्रादुर्भूतो ब्रह्मा तुष्टोऽभवत् ॥ ४ ॥

हे शत्रुसूदन ! रावण ने बहुत दिनों तक तीव्र तप किया जिससे लोक के पूर्वज और लोककर्ता ब्रह्मा सन्तुष्ट हो गए ॥ ४ ॥

संतुष्टः प्रददौ तस्मै राक्षसाय वरं प्रभुः।
नानाविधेभ्यो भूतेभ्यो भयं नान्यत्र मानुषात् ॥ ५ ॥

संतुष्ट इति। संतुष्टः तत्तीव्रतपसा संतोषं प्राप्तः प्रभुः समर्थः साकेतस्थो ब्रह्मा तस्मै संकेतादवतीर्णाय राक्षसाय रघुनाथेच्छया प्राप्तरक्षस्स्वभावाय रावणाय वरं प्रददौ। वरमेवाह—मानुषात् नराकृतिपरमात्मनोऽन्यत्र भूतेभ्यः तत्स्मृतिविषयेभ्यः नानाविधेभ्यः प्राकृतमनुष्यादिभ्यः देवादिभ्यः ब्रह्मादिभ्यश्च भयं न भवेदिति शेषः ॥ ५ ॥

समर्थ ब्रह्मा ने सन्तुष्ट होकर उस राक्षस को वरदान दे दिया कि मनुष्य को छोड़कर तुम्हें अन्य किसी भी प्राणी से मृत्यु का भय न होगा ॥ ५ ॥

अवज्ञाताः पुरा तेन वरदाने हि मानवाः।
एवं पितामहात्तस्माद्वरदानेन गर्वितः ॥ ६ ॥
उत्सादयति लोकांस्त्रीन्स्त्रियश्चाप्युपकर्षति।
तस्मात्तस्य वधो दृष्टो मानुषेभ्यः परंतप ॥ ७ ॥

ननु नराकृतिपरमात्मनोऽपि भयाभावः कुतो न याचितः इत्यत आह—अवेति। वरदाने वरदापने वरयाचनसमये। तेन रावणेन मानवाः मनुवंशत्वेन प्रसिद्धाः नराकृतिनित्यद्विभुजपरमात्मानो भवन्तो नैव ज्ञाताः हिशब्द एवार्थे। इतीति। एवमनेन प्रकारेण तस्मात्पितामहाद्ब्रह्मणः वरं प्राप्यैव दर्पितः प्राप्तगर्वः सः त्रीन् लोकानुत्सादयति पीडयति स्त्रियश्चापकर्षति हरति। उपसंहरन्नाह—तस्मादिति। हे परंतप तस्मादुक्तहेतोः तस्य रावणस्य वधः मानुषेभ्यः मनुवंशविशेषाद्भवतः दृष्टः ज्ञातः बहुत्वमादरार्थम् एतेन प्रकटीभूय तद्वधं कुरु इति प्रार्थना सूचिता ॥ ६-७ ॥

वरदान की वेला में उसने मनुष्यों को तुच्छ समझ कर उनका अनादर किया। इस प्रकार के पितामह से प्राप्त वरदान से गर्वित रावण तीनों लोकों को

उजाड़ रहा है और उनकी स्त्रियों का अपहरण कर रहा है। इसलिए हे शत्रु-सूदन उसका वध मनुष्य के हाथों होगा ॥ ६–७ ॥

इत्येतद्वचनं श्रुत्वा सुराणां विष्णुरात्मवान् ।
पितरं रोचयामास तदा दशरथं नृपम् ॥ ८ ॥

इतीति । आत्मवान् आत्मानो नियम्याः सन्ति अस्येति विष्णुः ब्रह्मादित्रिदेवव्यापको रामः इति अनेन प्रकारेण सुराणामेतद्वचनं श्रुत्वा नृपं राजराजं पितरं नित्यपितरं दशरथं रोचयामास ॥ ८ ॥

इस प्रकार जितेन्द्रिय विष्णु ने देवताओं का वचन सुनकर राजा दशरथ को पिता बनाने को रुचि की ॥ ८ ॥

स चाप्यपुत्रो नृपतिस्तस्मिन्काले महाद्युतिः ।
अयजत्पुत्रियामिष्टिं पुत्रेप्सुररिषूदनः ॥ ९ ॥

स इति । अपुत्रः पुत्रप्राकट्यरहितः महाद्युतिः पूर्वतोऽप्यतिदीप्तिमान् अरिसूदनः शत्रुनाशनः पुत्रेप्सुः पुत्रप्राकट्यकामः स प्रसिद्धो दशरथः पुत्रियां पुत्रप्राकट्यहेतुभूतामिष्टिं तस्मिन्काले अयजदकरोत् ॥ ९ ॥

वह बड़ा तेजस्वी राजा भी उस समय पुत्र रहित था और शत्रुओं का नाश करनेवाले राजा पुत्र की कामना से पुत्र देनेवाली इष्टि का यजन कर रहे थे ॥ ९ ॥

स कृत्वा निश्चयं विष्णुरामन्त्र्य च पितामहम् ।
अन्तर्धानं गतो देवैः पूज्यमानो महर्षिभिः ॥ १० ॥

स इति । विष्णुः ब्रह्मादित्रिदेवव्यापकः सः निश्चयं स्वप्रादुर्भावदार्ढ्यं कृत्वा पितामहं साकेतस्थब्रह्माणमामन्त्र्य संभाष्य च महर्षिभिः कृतसाक्षात्कारपरमात्मभिः ऋष्यशृङ्गादिभिः देवैः साकेतस्थब्रह्मादिभिश्च पूज्यमानः सन्नन्तर्धानं गतः प्राप्तः ॥ १० ॥

अपना निश्चय बताकर पितामह ब्रह्मा से आज्ञा लेकर देवताओं और ऋषियों से पूजा लेकर विष्णु अन्तर्हित हो गए ॥ १० ॥

ततो वै यजमानस्य पावकादतुलप्रभम् ।
प्रादुर्भूतं महद्भूतं महावीर्यं महाबलम् ॥ ११ ॥

ब्रह्मणा रघुनाथप्रादुर्भावसूचकं तेजोमयपायसं प्रेषितमिति वर्णयन्नाह —तत इत्यादि पञ्चभिः श्लोकैः । ततः ब्रह्मप्रेरणातः यजमानस्य पावकात्प्रादुर्भूतमतुलप्रभम् अतुला तोलयितुमशक्या प्रभा यस्य अत एव महत्

सर्वपूज्यं अत एव भूतं चिन्तनीयं महावीर्यं अघटितघटनापटीयो देहबलविशिष्टं महाबलं तादृशेन्द्रियबलविशिष्टम् । वैशब्दो हेत्वर्थे ॥ ११ ॥

इसके बाद यज्ञ के यजमान राजा दशरथ के अग्निकुण्ड से एक अतितेजस्वी बड़ा वीर, पराक्रमी महान् पुरुष प्रकट हुआ ॥ १४ ॥

कृष्णं रक्ताम्बरधरं रक्तास्यं दुन्दुभिस्वनम् ।
स्निग्धहर्यक्षतनुजश्मश्रुप्रवरमूर्धजम् ॥ १२ ॥

कृष्णं कृष्णवर्णं रक्ताम्बरधरं अरुणवस्त्रयुक्तं रक्ताक्षं अरुणनेत्रं दुन्दुभिस्वनं दुन्दुभिसदृशगम्भीरनादविशिष्टं स्निग्धाः दर्शनमात्रेण स्नेहोत्पादकाः हर्यक्षस्य सिंहस्येव तनुजाः लोमसमूहाश्च श्मनि मुखे श्रयते इति श्मश्रु च प्रवराः दीर्घाः मूर्धजाः केशाश्च यस्य तत् ॥ १२ ॥

जो श्यामवर्ण का था, रक्तवर्ण का वस्त्र धारण किए हुए था, जिसका मुख रक्तवर्ण का था, शब्द दुन्दुभि के सदृश थे, चिकने और सिंह के सदृश बाल थे, दाढ़ी और मूँछ थी ॥ १२ ॥

शुभलक्षणसंपन्नं दिव्याभरणभूषितम् ।
शैलशृङ्गसमुत्सेधं दृप्तशार्दूलविक्रमम् ॥ १३ ॥

शुभेति । शुभलक्षणसंपन्नं सामुद्रिकोक्तसल्लक्षणसंयुक्तं दिव्याभरणभूषितं प्राकृतविलक्षणभूषणभूषितम् शैलस्य पर्वतस्य शृङ्गवत्समुत्सेधमुन्नतं दृप्तो यः शार्दूलो व्याघ्रस्तद्विक्रम इव विक्रमः पादन्यासो यस्य तत् ॥ १३ ॥

शुभ लक्षणों से पूर्ण, दिव्य आभूषणों से विभूषित, पर्वत के शिखर के सदृश ऊँचा, मत्त सिंह जैसा पराक्रमी ॥ १३ ॥

दिवाकरसमाकारं दीप्तानलशिखोपमम् ।
तप्तजाम्बूनदमयीं राजतान्तपरिच्छदाम् ॥ १४ ॥

दिवाकरेति ।दिवाकरसमाकारं दिवाकरस्य सूर्यस्य समः तुल्य आकार आकृतिर्यस्य तेजोविशेषेण अलक्ष्यमाणावयवविभागक इत्यर्थः स एव दीप्तानलशिखोपमं तप्तजाम्बूनदमयीं तप्तं सद्यः प्रतप्तमिव यज्जाम्बूनदं सुवर्णं तन्मयीम् राजतो रजतविकारोऽन्तः उपरिभागवर्ती परिच्छद आच्छादनं यस्यास्ताम् ॥ १४ ॥

सूर्य के तुल्य आकार वाला, दीप्त अग्नि की शिखा के समान था और तप्त सुवर्ण की बनी, चाँदी के पात्र से ढँकी ॥ १४ ॥

दिव्यपायससंपूर्णां पात्रीं पत्नीमिव प्रियाम् ।
प्रगृह्य विपुलां दोर्भ्यां स्वयं मायामयीमिव ॥ १५ ॥

दिव्येति दिव्यपायससंपूर्णां प्राकृतविलक्षणपायसपूरिताम् प्रियां प्रीतिविषयीभूतां पत्नीमिव पत्नी सदृशीं विपुलां बृहतीं हस्तमात्रेण ग्रहीतुमशक्यमित्यर्थः । मायामयीं अद्भुतत्वेन मायारचितामिव सत्यामित्यर्थः ॥ १५ ॥

दिव्य खीर से पूर्ण पात्री को जो मानों मायामय हो अथवा माया करनेवाली अपनी प्रिय पत्नी के समान दोनों हाथों से पकड़कर ॥ १५ ॥

समवेक्ष्याब्रवीद्वाक्यमिदं दशरथं नृपम् ।
प्राजापत्यं नरं विद्धि मामिहाभ्यागतं नृप ॥ १६ ॥

पात्रीं दोर्भ्यां स्वयं प्रगृह्य समवेक्ष्य नृपं दर्शयित्वा नृपं दशरथमिदं वाक्यमब्रवीत् । तद्वाक्यमेवाह—हे नृप प्राजापत्यं प्रजापतिप्रेषितमिह भवत्समीपे अभ्यागतं प्राप्तं नरं पुरुषविशेषं मां विद्धि जानीहि ॥ १६ ॥

सामने राजा दशरथ को देखकर यह वचन बोला कि हे राजन् ! यहाँ पर आये हुए मुझको प्रजापति का भेजा हुआ पुरुष मानो ॥ १६ ॥

ततः परं तदा राजा प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
भगवन्स्वागतं तेऽस्तु किमहं करवाणि ते ॥ १७ ॥

तत इति । ततः नरवचनश्रवणानन्तरं कृताञ्जलिर्बद्धयुगलकरो राजा परं तृप्तिकरं वचः प्रत्युवाच सम्यगूचे । तदेवाह—ते तव स्वागतमागमनं अस्तु हे भगवन् तव अहं किं करवाणि ॥ १७ ॥

तदनन्तर राजा ने हाथ जोड़कर कहा कि हे भगवन् ! आपका स्वागत है, कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ ॥ १७ ॥

अथो पुनरिदं वाक्यं प्राजापत्यो नरोऽब्रवीत् ।
राजन्नर्चयता देवानद्य प्राप्तमिदं त्वया ॥ १८ ॥

अथो इति । अथो महाराजवचनानन्तरं प्राजापत्यो नरः इदं वक्ष्यमाणं वाक्यं पुनः अब्रवीत् । तदेवाह—हे राजन् देवान् अर्चयता पूजनं कारयता त्वया इदं स्वाभिलषितसूचकं अद्य प्राप्तम् ॥ १८ ॥

इसके बाद प्रजापति के समीप से आये हुए पुरुष ने इस प्रकार कहा कि हे राजन् ! देवताओं की अर्चना के फल स्वरूप आपको यह प्राप्त हुआ है ॥ १८ ॥

इदं तु नृपशार्दूल पायसं देवनिर्मितम् ।
प्रजाकरं गृहाण त्वं धन्यमारोग्यवर्धनम् ॥ १९ ॥

इदमिमि । देवनिर्मितं देवैः सुरैः निर्मितं प्रजाकरं पुत्रप्राकट्यनिमित्तं धन्यं धनहेतुम् अरोगस्य भाव आरोग्यं तस्य वर्द्धनम् इदं पायसं हे नरशार्दूल पुरुषश्रेष्ठ त्वं गृहाण ॥ १९ ॥

हे राजसिंह ! यह देवताओं की बनायी हुई खीर है इसे आप ग्रहण करें क्योंकि यह सन्तान, धन्यता और आरोग्य देनेवाली है ॥ १९ ॥

भार्याणामनुरूपाणामश्नीतेति प्रयच्छ वै ।
तासु त्वं लप्स्यते पुत्रान्यदर्थं यजसे नृप ॥ २० ॥

पायसग्रहणानन्तरं यत्कर्तव्यं तदाह—भार्याणामिति । अश्नीत यूयं भक्षयत इत्युक्त्वा अनुरूपाणां दिव्यपायसभक्षणयोग्यानां समानकुलोद्भवानामेवेत्यर्थः । भार्याणां प्रयच्छ भार्याणामिति संबन्धसामान्ये षष्ठी तासु पायसभक्षिकासु पुत्रान् त्वं लप्स्यसे एव यदर्थं यत्प्राकट्यार्थं यजसे । वैशब्द एवार्थे ॥ २० ॥

हे राजन् ! अपनी अनुरूप पत्नियों को 'इसे खाओ' ऐसे कहकर दे दो, उनसे तुम पुत्र प्राप्त करोगे जिसके लिये यज्ञ कर रहे हो ॥ २० ॥

तथेति नृपतिः प्रीतः शिरसा प्रतिगृह्य ताम् ।
पात्रीं देवान्नसंपूर्णां देवदत्तां हिरण्मयीम् ॥ २१ ॥
अभिवाद्य च तद्भूतमद्भुतं प्रियदर्शनम् ।
मुदा परमया युक्तश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥

तथेति । प्रीतः सर्वप्रीतिविषयीभूतो नृपतिः देवान्नसम्पूर्णां दिव्यपायसपूरितां देवदत्तां हिरण्मयीं हिरण्यविकाराम् तां विपुलां पात्रीं तथेत्युक्त्वा प्रतिगृह्य शिरसाऽभिवाद्य च अद्भुतं प्राकृतविलक्षणं प्रियदर्शनं मनोहररूपं भूतं प्राप्तं तत् प्राजापत्यनररूपं तेजश्च शिरसाभिवाद्य परमया मुदा युक्तः सन् अभिप्रदक्षिणं चकार । द्वयोरेकत्रान्वयः ॥ २१-२२ ॥

राजा दशरथ ने प्रसन्न होकर उस देवान्न से भरे देवताओं द्वारा भेजे गए सुवर्ण पात्र को ग्रहण करके शिर पर लगाया और उस अद्भुत और देखने में प्रिय लगनेवाले पुरुष को प्रणाम करके परम प्रसन्न होकर उसकी प्रदक्षिणा की ॥२१-२२

ततो दशरथः प्राप्य पायसं देवनिर्मितम् ।
बभूव परमप्रीतः प्राप्य वित्तमिवाधनः ॥ २३ ॥

तत इति । देवनिर्मितं पायसं ततः प्राजापत्यनराद्दशरथः प्राप्य वित्तं प्राप्याऽधन इव परमप्रीतो बभूव ॥ २३ ॥

तदनन्तर देवताओं द्वारा निर्मित पायस पाकर जैसे दरिद्र धन पाकर प्रसन्न होता है वैसे परम प्रसन्न हुये ॥ २३ ॥

ततस्तदद्भुतप्रख्यं भूतं परमभास्वरम् ।
संवर्तयित्वा तत्कर्म तत्रैवान्तरधीयत ॥ २४ ॥

तत इति । अद्भुतप्रख्यं अद्भुताकारविशिष्टं ततः पावकात् भूतं प्राप्तं परमभास्वरं तत् प्राजापत्यनररूपतेजः तत् पुत्रेष्टिरूपं कर्म संवर्तयित्वा संसाध्य फलं प्रापय्येत्यर्थः तत्रैव पावके एवान्तरधीयत ॥ २४ ॥

तदनन्तर अद्भुत स्वरूप और बड़ी कान्तिवाला वह दिव्य पुरुष उस खीर-देने रूप कर्म को पूरा करके वहीं अन्तर्धान हो गया ॥ २४ ॥

हर्षरश्मिभिरुद्योतं तस्यान्तःपुरमाबभौ ।
शारदस्याभिरामस्य चन्द्रस्येव नभोंऽशुभिः ॥ २५ ॥

हर्षरश्मिभिरिति । तस्य राज्ञः हर्षरश्मिभिः हर्षवर्धिताङ्गकान्तिभिरुद्योतमतिप्रकाशितम् अन्तःपुरम् अभिरामस्य परमानन्ददातुः पूर्णस्येत्यर्थः शारदस्य शरत्संबन्धिनः चन्द्रस्य अंशुभि उद्द्योतं नभ इव आबभौ ॥२५॥

उस राजा का रनिवास हर्ष की किरणों से ऐसा शोभित हुआ मानो शरद ऋतु के निर्मल चन्द्र की किरणों से आकाश शोभित हो रहा है ॥ २५ ॥

सोऽन्तःपुरं प्रविश्यैव कौसल्यामिदमब्रवीत् ।
पायसं प्रतिगृह्णीष्व पुत्रीयं त्विदमात्मनः ॥ २६ ॥

स इति । स राजाऽन्तःपुरं प्रविश्य कौसल्यामिदं वक्ष्यमाणमब्रवीत् तदेवाह आत्मनः पुत्रीयं पुत्रप्राकट्यहेतुभूतमिदं पायसं प्रतिगृह्णीष्व तुशब्देन नमस्कारादिकं कुर्वित्यर्थः एवोऽनुक्तसमुच्चयार्थः तेन अन्या राज्ञीः अपि यथोचितमब्रवीदित्यर्थः ॥ २६ ॥

वह राजा रनिवास में प्रवेश करके कौशल्या से बोला कि अपने पुत्र की उत्पत्ति के लिए यह पायस ग्रहण करो ॥ २६ ॥

कौसल्यायै नरपतिः पायसार्धं ददौ तदा।
अर्धादर्धं ददौ चापि सुमित्रायै नराधिपः ॥ २७ ॥
कैकेय्यै चावशिष्टार्धं ददौ पुत्रार्थकारणात्।
प्रददौ चावशिष्टार्धं पायसस्यामृतोपमम् ॥ २८ ॥
अनुचिन्त्य सुमित्रायै पुनरेव महामतिः।
एवं तासां ददौ राजा भार्याणां पायसं पृथक् ॥ २९ ॥

कौसल्यायै इति। तदा पायसप्राप्तिकाले-नरपतिः अमृतोपमं पायसार्धं पायसस्यार्धमंशम् महाभागमिति वक्ष्यमाणरामविशेषणात् ज्येष्ठपत्नीत्वाच्च कंचिदधिकमंशं पुत्रार्थकारणात् कौसल्यायै ददौ। ततोऽनुचिन्त्य अप्रकटितसाकेते एकः सुमित्रापुत्रः कौसल्यापुत्रानुयायी द्वितीयः सुमित्रापुत्रः केकयीपुत्रानुयायीति विचार्यैव अर्धात् कौसल्याभागतोऽर्धं कंचिन्न्यूनमंशं नराधिपः सुमित्रायै ददौ कौसल्यया दापयामासेत्यर्थः अन्तर्भावितणिजर्थः। ततोऽवशिष्टार्धम् अवशिष्टमर्धं कौसल्याभागतः कंचिन्न्यूनांशं कैकेय्यै महीपतिः ददौ दापयामासेत्यर्थः। पुनरेव पुनरपि एवोऽव्यर्थे अवशिष्टार्धं अवशिष्टस्य दत्तकैकेयीभागस्यार्धमंशं सुमित्रायै प्रददौ कैकेय्या प्रदापयामासेत्यर्थः। एवमनेन प्रकारेण भार्याणां पायसं पृथक्-पृथक् विभज्य राजा ददौ। अयं भावः पायसेऽष्टौ अंशाः कृताः तत्र पञ्चांशान् कौशल्यायै दत्तवान् कौशल्याभागतः सार्द्धमेकमंशं सुमित्रायै दापयामास कौसल्याभागत उर्वरितत्रीनंशान् कैकेय्यै दापयामास कैकयीभागात् सार्धमेकमंशं सुमित्रायै दापयामासेति सार्धत्रीन्स्वांशानेकीकृत्य कौसल्या बुभुजे तदेव रामप्रादुर्भावे निमित्तीभूतम् सार्धमेकं स्वांशमेकीकृत्य कैकेयी बुभुजे तदेव भरतप्रादुर्भावे निमित्तीभूतम् कौशल्यादत्तं सार्धमंशमेकीकृत्य सुमित्रा पूर्वं बुभुजे तदेव लक्ष्मणप्रादुर्भावे निमित्तीभूतम् ततः कैकेयादत्तं सार्धमंशं बुभुजे तदेव शत्रुघ्नप्रादुर्भावे निमित्तीभूतम् भरतलक्ष्मणप्रादुर्भावनिमित्तीभूतपायसयोः समत्वेऽपि रामोद्देश्यकभागांशप्रभावाल्लक्ष्मणेऽधिकप्रभावप्रतीतिः ॥ २७-२९ ॥

तब राजा ने आधा पायस कैकेयी को दे दिया और आधे का आधा सुमित्रा को भी दिया। बचे हुए चौथाई भाग का आधा भाग पुत्र के लिए कैकेयी को दिया और पुनः बचे हुए पायस का अमृत तुल्य आधा भाग समझ बूझकर

बुद्धिमान राजा ने सुमित्रा को दे दिया। इस प्रकार राजा ने उन पत्नियों को विभिन्न क्रम से पायस दिया ॥ २७–२९ ॥

ताश्चैव पायसं प्राप्य नरेन्द्रस्योत्तमस्त्रियः।
संमानं मेनिरे सर्वाः प्रहर्षोदितचेतसः ॥ ३० ॥

ता इति। नरेन्द्रस्य राजाधिराजस्य ताः रामादिप्रादुर्भावकर्त्र्यः उत्तमाः सर्वाः कौसल्यादयः स्त्रियः एवं रामादिप्रादुर्भावहेतुभूतं पायसं प्राप्यैव प्रहर्षोदितचेतसः प्रहर्षितचित्ताः सत्यः संमानं राजकृतपरमसत्कृतिं मेनिरे चशब्द एवार्थे ॥ ३० ॥

राजा दशरथ की उन सब उत्तम स्त्रियों ने इस प्रकार पायस प्राप्त कर अपना सम्मान माना और हर्ष से सबका चित प्रफुल्लित हो उठा ॥ ३० ॥

ततस्तु ताः प्राश्य तमुत्तमस्त्रियो महीपतेरुत्तमपायसं पृथक्।
हुताशनादित्यसमानतेजसोऽचिरेण गर्भान्प्रतिपेदिरे तदा ॥ ३१ ॥

तत इति। तदा पायसप्राप्त्यनन्तरकाले एव ततः पायसमाहात्म्यश्रवणात् हुताशनादित्यसमानतेजसः महीपतेरुत्तमाः स्त्रियः पृथक् यथोचितविभक्तं तत् राजदत्तमुत्तमं पायसं प्राश्य अचिरेण अदीर्घकालेन गर्भान्गर्भगतत्वेन प्रतीयमानान्स्वस्वपुत्रान् प्रतिपेदिरे प्रकटतः प्राप्तप्रायान् मेनिरे तुशब्द एवार्थे ॥ ३१ ॥

तदनन्तर दशरथ की उन उत्तमाङ्गनाओं ने पृथक् पृथक् उस पायस को खाकर अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विनी होकर शीघ्र ही गर्भ धारण किया ॥ ३१ ॥

ततस्तु राजा प्रतिवीक्ष्य ताः स्त्रियः प्ररूढगर्भाः प्रतिलब्धमानसाः।
बभूव हृष्टस्त्रिदिवे यथा हरिः सुरेन्द्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः ॥३२॥

तत इति। ततो गर्भधारणानन्तरमेव सुरेन्द्र इन्द्रः सिद्धर्षीणां गणाश्च तैरभिपूजितः राजा महाराजाधिराजदशरथः प्ररूढगर्भाः प्रादुर्भावप्राप्तरामादितेजस्काः अत एव प्रतिलब्धमानसाः प्राप्तमनोरथाः ताः साकेतात्प्रादुर्भूताः स्त्रियः वीक्ष्य त्रिदिवे हरिरिन्द्रो यथा इव हृष्टोऽत्यन्तहर्षं प्राप्तो बभूव तुशब्द एवार्थे ॥ ३२ ॥

तब राजा दशरथ उन तीनों पत्नियों को गर्भवती देखकर स्वस्थचित्त हो ऐसे सन्तुष्ट हुए जैसे देवेन्द्र, सिद्ध और ऋषिगणों से पूजित विष्णु ॥ ३२ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां पञ्चदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः

पुत्रत्वं तु गते विष्णौ राज्ञस्तस्य महात्मनः ।
उवाच देवताः सर्वाः स्वयंभूर्भगवानिदम् ॥ १ ॥

पुत्रत्वमिति । विष्णौ रामे महात्मनः सर्वपूज्यस्वरूपस्य तस्य प्रसिद्धस्य राज्ञो दशरथस्य पुत्रत्वं प्रकटपुत्रधर्मं गते प्राप्ते सत्येव भगवान् नियोजनसमर्थः स्वयंभूः ब्रह्मा सर्वाः देवता इदं वक्ष्यमाणं वचः उवाच ॥ १ ॥

उस महात्मा राजा दशरथ का पुत्र होना स्वीकार करके विष्णु के चले जाने के बाद भगवान् स्वयम्भू ब्रह्मा ने सब देवताओं से कहा ॥ १ ॥

सत्यसन्धस्य वीरस्य सर्वेषां नो हितैषिणः ।
विष्णोः सहायान्बलिनः सृजध्वं कामरूपिणः ॥ २ ॥

तद्वचनमेवाह—सत्येति । सत्यसन्धस्य सत्यप्रतिज्ञस्य वीरस्य वीरत्वविशिष्टस्य नोऽस्माकं सर्वेषां हितैषिणः विष्णोः ब्रह्मादित्रिदेवव्यापकस्य रामस्य सहायान् प्राकट्यावस्थायां तेन सह यन्ति गच्छन्तीति तान् बलिनः अतिबलवतः कामरूपिणः ईप्सितरूपधारणसमर्थान् सृजध्वं स्वान् स्वानंशान् प्रकटयध्वमित्यर्थः ॥ २ ॥

कि सत्यप्रतिज्ञ, धीर और हमलोगों के हित चाहने वाले विष्णु की सहायता के लिए बलवान् और इच्छा के अनुसार रूप बना सकने वालों की सृष्टि करो ॥२॥

मायाविदश्च शूरांश्च वायुवेगसमाञ्जवे ।
नयज्ञान्बुद्धिसंपन्नान्विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥ ३ ॥

तदेव विशदयन्नाह—मायेत्यादिचतुर्भिः । मायाविदः राक्षसादिनिर्मितदम्भवेदितान् शूरान् युद्धोत्साहविशिष्टान् जवे वायुवेगसमांश्च नयज्ञान् नीतिविज्ञान् बुद्धिसंपन्नान् परमबुद्धिमतः विष्णुतुल्यपराक्रमान् ॥ ३ ॥

जो मायावी, शूर, वेग में वायु के तुल्य, नीति जानने वाले, बुद्धिमान् और विष्णु के तुल्य पराक्रम करने वाले हों ॥ ३ ॥

असंहार्याानुपायज्ञान् सिंहसंहननान्वितान् ।
सर्वास्त्रगुणसंपन्नानमृतप्राशनानिव ॥ ४ ॥

असंहार्यानिति । असंहार्यान् शत्रुभिर्विनाशयितुमशक्यान् उपायज्ञान् शमादियत्नाभिज्ञान् सिंहसंहननान्वितान् सिंहसदृशावयवविशिष्टान् सर्वास्त्रगुणसंपन्नान् । सर्वैरस्त्रगुणैः प्रयोगोपसंहारादिभिर्युक्तान् अमृतप्राशनान् देवान् एव इवशब्द एवार्थे ॥ ४ ॥

और शत्रुओं से न हारने वाले, उपाय जानने वाले, सिंह के समान संघटित देहवाले, समस्त अस्त्र विद्या को जानने वाले, और अमृत पान करनेवालों के सदृश हों ॥ ४ ॥

अप्सरःसु च मुख्यासु गन्धर्वीणां तनूषु च ।
यक्षपन्नगकन्यासु ऋक्षविद्याधरीषु च ॥ ५ ॥
किन्नरीणां च गात्रेषु वानरीणां तनूषु च ।
सृजध्वं हरिरूपेण पुत्रांस्तुल्यपराक्रमान् ॥ ६ ॥

अप्सरस्स्वति । मुख्यासु अप्सरस्सु गन्धर्वीणां तनूषु च यक्षपन्नगकन्यासु च ऋक्षविद्याधरीषु च । किन्नरीणामिति । किन्नरीणां गात्रेषु च वानरीणां तनूषु च हरिरूपेण उपलक्षितान् तुल्यपराक्रमान् स्वस्वपितृसदृशानित्यर्थः किं च तुल्यपरान् तुल्यबलविशिष्टशत्रून् अपि आक्रमन्ते पराभावयन्तीति ते तान् । किंच स्वस्वप्रादुर्भावककुलेन तुल्यः पराक्रमो येषां तान् पुत्रान् तत्तत्पुत्रत्वेन प्रतीयमानान् सृजध्वं प्रकटयध्वम् ॥५-६॥

मुख्य अप्सराओं, गन्धर्वियों की देहों, यज्ञ और पन्नगों की कन्याओं, ऋक्ष और विद्याधरियों, तथा किन्निरियों के गोत्र और बानरियों के उदर से वानर रूप में अपने समान पराकम वाले पुत्रों को उत्पन्न करो ॥ ५-६ ॥

पूर्वमेव मया सृष्टो जाम्बवानृक्षपुङ्गवः ।
जृम्भमाणस्य सहसा मम वक्त्रादजायत ॥ ७ ॥

पूर्वमिति । ऋक्षपुङ्गवः ऋक्षश्रेष्ठः जाम्बवान् मया सृष्टः प्रादुर्भावितः प्रादुर्भाव प्रकारमाह-जृम्भमाणस्य मम वक्त्रात्सहसा शीघ्रम् अजायत प्रादुरभवत् ॥ ७ ॥

मैंने पहिले ही ऋक्षराज जाम्बवान् की रचना की है जो जँभाई लेते समय मेरे मुख से अचानक उत्पन्न हो गया है ॥ ७ ॥

ते तथोक्ता भगवता तत्प्रतिश्रुत्य शासनम् ।
जनयामासुरेवं ते पुत्रान्वानररूपिणः ॥ ८ ॥

त इति । भगवता ब्रह्मणा तथा तेन प्रकारेण उक्ताः ते सुराः तत् ब्रह्मोक्तं शासनं शिक्षां प्रतिश्रुत्याङ्गीकृत्य एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण वानररूपिणः पुत्रान् तत्तत्पुत्रत्वेन प्रतीयमानान् जनयामासुः प्रादुर्भावयांचक्रुः ॥ ८ ॥

भगवान् ब्रह्मा के आदेश को सुनकर और स्वीकार कर उन्होंने पूर्वोक्त प्रकार के वानर रूप में पुत्रों को उत्पन्न किया ॥ ८ ॥

ऋषयश्च महात्मानः सिद्धविद्याधरोरगाः ।
चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः ॥ ९ ॥

ऋषय इति । महात्मानः ऋष्यादयः सिद्धविद्याधरोरगाः चारणाश्च वनचारिणः वीरान्सुतान् ससृजुः ॥ ९ ॥

महात्मा, ऋषि, सिद्ध, विद्याधर, उरग और चारण नाम की जाति वाले देवों ने वानर रूप में वीर पुत्रों को जन्म दिया ॥ ९ ॥

वानरेन्द्रं महेन्द्राभमिन्द्रो वालिनमात्मजम् ।
सुग्रीवं जनयामास तपनस्तपतां वरः ॥ १० ॥

तदेव विशदयन्नाह—वानरेन्द्रमिति । महेन्द्राभं महेन्द्रः पर्वतविशेषः शक्रो वा तदाभं वानरेन्द्रं वालिनमिन्द्रो जनयामास तपतां वरः परमतेजस्वी तपनः सूर्यः सुग्रीवं जनयामास । न च तदसहायभूतस्य वालिनः सर्जनं विरुद्धं निरर्थकं चेति वाच्यम् । सुग्रीवविपत्तिसंपादनद्वारा सर्ववानरतत्सहचारित्वसंपादनहेतुत्वेन पुत्रादिद्वारा च एतस्यापि तत्सहचारित्वाक्षतेः ॥ १० ।

इन्द्र ने महेन्द्र पर्वत के सदृश विशाल वानरों के राजा वालि को जन्म दिया तथा तेजस्वियों में श्रेष्ठ सूर्य ने सुग्रीव को जन्म दिया ॥ १० ॥

बृहस्पतिस्त्वजनयत्तारं नाम महाकपिम् ।
सर्ववानरमुख्यानां बुद्धिमन्तमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

बृहस्पतिरिति । बृहस्पतिस्तु सर्ववानरमुख्यानां बुद्धिमन्तमत एव अनुत्तमं सर्वोत्कृष्टं तारं नाम महाकपिमजनयत् प्रादुरभावयत् ॥ ११ ॥

बृहस्पति ने तार नाम के महा कपि को जन्म दिया जो सब वानरों में मुख्य था और सबसे बड़ा बुद्धिमान था ॥ ११ ॥

धनदस्य सुतः श्रीमान्वानरो गन्धमादनः ।
विश्वकर्मा त्वजनयन्नलं नाम महाकपिम् ॥ १२ ॥

धनदस्येति । श्रीमान्परमैश्वर्यविशिष्टः गन्धमादनो गन्धमादनाख्यो वानरः धनदस्य कुबेरस्य सुतः प्रादुरभूदिति शेषः विश्वकर्मा तु नलं नाम महाहरिं महाकपिमजनयत् ॥ १२ ॥

कुबेर से गन्धमादन नाम के पुत्र ने जन्म लिया और विश्वकर्मा ने नल महाकपि को जन्म दिया ॥ १२ ॥

पावकस्य सुतः श्रीमान्नीलोऽग्निसदृशप्रभः ।
तेजसा यशसा वीर्यादत्यरिच्यत वीर्यवान् ॥ १३ ॥

पावकस्येति । श्रीमान् नित्यश्रीविशिष्टः अग्निसदृशी प्रभा यस्य सः पावकस्य सुतो नीलः तेजसा यशसा वीर्यात् अत्यरिच्यत विलक्षणं बभावित्यर्थः ॥ १३ ॥

अग्नि का पुत्र उसके समान कान्ति वाला, शोभावान् नील नाम का उत्पन्न हुआ जो बलवान, तेज यश और वीरता में पिता से अधिक था ॥ १३ ॥

रूपद्रविणसंपन्नावश्विनौ रूपसंमतौ ।
मैन्दं च द्विविदं चैव जनयामासतुः स्वयम् ॥ १४ ॥

रूपेति । रूपद्रविणसम्पन्नौ अश्विनौ रूपसंमतौ रूपयति प्रतिष्ठां प्रापयतीति रूपोऽर्थः रूपं सौन्दर्यं च तयोरेकशेषः ताभ्यां संमतौ युक्तौ एवं मन्दं द्विविदं च स्वयमेव जनयामासतुः ॥ १४ ॥

रूप और सम्पत्ति से परिपूर्ण अश्विनी कुमारों ने अपने समान रूपवान मैन्द और द्विविद नाम के वानरों को उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

वरुणो जनयामास सुषेणं नाम वानरम् ।
शरभं जनयामास पर्जन्यस्तु महाबलः ॥ १५ ॥

वरुण इति । सुषेणं नाम वानरं वरुणो जनयामास । महाबलः पर्जन्यः तदभि, मानिदेवस्तु शरभं जनयामास ॥ १५ ॥

वरुण ने सुषेण नाम के वानर को उत्पन्न किया । बड़े बलवान् पर्जन्य ने शरभ नाम के वानर को उत्पन्न किया ॥ १५ ॥

मारुतस्यौरसः श्रीमान्हनूमान्नाम वानरः ।
वज्रसंहननोपेतो वैनतेयसमो जवे ॥ १६ ॥

सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमान्बलवानपि ।

मारुतस्येति । श्रीमान्नित्यैश्वर्यविशिष्टः वज्रसंहननोपेत वज्रमपि स्पर्श-मात्रेण संहन्ति इति वज्रसंहननो देहः तेनोपेतः नित्यं युक्तः जवे वेगे वैनतेयः समो यस्य सः सर्ववानरमुख्येषु बुद्धिमानतिशयबुद्धिविशिष्टः बलवानतिशयबलविशिष्टश्च अपिश्चार्थे हनूमान्नाम वानरो मारुतस्य पवनस्यौरसः पुत्रोऽभवदिति शेषः ॥ १६ ॥

पवन ने बड़े सुन्दर हनुमान नाम के वानर को औरस पुत्र के रूप में उत्पन्न किया जो वज्र के तुल्य दृढ़ शरीर वाला और गरुड़ के समान वेग वाला, सब वानरों में प्रधान, बुद्धिमान और बलवान् भी था ॥ १६ ॥

ते सृष्टा बहुसाहस्रा दशग्रीववधोद्यताः ॥ १७ ॥
अप्रमेयबला वीरा विक्रान्ताः कामरूपिणः ।

त इति । अप्रमेयं बलं येषां ते वीराः शौर्यविशिष्टाः विक्रान्ता विशिष्टाः क्रान्ता पादविक्षेपा येषां ते कामरूपिणः ईप्सितरूपधारणसमर्थाः दशग्रीववधे उद्यताः दशग्रीवोपलक्षितरावणादिराक्षसहनने उद्युक्ताः बहुसाहस्राः अनेकसहस्रसंख्यातास्ते प्रसिद्धा वानराः सृष्टाः ॥ १७ ॥

वे दशकन्धर के वध के लिए सदा उद्यत, अतुलबली, वीर, पराक्रमी और मनचाहा रूप धरनेवाले अनेक सहस्र की संख्या में उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥

ते गजाचलसंकाशा वपुष्मन्तो महाबलाः ॥ १८ ॥
ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रमेवाभिजज्ञिरे ।

ते इति । गजाचलसंकाशाः वपुष्मन्तः अतिबृहच्छरीरयुक्ताः महाबलाः अतिशयबलविशिष्टाः ऋक्षवानरगोपुच्छाः क्षिप्रं त्वरितमेव अभिजज्ञिरे प्रादुर्बभूवुः तत्र ऋक्षाः भल्लूका गोपुच्छाः गोपुच्छसदृशपुच्छविशिष्ट-वानरजातिविशेषाः ॥ १८ ॥

वे हाथी और पर्वत के समान ऊँचे देहवाले, बड़े बली, ऋक्ष, वानर और लंगूर वानर शीघ्र ही उत्पन्न हो गए ॥ १८ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं वेषो यश्च पराक्रमः ॥ १९ ॥
अजायत समं तेन तस्य तस्य पृथक्पृथक् ।

यस्येति । यस्य यस्य देवस्य यद्रूपं सौन्दर्यंयो यो वेषः अवयवसन्निवेशः

यो यश्च पराक्रमो बलं तेन तेन रूपादिना समः तुल्यः तस्य तस्य सुतः पृथक् परस्परं विलक्षणोऽजायत तस्य तस्येत्येतदनुरोधेन यस्येत्यादय आवर्तन्ते ॥ १९ ॥

जिस देवता का जैसा रूप, वेश और पराक्रम था ठीक उनके अनुरूप वेष, रूप और पराक्रम वाले भिन्न-भिन्न रूप में उत्पन्न हुए ॥ १९ ॥

गोलाङ्गूलेषु चोत्पन्नाः केचित् संमतविक्रमाः ॥ २० ॥
ऋक्षीषु च तथा जाता वानराः किन्नरीषु च ।

तेषामुत्पत्तिक्षेत्राणि बोधयन्नाह—गोलाङ्गूलेष्विति । संमतविक्रमाः सम्यक् पूजनीयपराक्रमा एव केचित् गोलाङ्गूलेषु तज्जातिषु उत्पन्नाः तथा तादृशपराक्रमविशिष्टाः केचिद्वानरा ऋक्षीषु च किन्नरीषु च उत्पन्नाः ॥ २० ॥

इनमें से कुछ बड़े पराक्रमी वानर लंगूरियों, ऋक्षियों, किन्नरियों में उत्पन्न हुए ॥ २० ॥

देवा महर्षिगन्धर्वास्तार्क्ष्ययक्षा यशस्विनः ॥ २१ ॥
नागाः किंपुरुषाश्चैव सिद्धविद्याधरोरगाः ।
बहवो जनयामासुर्हृष्टास्तत्र सहस्रशः ॥ २२ ॥

देवाः महर्षिगन्धर्वाः यशस्विनः तार्क्ष्ययक्षाः नागाः किंपुरुषाः सिद्धविद्याधरोरगाः बहवः सुहृष्टाः तत्र विष्णववतारकाले सहस्रशः पुत्रान् जनयामासुः ॥ २१–२२ ॥

देवता, महर्षि, गन्धर्व, गरुड़, बड़े यशस्वी यक्ष, नाग, किन्नर, सिद्ध, विद्याधर और उरगों ने प्रसन्न होकर सहस्रों की संख्या में पुत्र उत्पन्न किये ॥२१–२२॥

चारणाश्च सुतान्वीरान्ससृजुर्वनचारिणः ।
वानरान्सुमहाकायान्सर्वान्वै वनचारिणः ॥२३॥
अप्सरःसु च मुख्यासु तथा विद्याधरीषु च ।
नागकन्यासु च तदा गन्धर्वीणां तनूषु च ॥
कामरूपबलोपेता यथाकामविचारिणः ॥२४॥
सिंहशार्दूलसदृशा दर्पेण च बलेन च ।
शिलाप्रहरणाः सर्वे सर्वे पर्वतयोधिनः ॥२५॥

नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः ।
विचालयेयुः शैलेन्द्रान्भेदयेयुः स्थिरान्द्रुमान् ॥२६॥
क्षोभयेयुश्च वेगेन समुद्रं सरितां पतिम् ।

चारणा इति । वनचारिणः प्रमोदवनविहारिणः कामरूपबलोपेताश्चारणाः वनचारिण यथाकामं विचारिणः यथेच्छं सर्वत्र विचरणशीलान् वानरान् ससृजुः । मुख्यासु अप्सरासु तथा विद्याधरीषु च नागकन्यासु गन्धर्वीणाम् तनूषु यथाकामबलोपेताः यथाकामं विचारिणः दर्पेण च बलेन च सिंहशार्दूलसदृशाः सर्वे शिलाप्रहरणाः सर्वे पर्वतयोधिनः सर्वे नखदंष्ट्रायुधाः सर्वे सर्वास्त्रकोविदाः शैलेन्द्रान् विचालयेयुः स्थिरान् द्रुमान् भेदयेयुः वेगेन सरितां पतिं समुद्रं च क्षोभयेयुः ॥ २३–२६ ॥

चारण जाति के लोगों ने भी वीर और वनचारी पुत्रों को उत्पन्न किया और बड़े विशालकाय, वनचारी अनेक वानरों को उत्पन्न किया जो मुख्य अप्सराओं, विद्याधरियों, नागकन्याओं, गन्धर्वियों में उत्पन्न हुए थे। सब के सब इच्छा रूप और बलशाली थे तथा इच्छानुसार जहां चाहते थे वहाँ जा सकते थे।

दर्प और बल में सिंह और बाघ के समान थे। सब शिला से प्रहार करने वाले और पर्वत उठाकर प्रहार करके युद्ध करने वाले थे।

नख और दांत ही सबके आयुध थे। सब प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग जानते थे। बड़े-बड़े पर्वतों को डिगा देने वाले, दृढ़ और स्थिर वृक्षों को तोड़ देने वाले थे। वेग से नदीपति समुद्र को भी क्षुभित कर देते थे॥ २३–२६ ॥

दारयेयुः क्षितिं पद्भ्यामाप्लवेयुर्महार्णवान् ॥२७॥
नभस्तलं विशेयुश्च गृह्णीयुरपि तोयदान् ।

दारयेयुरिति । पद्भ्यां क्षितिं दारयेयुः महार्णवं समुद्रमाप्लवेयुः उत्तरेयुः नभस्तलं विशेयुः । तोयदानपि गृह्णीयुश्च ॥ २७ ॥

पैर की ठोकर से पृथ्वी को फाड़ देनेवाले, समुद्र को तैर जाने, आकाश में प्रवेश करने वाले मेघों को पकड़ लेने वाले थे॥ २७ ॥

गृह्णीयुरपि मातङ्गान्मत्तान्प्रव्रजतो वने ॥२८॥
नर्दमानांश्च नादेन पातयेयुर्विहङ्गमान् ।

गृह्णीयुरिति । वने प्रव्रजतो मत्तानपि मातङ्गान् गृह्णीयुः नादेन नर्दमानान् विहङ्गमांश्च पातयेयुः ॥ २८ ॥

वन में घूमते हुए मत्त हाथियों को भी पकड़ने वाले थे। आकाश में गरजते हुए चलने वालों को अपने गर्जना से गिरा देते थे ॥ २८ ॥

ईदृशानां प्रसूतानि हरीणां कामरूपिणाम् ॥२९॥
शतं शतसहस्राणि यूथपानां महात्मनाम् ।
ते प्रधानेषु यूथेषु हरीणां हरियूथपाः ॥३०॥
बभूवुर्यूथपश्रेष्ठान्वीरांश्चाजनयन्हरीन् ।

सर्ववानराणामसख्येयत्वात् यूथपसंख्यां बोधयन्नाह—ईदृशानामिति। वातरंहसा पवनसदृशवेगवतां यूथपानां यूथस्वामिनां महात्मनामतिप्रयत्नवतामीदृशानामुक्तसुग्रीवादिसदृशानां प्रसूतप्रादुर्भूतानां हरीणां वानराणां शतसहस्राणि लक्षाणीत्यर्थ शतं कोटिरित्यर्थः बभूबुरिति हरीणां प्रधानेषु मुख्येषु यूथेषु ये हरियूथपाः सुग्रीवादयो बभूवुस्तेऽपि यूथपश्रेष्ठान् वीरान् हरीन् अजनयन् चशब्दोऽप्यर्थे ॥ २९–३० ॥

ऐसे इच्छानुरूप रूप बनाने वाले बानरों की सन्तति उत्पन्न हुई जो सैकड़ों, लाखों महात्मा यूथप वानर प्रधान प्रधान वानर यूथों के पालक हुए और उन्होंने बड़े वीर अच्छे सेनापति पद के योग्य वानरों को उत्पन्न किया ॥ २९–३० ॥

अन्ये ऋक्षवतः प्रस्थानुपतस्थुः सहस्रशः ॥३१।
अन्ये नानाविधाञ्छैलान्काननानि च भेजिरे ।

अन्ये इति। अन्ये प्राकृतविलक्षणाः सहस्रशो वानराः ऋक्षवतः पर्वतविशेषस्य प्रस्थान् शिखराणि उपतस्थुः स्थिता बभूवुः। अन्ये ततो विलक्षणाः नानाविधान् अनेकप्रकारान् शैलान् पर्वतान् काननाति वनानि च भेजिरे सिषेविरे ॥ ३१ ॥

उनमें से सहस्रों की संख्या में ऋक्षवान् नाम के पर्वत के शिखरों पर निवास करते थे। अन्य वानरों ने अनेक प्रकार के पर्वतों और वनों में निवास किया ॥

सूर्यपुत्रं च सुग्रीवं शक्रपुत्रं च वालिनम् ॥ ३२ ॥
भ्रातरावुपतस्थुस्ते सर्वे च हरियूथपाः ।
नलं नीलं हनूमन्तमन्यांश्च हरियूथपान् ॥ ३३ ॥

सूर्यपुत्रमिति। सर्वे ते हरियूथपाः वानरश्रेष्ठा सूर्यपुत्रं सुग्रीवं शक्रपुत्रं वालिनं च भ्रातरौ एव उपतस्थुः सिषेविरे अत एवं नलं हनूमन्तमन्यांश्च

हरियूथपान् वालिसुग्रीवान्तरङ्गानुपतस्थुः वालिसुग्रीवप्रसन्नतार्थं सेवयामासुरित्यर्थः ॥ ३२–३३ ॥

सूर्य के पुत्र सुग्रीव और इन्द्र के पुत्र बालि जो दोनों सगे भाई थे, और सब वानरों के सेनापति उनकी उपासना करते थे। उनमें से कुछ नल, नील, हनुमान् और अन्य वानर सेनापतियों की सेवा करते थे ॥ ३२–३३ ॥

ते तार्क्ष्यबलसंपन्नाः सर्वे युद्धविशारदाः।
विचरन्तोऽर्दयन्सर्वान्सिंहव्याघ्रमहोरगान् ॥ ३४ ॥

ते इति। तार्क्ष्यबलसंपन्नाः गरुडतुल्यवेगवन्तः युद्धविशारदाः युद्धनिपुणाः विचरन्त वनादिषु विहरन्तस्ते सर्वे वानराः दर्पात् दर्पमालक्ष्य सिंहव्याघ्रमहोरगान् अर्दयन् आर्दयन् तत्तद्गर्वं दूरीचक्रुरित्यर्थः ॥ ३४ ॥

वे सब गरुड़ के समान वली, युद्ध करने में प्रवीण, चलते हुए भी सिंहों, बाघों, और बड़े-बड़े उरगों को पीड़ित किया करते थे ॥ ३४ ॥

ताँश्च सर्वान् महाबाहुर्वाली विपुलविक्रमः।
जुगोप भुजवीर्येण ऋक्षगोपुच्छवानरान् ॥ ३५ ॥

तानिति। महान्तौ दीर्घौ बाहू यस्य सः विपुलविक्रमः महापराक्रमविशिष्टः वाली भुजवीर्येण तान् पूर्वोक्तान् सर्वान् निखिलान् ऋक्षगोपुच्छवानरान् जुगोप ररक्ष चकारेण यथोचितं तैः स्वं सेवयामास ॥ ३५ ॥

इनमें बड़ा बली, लम्बी बाहुवाला, विपुल पराक्रमी वालि था जो अपने बाहुबल से ऋक्ष, लंगूर और वानरों की रक्षा करता था ॥ ३५ ॥

तैरियं पृथिवी शूरैः सपर्वतवनार्णवा।
कीर्णा विविधसंस्थानैर्नानाव्यञ्जनलक्षणैः ॥ ३६ ॥

तैरिति। शूरैः युद्धोत्साहविशिष्टैः विविधसंस्थानैः विलक्षणावयवविशिष्टैः नानाव्यञ्जनलक्षणैः परस्परं भेदबोधकलक्षणविशिष्टैः तैर्वानरैः सपर्वतवनार्णवा पर्वतवनार्णवसहिता इयं प्रसिद्धा पृथिवी कीर्णा व्याप्ता ॥३३॥

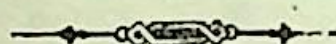
अनेक प्रकार के देह वाले और अनेक लक्षणों वाले इन शूर वानरों से पृथ्वी के पर्वत, वन और समुद्र का तट व्याप्त हो गया ॥ ३६ ॥

तैर्मेघवृन्दाचलकूटसंनिभैर्महाबलैर्वानरयूथपाधिपैः।
बभूव भूर्भीमशरीररूपैः समावृता रामसहायहेतोः ॥ ३७ ॥

उक्तमर्थमुपसंहरन्नाह—तैरिति। मेघवृन्दाचलकूटसंनिभैः मेघवृन्दं मेघसमूहः अचलकूटः पर्वतश्रृङ्गं तत्संनिभैस्तत्सदृशैरित्यर्थः। महाबलैः अतिपराक्रमविशिष्टैः भीमशरीररूपैः भयोत्पादकशरीररूपविशिष्टैः वानर-यूथपैः रामसहायहेतोः रामेण सह अयः गगनं तदर्थं तत्सेवार्थमित्यर्थः समावृता व्याप्ता भूः भूमिर्बभूव ॥ ३७ ॥

इस प्रकार राम की सहायता के लिए उत्पन्न मेघ वृन्द और पर्वत शिखर के समान विशाल कार्य वाले बड़े पराक्रमी वानर यूथों के स्वामियों से जो देह और रूप से भयङ्कर थे पृथ्वी ढँक गई ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥



सप्तदशः सर्गः

निर्वृत्ते तु क्रतौ तस्मिन्हयमेधे महात्मनः ।
प्रतिगृह्यामरा भागान्प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १ ॥

रामप्राकट्यमुपक्रममाण आह—निर्वृत्त इति । महात्मनः सर्वपूज्यस्य दशरथस्य तस्मिन्प्रसिद्धे हयमेधे क्रतौ निर्वृत्ते सिद्धे समाप्ते सतीत्यर्थः । तुना पुत्रेष्टौ समाप्तायां सत्यां अमरा देवाः भागान् स्वस्वसंप्रदानकांशान्-प्रतिगृह्य यथागतं आगतक्रममनतिक्रम्य प्रतिजग्मुः स्व स्वस्थानं प्रापुः ॥१॥

महात्मा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के समाप्त हो जाने के बाद देवता लोग अपना अपना भाग लेकर आने के मार्ग से चले गए ॥ १ ॥

समाप्तदीक्षानियमः पत्नीगणसमन्वितः ।
प्रविवेश पुरीं राजा सभृत्यबलवाहनः ॥ २ ॥

समाप्तेति । समाप्तो दीक्षानियमो यस्य सः पत्नीगणसमन्वितः पत्नीनां गणैः समन्वितो युक्तः सभृत्यबलवाहनः भृत्यबलवाहनसहितः राजा पुरीं प्रविवेश ॥ २ ॥

यज्ञदीक्षा के नियम को पूर्ण करके अपनी पत्नियों, सेवकों, सेना और वाहन के साथ राजा ने अयोध्यापुरी में प्रवेश किया ॥ २ ॥

यथार्हं पूजितास्तेन राज्ञा च पृथिवीश्वराः ।
मुदिताः प्रययुर्देशान्प्रणम्य मुनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥

यथार्हमिति । तेन कृतयागेन राज्ञा दशरथेन यथार्हं यथायोग्यं पूजिताः प्राप्तसत्काराः अत एव मुदिताः प्रमोदं प्राप्ताः पृथिवीश्वराः राजानः मुनिपुङ्गवं वशिष्ठऋष्यश्रृङ्गवामदेवान् एकवचनं जात्यभिप्रायेण वैशब्दे-नान्यानपि प्रणम्य देशान् स्वान् स्वान् विषयान् प्रययुः ॥ ३ ॥

राजा दशरथ ने राजाओं की यथा योग्य पूजा की और वे सब मोद भरे हुए मुनि ऋष्यश्रृङ्ग आदि को प्रणाम करके अपने देश चले गए ॥ ३ ॥

श्रीमतां गच्छतां तेषां स्वगृहाणि पुरात्ततः ।
बलानि राज्ञां शुभ्राणि प्रहृष्टानि चकाशिरे ॥ ४ ॥

श्रीमतामिति। ततः तस्मात् पुरात् अयोध्यातः स्वपुराणि गच्छतां तेषां श्रीमतां परमैश्वर्ययुक्तानां राज्ञां शुभ्राणि स्वच्छानि प्रहृष्टानि प्राप्तप्रमोदानि बलानि सैन्यानि चकाशिरे ॥ ४ ॥

अयोध्यापुरी से अपनी अपनी राजधानी को जाते हुए राजाओं की अलङ्कृत सेनायें उज्ज्वल और प्रसन्न होकर शोभित हुईं ॥ ४ ॥

गतेषु पृथिवीशेषु राजा दशरथः पुनः।
प्रविवेश पुरीं श्रीमान्पुरस्कृत्य द्विजोत्तमान् ॥ ५ ॥

गतेष्विति। पृथिवीशेषु राजसु गतेषु श्रीमान्राजा दशरथः द्विजोत्तमान्ब्राह्मणान्पुरस्कृत्याग्रे कृत्वा पुरीं पुनः प्रविवेश पुनः प्रवेशोक्त्या पूर्वं पुरीं प्रविश्य राजप्रस्थापनार्थं बहिर्निर्गत इति ध्वनितम् ॥ ५ ॥

जब समस्त नरेश विदा हो गए तब राजा दशरथ ने पुनः ब्राह्मण श्रेष्ठों को आगे करके अयोध्यापुरी में प्रवेश किया ॥ ५ ॥

शान्तया प्रययौ सार्धमृष्यश्रृङ्गः सुपूजितः।
अन्वीयमानो राज्ञा च सानुयात्रेण धीमता ॥ ६ ॥

शान्तयेति। अथ पुरप्रवेशान्तरं धीमता परमबुद्धिविशिष्टेन सानुयात्रेण भृत्यवर्गसहितेन राज्ञा दशरथेन शान्तया सार्धं सुपूजितः प्राप्तातिसत्कारः अन्वीयमानः अनुगम्यमानश्च ऋष्यश्रृङ्गः प्रययौ स्वं स्थानं प्राप ॥ ६ ॥

भली भांति पूजा पाकर शान्ता के साथ ऋष्यश्रृङ्ग भी विदा हुए, जिनको बुद्धिमान राजा दशरथ ने अनुगमन करनेवालों के साथ दूर तक पहुँचाने के लिये अनुगमन किया ॥ ६ ॥

एवं विसृज्य तान्सर्वान्राजा संपूर्णमानसः।
उवास सुखितस्तत्र पुत्रोत्पत्तिं विचिन्तयन् ॥ ७ ॥

एवमिति। एवमुक्तप्रकारेण तान्सर्वान्पूर्वोक्तान्विसृज्य संपूर्णमानसः प्राप्तमनोरथः अत एव सुखितः प्राप्तसुखः राजा पुत्रोत्पत्तिं स्वपुत्रप्रादुर्भावं विचिन्तयन् सन् तत्रायोध्यानगरे उवास ॥ ७ ॥

इस प्रकार उन सबोंको बिदा करके मन की समस्त कामनाओं से पूर्ण राजा दशरथ पुत्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विचारते हुए सुख पूर्वक रहने लगे ॥ ७ ॥

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् समत्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ ॥ ८ ॥

नक्षत्रेऽदितिदैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पञ्चसु ।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह ॥ ९ ॥
प्रोद्यमाने जगन्नाथं सर्वलोकनमस्कृतम् ।
कौसल्याजनयद्रामं दिव्यलक्षणसंयुतम् ॥ १० ॥
विष्णोरर्धं महाभागमैक्ष्वाककुलवर्धनम् ।
लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥ ११ ॥

तत इति । ततः तस्मिन्यज्ञे पुत्रेष्टियागे समाप्ते सति ऋतूनां षट् षड्ऋतवः समत्ययुः व्यतीता अभवन् । ततस्तेषु षट्सु ऋतुषु मध्ये द्वादशे चैत्रे मासे नावमिके नवम एव नावमिकतस्मिन्तिथौ विनयादित्वात्स्वार्थिकष्ठक् तिथिर्द्वयोरित्यनुशासनात्तिथिशब्दस्य पुँस्त्वम्, ऋतूनामित्यत्र षष्ठी राहोश्शिर इतिवत् बोध्या चैत्रशब्दार्थस्तु चित्रया युक्ता पौर्णमासो चैत्री 'नक्षत्रेण युक्तः कालः' इत्यण् सास्त्यस्मिन्निति चैत्रः 'सास्मिन्पौर्णमासीति' इत्यण् ॥ ८ ॥ नक्षत्र इति । अदितिदैवत्ये अदितिः देवताऽस्य 'दित्यदित्या' इति ण्यः तस्मिन्नक्षत्रे पुनर्वसुसंज्ञके इत्यर्थः । पञ्चसु ग्रहेषु रविमङ्गलगुरुशुक्रशनिषु स्वोच्चसंस्थेषु मेषमकरकर्कमीनतुलास्थेषु 'अजवृषभमृगाङ्गनाकुलीराझषवणिजौ च दिवाकरादितुङ्गाः' इत्युच्चलक्षणं वराहमिहिरेणोक्तम् । कर्कटे कर्कलग्ने वाक्पतौ बृहस्पतौ इन्दुना सह प्रोद्यमाने उदय प्राप्ते लग्ने सति जगन्नाथं सर्वलोकनियन्तारमत एव सर्वलोकनमस्कृतं दिव्यलक्षणसंयुतं दिव्यानि सामुद्रिकादिशास्त्रसूचितप्राकृतविलक्षणानि लक्षणानि तैः संयुतं च । विष्णोः जगन्नियन्तुः चतुर्भुजस्य अर्धम् महाभागं महान् इतरभागापेक्षयाधिकः भागः प्रादुर्भावनिमित्तीभूतपायसरूपांशो यस्य स तं किंच महान् भागो भाग्यं यस्मात्स तं किंच महतीं लोकदर्शनयोग्यां भां दीप्तिं गच्छति प्राप्नोतीति स तं किंच महान्तो ब्रह्मादयो भागाः प्राप्तप्रकाशाः यस्मात्स तं किंच महासर्वपूज्या या आभा तां गच्छति प्राप्नोतीति स तं किंच महती आभा यस्य स महाभः स अगो मणिपर्वतो विहाराधारत्वेन यस्य स तं ऐक्ष्वाककुलवर्द्धनम् ऐक्ष्वाकः इक्ष्वाकुकुलप्रादुर्भूतः दशरथस्तस्य कुलं वर्द्धयतीति स तं रामं सर्वाभिरामदातारं कौसल्याजनयत् प्रादुरभावयत् लोहिताक्षं महाबाहुं रक्तोष्ठं दुन्दुभिस्वनम् ॥ ८–११ ॥

तब यज्ञ समाप्त होने के छः ऋतुओं के बीत जाने के बाद बारहवें महीने में चैत्र की नवमी तिथि में।

पुनर्वसु नक्षत्र में जब (सूर्य, मङ्गल, बृहस्पति और शनैश्चर) पाँच ग्रह अपने अपने उच्चस्थान में स्थित थे, कर्क लग्न में बृहस्पति और चन्द्रमा एक राशि पर उदित थे।

तब जगत के स्वामी, सब लोगों के नमस्कार के भाजन, दिव्य लक्षणों से युक्त राम को कौशल्या ने जन्म दिया।

जो विष्णु का आधा अंश, बड़े भाग्यशाली, इक्ष्वाकुवंश को आनन्दित करनेवाले, रक्तनेत्र, आजानुबाहु' रक्त ओष्ठ और दुन्दुभि के समान स्वरवाले थे ॥ ८–११ ॥

कौसल्या शुशुभे तेन पुत्रेणामिततेजसा।
यथा वरेण देवानामदितिर्वज्रपाणिना ॥ १२ ॥

कौसल्येति। अमिततेजसा इयत्तारहिततेजोविशिष्टेन तेन प्रादुर्भूतेन पुत्रेण कौसल्या शुशुभे अप्रमेयशोभां प्राप तत्र दृष्टान्तः यथा वज्रपाणिना वज्रहस्तेन देवानां वरेण इन्द्रेण अदितिस्तन्माता ॥ १२ ॥

कौसल्या उस अमित तेजस्वी पुत्र से ऐसी शोभित हुई जैसे देवताओं के वरदान से उत्पन्न वज्रधर इन्द्र से अदिति ॥ १२ ॥

भरतो नाम कैकेय्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः।
साक्षाद्विष्णोश्चतुर्भागः सर्वैः समुदितो गुणैः ॥ १३ ॥

भरत इति। सत्यपराक्रमः सत्यः पराक्रमो यस्य साक्षाद्विष्णोर्वैकुण्ठेशस्य चतुर्भागः चत्वारो भागा यस्मिन् सर्वांश इत्यर्थः अत एव सर्वैर्गुणैः समुदितः भरतो नामेति प्रसिद्धो कैकेय्यां जज्ञे प्रादुर्बभूव ॥ १३ ॥

सत्यपराक्रमी, साक्षात् विष्णु के चतुर्थ भाग, समस्त उत्तम गुणों से सम्पन्न भरत कैकेयी से उत्पन्न हुए ॥ १३ ॥

अथ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्राजनयत्सुतौ।
वीरौ सर्वास्त्रकुशलौ विष्णोरर्धसमन्वितौ ॥ १४ ॥

अथेति। अथ भरतप्रादुर्भावानन्तरं सर्वास्त्रकुशलौ निखिलास्त्राणां विज्ञातारौ विष्णोर्नारायणस्यार्धो वर्धको यो रामस्तत्र समन्वितौ तदनुयायिनावित्यर्थः वीरौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुतौ सुमित्राऽजनयत् ॥ १४ ॥

तदनन्तर सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न नाम के दो पुत्रों को जन्म दिया। जो वीर, सब अस्त्रों में प्रवीण और विष्णु के अर्धभाग से उत्पन्न थे ॥ १४ ॥

पुष्ये जातस्तु भरतो मीनलग्ने प्रसन्नधीः।
सार्पे जातौ तु सौमित्री कुलीरेऽभ्युदितेरवौ ॥ १५ ॥

भरतादीनां जन्मनक्षत्रादि बोधयन् आह—पुष्ये इति। प्रसन्नधीर्भरतः पुष्ये पुष्यनक्षत्रयुक्ते तिथौ मीनलग्ने जातः प्रादुर्भूतः सौमित्री सुमित्राया सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ तु सार्पे आश्लेषानक्षत्रयुक्ते तिथौ कुलीरे कर्कटे लग्ने रवौ अभ्युदिते प्रवृद्धे मध्याह्नकाले इत्यर्थः जातौ प्रादुर्भूतौ ॥ १५ ॥

निर्मल बुद्धि भरत का जन्म पुष्य नक्षत्र और मीन लग्न में हुआ और सुमित्रा के दोनों पुत्र आश्लेषा नक्षत्र और कर्क लग्न में उत्पन्न हुए ॥ १५ ॥

राज्ञः पुत्रा महात्मानश्चत्वारो जज्ञिरे पृथक्।
गुणवन्तोऽनुरूपाश्च रुच्या प्रोष्ठपदोपमाः ॥ १६ ॥

चतुर्णां प्रादुर्भावमुपसंहरन्नाह—राज्ञ इति। महात्मानः ईश्वरादि-पूजनीयस्वरूपाः अत एव पृथग्ज्ञानविषयेभ्यो विलक्षणाः अत एव गुण-वन्तः प्राकृतविलक्षणदिव्यगुणविशिष्टाः सुरूपाः शोभनानि रूपाणि येषां ते किंच शोभनो रूपो वेदेषु निरूपणं येषां ते रुच्या कान्त्या परमशोभया युक्ताः ये चत्वारो राज्ञः पुत्रा जज्ञिरे ते प्रोष्ठपदोपमाः प्रोष्ठो गौरस्तस्य पदे खुरौ उपमा येषां ते द्वौ द्वौ मिलित्वा स्थिता बभूवुरित्यर्थः अथवा पूर्वभाद्र-पदोत्तरभाद्रपदयोर्नाम तयोश्च प्रत्येकं द्वे द्वे तारे। श्रुतिश्च चत्वार एक-मभिकर्मदेवाः प्रोष्ठपदास इति यान्वदन्ति तदुपमा इत्यर्थः ॥ १६ ॥

राजा के चार महात्मा पुत्र अलग अलग उत्पन्न हुए, जो गुणवान् तथा अनुरूप थे और कान्ति में पूर्वाभाद्रपद तथा उत्तराभाद्रपद नक्षत्र के समान चार थे और दो दो की जोड़ी थी ॥ १६ ॥

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥ १७ ॥

प्रादुर्भावकालिकसर्वहर्षं बोधयन् तत्तत्कृत्यमाह—जगुरिति। गन्धर्व-पतयो जगुः अप्सरोगणाश्च ननृतुः देवदुन्दुभयः नेदुः खादाकाशात्पुष्प-वृष्टिश्च पतत् पतदित्यत्राडभावश्छान्दसः ॥ १७ ॥

गन्धर्वों ने मनोहर गान किया, अप्सराओं ने नृत्य किया, देवताओं ने दुन्दुभि बजाई, आकाश से पुष्पों की वर्षा हुई ॥ १७ ॥

उत्सवश्च महानासीदयोध्यायां जनाकुलः ।
रथ्याश्च जनसंबाधा नटनर्तकसंकुलाः ॥ १८ ॥

उत्सव इति । जनाकुलः जनैराकुलो व्याप्तः महानतिशय एव उत्सवोऽयोध्यायामासीत् चशब्द एवार्थे अर्धं पृथगन्वयि रथ्या इति नटनर्तकसंकुलाः नटादिव्याप्ताः अत एव जनसंबाधाः जनानां संबाधाः परस्परमङ्गसंमर्दो यासु ॥ १८ ॥

अयोध्या में जनसमूह से भरा हुआ बड़ा उत्सव हुआ, सड़कें जनता से भरी थीं और नट तथा नर्तकों से संकीर्ण हो गयी थीं ॥ १८ ॥

गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथापरैः ।
विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्नसमन्विताः ॥ १९ ॥

विपुलाः विस्तीर्णाः सर्वरत्नसमन्विताः जनग्रहणार्थं प्रक्षिप्तसकलरत्नसंपूर्णाः गायकैर्गानकर्तृभिः वादकैर्वादनकर्तृभिश्च अपरैः वेदपाठकर्तृभिश्च विराविण्यः शब्दवत्यः सत्य एव रथ्या मार्गास्तत्र महोत्सवसमये विरेजुः शुशुभिरे ॥ १९ ॥

गाने और अन्य वाद्यों से सारी गलियां शब्दायमान थीं । बड़ी बड़ी गलियां तो सब प्रकार के रत्नों से भरी थीं अतः सुन्दर लग रही थीं ॥ १९ ॥

प्रदेयांश्च ददौ राजा सूतमागधबन्दिनाम् ।
ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः ॥ २० ॥

प्रदेयानिति । राजा दशरथः सूतमागधबन्दिनां प्रदेयान् प्रदातुं योग्यान्पदार्थान्ददौ तत्र सूताः पौराणिकाः मागधाः वंशप्रशंसाकर्तारः बन्दिनः स्तुतिपाठकाः संबन्धसामान्ये षष्ठी । ब्राह्मणेभ्यः वित्तं धनं सहस्रशो गोधनानि च ददौ ॥ २० ॥

राजा ने सूतों, मागधों और बन्दियों को जो देय था दान दिया और ब्राह्मणों को वित्त तथा सहस्रों गायें दीं ॥ २० ॥

अतीत्यैकादशाहं तु नामकर्म तथाकरोत् ।
ज्येष्ठं रामं महात्मानं भरतं कैकयीसुतम् ॥ २१ ॥

सौमित्रिं लक्ष्मणमिति शत्रुघ्नमपरं तथा।
वसिष्ठः परमप्रीतो नामानि कुरुते तदा॥ २२॥

अतीत्येति। एकादश अहानि यस्मिन् दिनसमूहे स तं एकादशदिनामित्यर्थः अतीत्य अतिक्रम्य नामकर्म अकरोत् तदेव विस्पष्टयति महात्मानं ईश्वरादिपूजनीयस्वरूप ज्येष्ठं कौसल्यातः पूर्वं प्रादुर्भूतं रामं नाम अकरोत् प्रादुरभावयत् केकयीतः प्रादुर्भूतं भरतं नाम च अकरोत् सौमित्रिं सुमित्रातः प्रादुर्भूतं ज्येष्ठमित्यर्थः लक्ष्मणं नाम च अकरोत् अपरं तत्कनिष्ठं सौमित्रिं शत्रुघ्नं नाम च परमप्रीतो वशिष्ठः नामानि तथा इति कुरुते योग्यानीमानि नामानीत्यवददित्यर्थः॥ २१-२२॥

एकादश दिन बीत जाने के बाद नाम कर्म किया गया जिसमें महात्मा तथा ज्येष्ठ का राम, कैकेयी के पुत्र का भरत और सुमित्रा के प्रथम पुत्र का लक्ष्मण तथा द्वितीय का शत्रुघ्न परम प्रसन्न वसिष्ठ ने नामकरण संस्कार किया॥२१-२२॥

ब्राह्मणान्भोजयामास पौरजानपदानपि।
अददद्ब्राह्मणानां च रत्नौघममलं बहु॥ २३॥

ब्राह्मणानिति। ब्राह्मणान्पौरजानपदान् पुरदेशप्रभवानपि भोजयामास अमलं रत्नौघं रत्नसमूहं ब्राह्मणानामददात् चकारेण वस्त्रालङ्कारादिसंग्रहः संबन्धसामान्यविवक्षया षष्ठी॥ २३॥

ब्राह्मणों और पुर तथा जनपद के लोगों को भोजन कराया गया तथा ब्राह्मणों को निर्मल रत्नों की ढेर दे दी गई॥ २३॥

तेषां जन्मक्रियादीनि सर्वकर्माण्यकारयत्।
तेषां केतुरिव ज्येष्ठो रामो रतिकरः पितुः॥ २४॥
बभूव भूयो भूतानां स्वयम्भूरिव संमतः।

तदेवोपसंहरन्नाह— तेषामित्यर्धेन। तेषां रामादीनां जन्मक्रियादीनि जातकर्मप्रभृतीनि सर्वकर्माणि उपनयनान्तनिखिलकर्तव्यानि अकारयत् वशिष्ठ इति शेषः तेषामिति तेषां चतुर्णां मध्ये श्रेष्ठः पितु रतिकरः पितृप्रमोदवर्धकः केतुरिव ध्वजसदृशप्रकाशकः रामो भूयो भूतानां राजवर्धितजनानां स्वयंभूसदृशः संमतः पूजितो बभूव॥ २४॥

क्रमशः उनके जन्म के बाद के जातकर्म से लेकर वेदारम्भ तक के सब संस्कार किये गये। उनमें पताका की तरह सबसे बड़ा राम पिता का अनुराग

पानेवाला पुत्र हुआ और राज्य के प्राणियों के लिए ब्रह्मा के समान माननीय हुआ ॥ २४ ॥

सर्वे वेदविदः शूराः सर्वे लोकहिते रताः ॥ २५ ॥
सर्वे ज्ञानोपसंपन्नाः सर्वे समुदिताः गुणैः ।
तेषामपि महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ २६ ॥
इष्टः सर्वस्य लोकस्य शशाङ्क इव निर्मलः ।
गजस्कन्धेऽश्वपृष्ठे च रथचर्यासु संमतः ॥ २७ ॥
धनुर्वेदे च निरतः पितुः शुश्रूषणे रतः ।

सर्वं इति । ज्ञानोपसंपन्नाः सर्वविषयकज्ञानवन्तोऽपि सर्वे चत्वारो भ्रातरः वेदविदः गुरूपदेशात्प्राप्तसकलवेदाः बभूवुरिति शेषः अत एव सर्वे शूराः अत एव सर्वे लोकहिते रताः अत एव सर्वे गुणैर्निखिलक्षात्रधर्मैः समुदिताः संप्रकाशिताः बभूवुः गुरूपदेशात्प्राप्तवेदा इत्यनेन गुरूपदेशादेव वेदोऽवगन्तव्य इति लोकोपदेशः सूचितः चशब्दोऽप्यर्थे । सिंहावलोकनन्यायेन रामं वर्णयन्नाह—तेषामिति । महातेजाः तेजोविशिष्टः सत्यपराक्रमः कापट्यसंसर्गरहितपराक्रमविशिष्टः सुधांशुः शरत्पूर्णचन्द्र इव सर्वस्य इष्टः लोकस्य ईप्सितः अपिशब्देन त्रयाणामपि ईप्सितः निर्मलः आश्रितमलनिवर्तनहेतुः । गजस्कन्ध गजस्कन्धारोहे अश्वपृष्ठे अश्वपृष्ठारोहे च रथचर्यासु रथसंचारेषु च संमतः सर्वजनप्रशंसास्पदीभूतः धनुर्वेदे अस्त्रशस्त्रादिज्ञाने निरतः परिनिष्ठित पितुः शुश्रूषणे पित्रादिसेवायां रतः नितरां प्रवृत्तः तेषां चतुर्णां मध्ये राम आसीदिति शेषः द्वयोरेकत्रान्वयः ॥ २५–२७ ॥

सब वेद के जानने वाले, सब लोक कल्याण में लगे रहने वाले, सब शूर, सब ज्ञान से परिपूर्ण और सब गुणों से सम्पन्न थे ।

उनमें भी अति तेजस्वी अमोघास्त्र राम समस्त जनता के लिए निर्मल चन्द्रमा के समान प्रिय था ।

हाथी के कन्धे, घोड़े की पीठ तथा रथ हाँकने में परम निपुण था, धनुर्वेद में कुशल और पिता की सेवा में सदा लगा रहनेवाला था ॥ २५–२७ ॥

बाल्यात्प्रभृति सुस्निग्धो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥ २८ ॥
रामस्य लोकरामस्य भ्रातुर्ज्येष्ठस्य नित्यशः ।

रामाचरणमुक्त्वा लक्ष्मणाचरणमाह—बाल्यादिति । लक्ष्मिवर्धनः आश्रितसंपत्तिवर्धकः लक्ष्मणः लोकरामस्य लोकाभिरामदातुः ज्येष्ठस्य पूर्वं प्रादुर्भूतस्य भ्रातुः नित्यभ्रातृत्वविशिष्टस्य रामस्य बाल्यात्प्रभृति नित्यशः सुस्निग्धः अतिप्रीतिविशिष्ट आसीदिति शेषः। लक्ष्मिवर्धन इत्यत्र ह्रस्व आर्षः ॥ २८ ॥

बचपन से ही शोभा बढ़ानेवाला लक्ष्मण लोक को मनोहर लगनेवाले अपने बड़े भाई राम का नित्य बड़ा प्रिय हुआ ॥ २८ ॥

सर्वप्रियकरस्तस्य रामस्यापि शरीरतः ॥ २९ ॥
लक्ष्मणो लक्ष्मिसपन्नो बहिः प्राण इवापरः ।

सर्वेति । तस्य रामस्य बहिःस्थितः अपरः द्वितीयः प्राण इव प्राण-सदृशः लक्ष्मिसंपन्नः नित्यं सर्वसंपत्तिविशिष्टः लक्ष्मणः तस्य रामस्य शरीरतोऽपिना मनआदिभिः सर्वप्रियकरः निखिलप्रियकारक आसीदिति शेषः। बहिः प्राणइवापर इत्यभूतोपमालङ्कारेण लक्ष्मणसदृशो रामस्य प्रियः लक्ष्मण एवेत्यनन्वयालङ्कारो ध्वनितः तेन रामप्रसादाकाङ्क्षिभि-र्लक्ष्मणोऽवश्यमाश्रयणीय इति वस्तु व्यक्तम् ॥ २९ ॥

सुन्दरता से पूर्ण लक्ष्मण अपने शरीर से भी सब प्रकार से राम का प्रिय करने के कारण दूसरे प्राण के समान बाहर स्थित था ॥ २९ ॥

न च तेन विना निद्रां लभते पुरुषोत्तमः ॥ ३० ॥
मृष्टमन्नमुपानीतमश्नाति नहि तं विना ।

रामस्य लक्ष्मणविषयकप्रीतिं वर्णयन्नाह—नेति । पुरुषोत्तमः रामः तेन लक्ष्मणेन विना निद्रां चैव न लभते चशब्दः एवार्थे उपानीतं कौशल्या-द्युपहृतं मृष्टमन्नं त लक्ष्मणं विना नैवाश्नाति हिशब्द एवार्थे ॥ ३० ॥

राम लक्ष्मण के बिना नींद नहीं लेते थे। स्वादिष्ट अन्न आ जाने पर भी बिना लक्ष्मण को साथ बैठाये नहीं खाते थे ॥ ३० ॥

यदा हि हयमारूढो मृगयां याति राघवः ॥ ३१ ॥
अथैनं पृष्ठतोऽभ्येति सधनुः परिपालयन् ।

लक्ष्मणाचरणमाह—यदेति । राघवो रामः यदा यस्मिन्काले हयमश्व-मारूढः मृगयामाखेटं याति तदा एनं रामं परिपालयन् सर्वतो रक्षन् सधनुः धनुस्सहितः लक्ष्मणः पृष्ठतोऽभ्येति समीपतो गच्छति ॥ ३१ ॥

जब राम घोड़े पर चढ़कर शिकार खेलने जाते थे तब लक्ष्मण धनुष लेकर राम की रक्षा के लिए पीछे-पीछे चलता था ।। ३१ ।।

भरतस्यापि शत्रुघ्नो लक्ष्मणावरजो हि सः ।। ३२ ।।
प्राणैः प्रियतरो नित्यं तस्य चासीत्तथा प्रियः ।

भरतशत्रुघ्नयोः परस्परंप्रीतिं वर्णयन्नाह—भरतस्येति । लक्ष्मणावरजः लक्ष्मणानुजभ्राता शत्रुघ्नः भरतस्य प्राणैश्च प्राणैरपि नित्यं प्रियतरः अतिप्रीतिकारी आसीत् तस्य शत्रुघ्नस्यापि तथा प्राणैरपि प्रियः प्रियतरः स भरतः नित्यमेवासीत् हिशब्द एवार्थे ।। ३२ ।।

इसी प्रकार लक्ष्मण के छोटे भाई शत्रुघ्न भरत को प्राणों से भी अधिक प्रिय थे और नित्य उनके साथ रहते थे ।। ३२ ।।

स चतुर्भिर्महाभागैः पुत्रैर्दशरथः प्रियैः ।। ३३ ।।
बभूव परमप्रीतो देवैरिव पितामहः ।

महाराजाधिराजदशरथस्य मोदं वर्णयन्नाह—स इति त्रिभिः । महाभागैः प्रशंसनीयातिशयभाग्यविशिष्टैः प्रियैः सर्वप्रीतिविषयभूतैः चतुर्भिः पुत्रैः करणभूतैः स दशरथः देवै पितामहो ब्रह्मा इव परमप्रीतः परमानन्दविशिष्टो बभूव ।। ३३ ।।

बड़े भाग्यशाली उन चार प्रिय पुत्रों से राजा दशरथ उतने ही आनन्दित हुए जितने कि देवताओं से पितामह ।। ३३ ।।

ते यदा ज्ञानसंपन्नाः सर्वे समुदिता गुणैः ।। ३४ ।।
ह्रीमन्तः कीर्तिमन्तश्च सर्वज्ञा दीर्घदर्शिनः ।

ते इति । ह्रीमन्तः लोकापवादाल्लज्जावन्तः अत एव कीर्तिमन्तः परममर्यादापालकास्ते इति यशोविशिष्टाः सर्वज्ञाः निखिलविषयकनित्यज्ञानवन्तः अत एव दीर्घदर्शिनः अनागतातीतद्रष्टारः तै अवाङ्मनसगोचरा रामादयः यदा ज्ञानसंपन्नाः तदा गुणैः नित्यराजधर्मैः समुदिताः संप्रकाशिताः बभूवुरिति शेषः ज्ञानसंपन्नशब्दः ज्ञानं संपन्नं भवति यस्यां सावस्थास्ति एषामिति अर्शआद्यजन्तः ।। ३४ ।।

वे जब ज्ञानसम्पन्न, सब गुणों से परिपूर्ण लज्जाशील, कीर्तिमान, सब कुछ जाननेवाले और भविष्य के भी जानकार बन गए ।। ३४ ।।

तेषामेवंप्रभावाणां सर्वेषां दीप्ततेजसाम् ।। ३५ ।।

पिता दशरथो हृष्टो ब्रह्मा लोकाधिपो यथा ।

तेषामिति । दीप्ततेजसामेवंप्रभावाणामुक्तप्रकारेण प्रभावविशिष्टानां सर्वेषां रामादीनां पिता नित्यपितृत्वविशिष्टो दशरथः लोकाधिपो लोकनियन्ता ब्रह्मा यथा इव हृष्टो बभूवेति शेषः ।। ३५ ।।

तब ऐसे प्रभावशाली, अति तेजस्वी सबों के पिता राजा दशरथ ऐसे प्रसन्न हुए जैसे लोकाधिप ब्रह्मा ।। ३५ ।।

ते चापि मनुजव्याघ्रा वैदिकाध्ययने रताः ।। ३६ ।।
पितृशुश्रूषणरता धनुर्वेदे च निष्ठिताः ।

ते इति । वैदिकाध्ययने वेदसंबन्धिसाङ्गशब्दार्थतदुपबृंहणभूतस्मृतोतिहासादीनां पठने रताः पितृशुश्रूषणरताः पित्रुपलक्षितगुर्वादिसेवानिरताश्च धनुर्वेदे अस्त्रशस्त्रादि ज्ञाने निष्ठता निपुणाश्च अपिना मात्रादिलालिताः मनुजव्याघ्राः पुरुषसिंहाः ते रामादयः आसन्निति शेषः एतेन परममर्यादा पालकत्वं तेषां व्यक्तम् ।। ३६ ।।

वे सब नरसिंह वेद सम्बन्धी विधि के अध्ययन में पिता की सेवा करने और धनुर्वेद सीखने में निपुण हो गये ।। ३६ ।।

अथ राजा दशरथस्तेषां दारक्रियां प्रति ।। ३७ ।।
चिन्तयामास धर्मात्मा सोपाध्यायःसबान्धवः ।

तेषां समावर्तनकालमालक्ष्य राजचिन्तनं वर्णयन्नाह—अथेति । सोपाध्यायः उपाध्यायवशिष्ठवामदेवसहितः सबान्धवः रोमपादादिसहितः धर्मात्मा धर्ममनाः राजा महाराजाधिराजदशरथः अथ मङ्गलरूपां तेषां दारक्रियां दारप्राप्तिविषयिणीं क्रियां विवाहं प्रति चिन्तयामास विचारयामास ।। ३७ ।।

इसके बाद राजा दशरथ ने उनके विवाह के विषय में बन्धुओं और पुरोहित वसिष्ठ के साथ विचार किया ।। ३७ ।।

तस्य चिन्तयमानस्य मन्त्रिमध्ये महात्मनः ।। ३८ ।।
अभ्यागच्छन्महातेजा विश्वामित्रो महामुनिः ।

तस्येति । मन्त्रिमध्ये चिन्तयमानस्य तेषां विवाहं विचारयतः महात्मनः परमोदारचित्तस्य तस्य दशरथस्य द्वारमिति शेषः । महातेजाः परमतेजस्वी महामुनिः मुनिश्रेष्ठः विश्वामित्रः अभ्यागच्छत् ।। ३८ ।।

वह महात्मा जब मन्त्रियों के मध्य में बैठ कर विचार कर रहा था कि अति तेजस्वी, महामुनि विश्वामित्र आ पहुँचे ॥ ३८ ॥

स राज्ञो दर्शनाकाङ्क्षी द्वाराध्यक्षानुवाच ह ॥ ३९ ॥
शीघ्रमाख्यात मां प्राप्तं कौशिकं गाधिनन्दनम् ।

स इति । राज्ञः दशरथस्य दर्शनाकाङ्क्षी स विश्वामित्रः द्वाराध्यक्षान् द्वारपालकान् उवाच । तद्वचनमाह—कौशिकं कुशिकगोत्रोत्पन्नं गाधिनन्दनं गाधिपुत्रमिह प्राप्तं मां यूयं शीघ्रमाख्यात कथयत । ह इति इहार्थे ॥ ३९ ॥

वे राजा से मिलने की इच्छा से द्वारपालों से बोले कि जाकर राजा से कहो कि मैं कौशिक गोत्र में उत्पन्न गाधि का पुत्र द्वार पर उपस्थित हूँ ॥ ३९ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य राज्ञो वेश्म प्रदुद्रुवुः ॥ ४० ॥
संभ्रान्तमनसः सर्वे तेन वाक्येन चोदिताः ।

तदिति । तस्य विश्वामित्रस्य तत् शीघ्रमाख्यात इति वचनं श्रुत्वा तेन विश्वामित्रोक्तेन वाक्येन चोदिताः प्रेरिताः अत एव संभ्रान्तमनसः अत्यादरयुक्तमनोयुक्ताः सर्वे द्वारपालाः राज्ञो वेश्म प्रदुद्रुवुः शीघ्रं जग्मुः । प्रदुद्रुवुरित्यनेन तेषां हर्षातिशयो ध्वनितः तेन विश्वामित्रस्य राजपरमप्रीतिविषयत्वं व्यक्तम् 'संभ्रमत्रयमिच्छन्ति भयमुद्वेगमादरम्' इत्यनुशासनम् ॥ ४० ॥

विश्वामित्र के उन वचनों को सुनकर चञ्चल चित्त हो सब लोग राजा के घर की ओर दौड़ पड़े ॥ ४० ॥

ते गत्वा राजभवनं विश्वामित्रमृषिं तदा ॥ ४१ ॥
प्राप्तमावेदयामासुर्नृपायेक्ष्वाकवे तदा ।

त इति । तदा विश्वामित्राज्ञापनकाले ते द्वारपालाः राजभवनं गत्वा प्राप्तमृषिं विश्वामित्रं तथा विश्वामित्रोक्तप्रकारेण इक्ष्वाकवे इक्ष्वाकुवंशप्रभवाय नृपाय दशरथाय आवेदयामासुः ॥ ४१ ॥

उन्होंने राजभवन में जाकर इक्ष्वाकुवंशी राजा से विश्वामित्र ऋषि के आगमन का समाचार सुनाया ॥ ४१ ॥

तेषां तद्वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः समाहितः ॥ ४२ ॥
प्रत्युज्जगाम संहृष्टो ब्रह्माणमिव वासवः ।

तेषामिति। तेषां द्वारपालानां तत् विश्वामित्रप्राप्तिबोधकं वचनं श्रुत्वा सपुरोधाः वशिष्ठसहितः समाहितः एकाग्रचित्तः संहृष्टः परमानन्दं प्राप्त दशरथः ब्रह्माणं वृहस्पतिं चतुर्मुखं वा वासव इन्द्र इव प्रत्युज्जगाम ॥४२॥

द्वारपालों के उस आशय का वचन सुनकर सावधान हो पुरोहित के साथ प्रसन्न होकर राजा दशरथ अगवानी करने आये, जैसे इन्द्र ब्रह्मा को आगे लेने के लिए आते हैं ॥ ४२ ॥

स दृष्ट्वा ज्वलितं दीप्त्या तापसं संशितव्रतम् ॥ ४३ ॥
प्रहृष्टवदनो राजा ततोऽर्घ्यमुपहारयत् ।

स इति। ततः प्रत्युद्गमनानन्तरं दीप्त्या तपोजनितपरमप्रकाशेन ज्वलितं प्रकाशितं संशितव्रतमत्युग्रनियमकर्तारं तापसं विश्वामित्रं दृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः स राजा अर्घ्यमुपहारयत् अददात् रामो राज्यमचीकरदितिवत् णिच्प्रयोगः आगमशास्त्रस्यानित्यत्वादड्विरहः ॥ ४३ ॥

राजा दीप्ति से प्रकाशमान, नियमधारी तापस को देखकर प्रसन्न हो उठे और उसके बाद अर्घ्य दिलाया ॥ ४३ ॥

स राज्ञः प्रतिगृह्यार्घ्यं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥ ४४ ॥
कुशलं चाव्ययं चैव पर्यपृच्छन्नराधिपम् ।

स इति। शास्त्रदृष्टेन विधिबोधितेनैव कर्मणा राज्ञः अर्घ्यं राजसमर्पितार्घोदकं चकारेण पाद्याचमनीयादीन् प्रतिगृह्य स्वीकृत्य स विश्वामित्रः अव्ययं विनाशरहितं नित्यमपि कुशलं नराधिपं पर्यपृच्छत् चकारान्तरमप्यर्थकम् नित्यमपि कुशलं पर्यपृच्छदित्यनेन विश्वामित्रस्य प्रेमाधिक्यं सूचितम् ॥ ४४ ॥

मुनि ने शास्त्रीय विधि से अर्घ्य ग्रहण किया और राजा ने कुशल मङ्गल पूछा ॥ ४४ ॥

पुरे कोशे जनपदे बान्धवेषु सुहृत्सु च ॥ ४५ ॥
कुशलं कौशिके राज्ञः पर्यपृच्छत्सुधार्मिकः ।

तदेव विशदयन्नाह—पुरे इति द्वाभ्याम्। सुधार्मिकः परमधर्मविशिष्टः कौशिकः विश्वामित्रः राज्ञः दशरथस्य पुरे कोशे च जनपदे देशे च वान्धवेषु च सुहृत्सु च कुशलं पर्यपृच्छत् ॥ ४५ ॥

धर्मात्मा विश्वामित्र ने राजा से पुर, कोश, राज्य, बन्धु और मित्रों का कुशल पूछा ।। ४५ ।।

अपि ते संनता सर्वे सामन्ता रिपवो जिताः ।। ४६ ।।
दैवं च मानुषं चैव कर्म ते साध्वनुष्ठितम् ।

अपीति । ते तव रिपवः सामन्ताः खण्डमण्डलेश्वराः जिताः त्वया पराजिताः सन्तः सन्नताः त्वां शरणं प्राप्ताः अपि किं दैवं देवोद्देश्यक-यागादिकं मानुषमतिथ्यभ्यागतोद्देश्यकभोजनादिकं च कर्म ते तव साध्व-नुष्ठितं संपादितं च । किंचापी किमर्थकौ ।। ४६ ।।

और पूछा कि हे राजन् ! जीते गए सामन्त और शत्रु सब विनम्र भाव से तो हैं और दैव तथा मनुष्य कर्म (अतिथि-सत्कार) सुन्दर रीति से तो हो रहा है ? ।। ४६ ।।

वसिष्ठं च समागम्य कुशलं मुनिपुङ्गवः ।। ४७ ।।
ऋषींश्च तान्यथान्यायं महाभागानुवाच ह ।

वसिष्ठमिति । मुनिपुङ्गवो मुनिश्रेष्ठो विश्वामित्रः वशिष्ठं महाभागान् अति भाग्यवतः तान् तत्र प्राप्तान् ऋषीन् वामदेवप्रभृतींश्च यथान्यायं यथोचितं समागम्य समालिङ्ग्य चकारेण यथोचितं प्रणामादिकं च कृत्वा कुशलमुवाच कुशलप्रश्नं कृतवान् इत्यर्थः हेति हर्षद्योतकम ।। ४७ ।।

इस प्रकार मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र वसिष्ठ के समीप जाकर कुशल पूछा और उन ऋषियों से उचित क्रम से कुशल प्रश्न पूछा ।। ४७ ।।

ते सर्वे हृष्टमनसस्तस्य राज्ञो निवेशनम् ।। ४८ ।।
विविशुः पूजितास्तेन निषेदुश्च यथार्हतः ।

त इति । यथार्हता यथायोग्यं पूजिताः परस्परं सत्कृताः अत एव हृष्टमनसः प्रमुदितान्तःकरणास्ते सर्वे वशिष्ठविश्वामित्रप्रभृतयः तस्य राज्ञो निवेशनं सभां विविशुः तत्र निषेदुश्च ।। ४८ ।।

वे सब मन में हर्ष लेकर राज भवन में प्रविष्ट हुए और राजा से यथा योग्य पूजा पाकर उचित रीति से आसन पर बैठ गये ।। ४८ ।।

अथ हृष्टमना राजा विश्वामित्रं महामुनिम् ।। ४९ ।।
उवाच परमोदारो हृष्टस्तमभिपूजयन् ।

सभाप्रवेशनानन्तरं राजकर्तृकसत्कृतिवचनं वर्णयन्नाह—अथेत्यादि ।

आसर्गसमाप्ति। अथ सभास्थित्यनन्तरं हृष्टमना हृष्टान्यतिसत्कारादिना हर्षितानि सर्वेषां मनांसि येन परमोदारः दातृशिरोमणिः अत एव हृष्टः हर्षं प्राप्तः राजा महाराजो दशरथः तमागतं महामुनिं विश्वामित्रमभिपूजयन् उवाच ॥ ४९ ॥

तदनन्तर प्रसन्न मन परम उदार राजा ने महामुनि विश्वामित्र से सत्कार करते हुए कहा ॥ ४९ ॥

यथामृतस्य संप्राप्तिर्यथा वर्षमनूदके ॥ ५० ॥
यथा सदृशदारेषु पुत्रजन्माप्रजस्य वै।

तदुक्तिमाह—यथेति। अमृतस्य सुधायाः संप्राप्तिः यथा अनूदके दुर्योगादुदकहीने श्रावणादौ वर्षं वृष्टिस्तथा, अपुत्रस्य अप्रजस्य सदृशदारेषु समानकुलशीलादिविशिष्टाङ्गनासु पुत्रजन्म यथा अनूदके इत्यत्र दीर्घः 'अन्येषामपि' इति विहितः नागेशस्तु आर्ष इत्याह ॥ ५० ॥

जैसे अमृत का मिलना, जैसे निर्जल देश में वर्षा, जैसे योग्य अनुरूप पत्नियों में सन्तान रहित को पुत्र जन्म ॥ ५० ॥

प्रनष्टस्य यथा लाभो यथा हर्षो महोदयः ॥ ५१ ॥
तथैवागमनं मन्ये स्वागतं ते महामुने।

प्रनष्टस्येति। प्रनष्टस्य तिरोहितस्य मण्यादेर्लाभो यथा महोदयः पुत्रविवाहाद्युत्सवजन्यः हर्षो यथा तथा ते तवागमनं प्राप्तिमहं मन्ये अतः हे मुने स्वागतमतिशोभनमागमनमेतत्। एवो हेत्वर्थे ॥ ५१ ॥

जैसे खोई हुई वस्तु का लाभ, जैसे किसी महोत्सव में हर्ष वैसे ही यह आप का आगमन है। हे महामुने ? आपका स्वागत है ॥ ५१ ॥

कं च ते परमं कामं करोमि किमु हर्षितः ॥ ५२ ॥
पात्रभूतोऽसि मे ब्रह्मन्दिष्ट्या प्राप्तोऽसि मानद।

कमिति। ते तव परमावश्यकं कं कामं हर्षितः सन्नहं करोमि कर्तास्मि एव उ एतद्वितर्कयामि। चशब्द एवार्थे। हे ब्रह्मन् पात्रभूतोऽसि सर्वप्रकारसेवायोग्यस्त्वमसि अतः हे मानद ! मे दिष्ट्या भाग्येन प्राप्तोऽसि ॥ ५२ ॥

आपके आगमन से हर्षित होकर मैं आपके किस प्रिय कार्य को करूँ। हे मान देनेवाले महर्षि, तुम बड़े भाग्य से प्राप्त हुए हो, तुम दान के सत्पात्र हो ॥ ५२ ॥

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम् ॥ ५३ ॥
यस्माद्विप्रेन्द्रमद्राक्षं सुप्रभाता निशा मम ।

अद्येति । अद्य भवद्दर्शनसमये मे मम जन्म सफलं मे जीवितं जीवनं च सुजीवितं तत्र हेतुमाह यस्माद्विप्रेन्द्रं विप्रश्रेष्ठ भवन्तमद्राक्षम् अत एव मम निशा मत्संबन्धिनीयं व्यतीता रात्रिः सुप्रभाता सुष्ठु शुभकार्योत्पादिका पूर्वमङ्गलविशिष्टः प्रभातो यस्याः सा ॥ ५३ ॥

आज मेरा जन्म सफल है, मेरा जीवन भी सुजीवन है, जिससे आप का दर्शन हुआ । आज की रात्रि धन्य है जिसने सुन्दर प्रभात को जन्म दिया है ॥ ५३ ॥

पूर्वं राजर्षिशब्देन तपसा द्योतितप्रभः ॥ ॥ ५४ ॥
ब्रह्मर्षित्वमनुप्राप्तः पूज्योऽसि बहुधा मया ।

पूर्वमिति । द्योतितप्रभस्त्वं पूर्वं राजर्षिशब्देन बोधितः अनु पश्चात् तपसा ब्रह्मर्षित्वं प्राप्तः अतः मया बहुधा बहुप्रकारेण त्वं पूज्योऽसि ॥५४॥

पहिले आप राजर्षि नाम से विख्यात थे, पश्चात् तपोबल से प्रकाशित होकर ब्रह्मर्षित्व को प्राप्त हुये हैं इसलिए आप बहुत प्रकार से मेरे पूज्य हैं ॥ ५४ ॥

तदद्भुतमभूद्विप्र पवित्रं परमं मम ॥ ५५ ॥
शुभक्षेत्रगतश्चाहं तव संदर्शनात्प्रभो ।

तदिति । हे विप्र हे प्रभो तत्तस्माद्धेतोः अद्भुतमिदं भवद्दर्शनं मम परमं पवित्रमतिपवित्रतोत्पादकं तत्र हेतुः यतः तव संदर्शनात् अहं शुभक्षेत्रगतः शुभानि यानि क्षेत्राणि तानि सर्वाणि गतः प्राप्तः सर्वशुभक्षेत्रयात्राफलं प्राप्तोऽहमित्यर्थः चो हेतौ ॥ ५५ ॥

हे विप्र ! आपका यह आगमन मेरे लिए परम पवित्र और अद्भुत है। हे प्रभो ! तुम्हारे दर्शन से मेरा देह परम पवित्र हो गया है ॥ ५५ ॥

ब्रूहि यत्प्रार्थितं तुभ्यं कार्यमागमनं प्रति ॥ ५६ ॥
इच्छाम्यनुगृहीतोऽहं त्वदर्थं परिवृद्धये ।

ब्रूहीति । यद्यस्मात् मया तुभ्यं प्रार्थितं तवावश्यकं किं किं कार्यमस्ति तत्तदहं कर्तास्मीत्येवं प्रार्थना कृता तस्मादागमनं प्रति भवदागमने यत्कार्यं प्रयोजनं तत्त्वं ब्रूहि त्वदर्थपरिवृद्धये भवत्प्रयोजनवृद्धिं कर्तुमनुगृहीतः त्वदनुग्रहपात्रीभूतोऽहमिच्छामि 'क्रियार्थोपदस्य' इति चतुर्थी ॥५६॥

आप अब बताइये कि आपके आगमन का क्या कारण है और आप क्या

चाहते हैं। आप के आगमन से मैं अनुगृहीत हुआ हूँ और आप के प्रयोजन की वृद्धि चाहता हूँ ॥ ५६ ॥

कार्यस्य न विमर्शं च गन्तुमर्हसि सुव्रत ॥ ५७ ॥
कर्ता चाहमशेषेण दैवतं हि भवान्मम ।

कार्यस्येति । हे सुव्रत कार्यस्य विमर्शं सेत्स्यति न वेति संशयं गन्तुं प्राप्तुं त्वं नैवार्हसि तत्र हेतुः यतः अहमशेषेण कर्ता भवत्कार्यं निःशेषतः साधयितास्मीत्यर्थः तत्र हेतुः यतो भवान् मम दैवतं इष्टदेवः। हिचौ हेत्वर्थौ ॥ ५७ ॥

हे मुने ! कार्य के विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं है, मैं सब कुछ करूँगा क्योंकि आप हमारे देवता हैं ॥ ५७ ॥

मम चायमनुप्राप्तो महानभ्युदयो द्विज ।
तवागमनजः कृत्स्नो धर्मश्चानुत्तमो मम ॥ ५८ ॥

ममेति । हे द्विज तवागमनजः त्वदागमनजन्यः मम चकारेणास्मदीयानां महानेवाभ्युदयः अभ्युदये हेतुः अनुत्तमः सर्वोत्तम एव कृत्स्नः संपूर्णोऽयं धर्मः पुण्यमनुप्राप्तः चकारावेवार्थौ ॥ ५८ ॥

हे द्विज ! यह मेरे लिए बड़ा अभ्युदय प्राप्त हुआ है और हे द्विज ! आपके आने से मेरा सारा धर्म अनुपम हुआ है ॥ ५८ ॥

इति हृदयसुखं निशम्य वाक्यं श्रुतिसुखमात्मवता विनीतमुक्तम् ।
प्रथितगुणयशा गुणैर्विशिष्टः परमऋषिः परमं जगाम हर्षम् ॥ ५९ ॥

इतीति । आत्मवता परमबुद्धिमता उक्त हृदयसुखं ईप्सितसिद्धिसूचकत्वादन्तःकरणसुखकारकम् अत एव श्रुतिसुखं विनीतम् उच्चारयितुर्नम्रताबोधकमितीदं वाक्यं निशम्य श्रुत्वा धर्मैर्विशिष्टः अत एव प्रथितगुणयशाः प्रथितं विस्तृतं गुणसंबंधियशा यस्य परमऋषिः ऋषिश्रेष्ठो विश्वामित्रः परमतुलं हर्षं जगाम प्राप ॥ ५९ ॥

इस प्रकार हृदय और श्रवण को सुख देने वाले, गुण और यश से विख्यात, जितेन्द्रिय राजा से विनयपूर्वक कहे गये वचन को सुनकर गुणों से विशिष्ट परम ऋषि को अपार हर्ष हुआ ॥ ५९ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः

तच्छ्रुत्वा राजसिंहस्य वाक्यमद्भुतविस्तरम् ।
हृष्टरोमा महातेजा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

राजा वचनश्रवणानन्तरं विश्वामित्रोक्तिं वर्णयन्नाह—तदित्यादिभिः। अद्भुतत्वसमानाधिकरणविस्तरत्वविशिष्टमित्यर्थः राजसिंहस्य महाराजाधिराजदशरथस्य तत्प्रसिद्धं वाक्यं श्रुत्वा हृष्टं रोम यस्य हृष्टरोमा महातेजाः परमतेजस्वी विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

पुलकित रोम, महातेजस्वी, विश्वामित्र ने श्रेष्ठ राजा दशरथ के अद्भुत और विस्तृत वाक्य को सुनकर कहा ॥ १ ॥

सदृशं राजशार्दूल तवैव भुवि नान्यतः ।
महावंशप्रसूतस्य वसिष्ठव्यपदेशिनः ॥ २ ॥

तद्भाषणाकारमाह—सदृशमिति । हे राजशार्दूल तवैव वचः भुवि पृथिव्यां महावंशप्रसूतस्य प्रशस्तकुलप्रादुर्भूतस्य वशिष्ठव्यपदेशिनः वशिष्ठकृतोपदेशविशिष्टस्य तव सदृशं त्वदनुरूपं न अन्यथा अननुरूपं न ॥ २ ॥

हे राजसिंह ! बड़े कुल में उत्पन्न और वसिष्ठ के उपदेश से युक्त आपके सदृश आपके अलावा भूमि पर कोई नहीं है ॥ २ ॥

यत्तु मे हृद्गतं वाक्यं तस्य कार्यस्य निश्चयम् ।
कुरुष्व राजशार्दूल भव सत्यप्रतिश्रवः ॥ ३ ॥

यदिति । हे राजशार्दूल राजश्रेष्ठ वाक्यं वक्तव्यं वाचा ज्ञाप्यं कार्यं यन्मे हृद्गतं तस्य कार्यस्य निश्चयमवश्यमहं करिष्यामीत्यध्यवसायं कुरुष्व तस्मात्सत्यप्रतिश्रवः सत्यप्रतिज्ञस्त्वं भव ॥ ३ ॥

हे राजसिंह ! मेरे मन में जो वक्तव्य है उसके करने का निश्चय करो और सत्यप्रतिज्ञ हो ॥ ३ ॥

अहं नियममातिष्ठे सिद्ध्यर्थं पुरुषर्षभ ।
तस्य विघ्नकरौ द्वौ तु राक्षसौ कामरूपिणौ ॥ ४ ॥

कार्यं बोधयन्नाह—अहमिति । हे पुरुषर्षभ सिद्ध्यर्थं स्वाभीष्टसिद्धये

अहं नियमं यागदीक्षामातिष्ठे तस्य नियमस्य विघ्नकरौ कामरूपिणौ द्वौ राक्षसौ स्तः तुशब्दस्तदनुयायिराक्षससंग्रहार्थः ॥ ४ ॥

हे पुरुष श्रेष्ठ ! जब मैं सिद्धि के लिए नियम (दीक्षा) ग्रहण करता हूँ तब काम रूपी दो राक्षस विघ्न करने वाले हैं ॥ ४ ॥

व्रते तु बहुशश्चीर्णे समाप्त्यां राक्षसाविमौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ॥ ५ ॥
तौ मांसरुधिरौघेण वेदिं तामभ्यवर्षताम् ।

विघ्नकरणप्रकारमाह—व्रते इति । सार्धश्लोकद्वयेन । व्रते यागनिश्चये बहुशश्चीर्णे प्रवृत्ते सति समाप्त्यां तु यागसमाप्तिकाले वा वीर्यवन्तौ अतिशयपराक्रमविशिष्टौ सुशिक्षितौ अतिशिक्षाविशिष्टौ तौ तस्करप्रायौ इमौ प्रसिद्धौ मारीचः सुबाहुश्च राक्षसौ तां यागसबन्धिनीं वेदीं मांसरुधिरौघेण मांसरुधिरसमूहेन अभ्यवर्षताम् चकारान्तर मूत्रादिसग्राहकम् ॥ ५ ॥

जब मैं व्रत का विधिवत् बहुत भाग पूरा कर लेता हूँ और उसकी समाप्ति (पूर्णाहुति) की वेला आती है तब ये दोनों राक्षस जिनका नाम मारीच और सुबाहु है, जो बड़े बलवान् और अस्त्र विद्या में निपुण हैं, मांस और रक्त के प्रवाह की वेदी पर वर्षा कर देते हैं ॥ ५ ॥

अवधूते तथाभूते तस्मिन्नियमनिश्चये ॥ ६ ॥
कृतश्रमो निरुत्साहस्तस्माद्देशादपाक्रमे ।

अवधूते इति । तस्मिन्यागे अवधूते राक्षसाभ्यां विनाशिते सति अत एव नियम निश्चये व्रतसंकल्पे तथाभूते विनाशिते सति कृतः श्रमो येन श्रममात्रफलक इत्यर्थः अत एव निरुत्साहः उत्साहरहितोऽहं तस्मात् देशादपाक्रमे इहागतोऽस्मि ॥ ६ ॥

पूर्णता के निकट पहुँचे हुए उस संकल्पित नियम के नष्ट हो जाने से केवल श्रम ही हाथ लगता है अतः निरुत्साह होकर मैं उस स्थान से निकल आया हूँ ।

न च मे क्रोधमुत्स्रष्टुं बुद्धिर्भवति पार्थिव ॥ ७ ॥
तथाभूता हि सा चर्या न शापस्तत्र मुच्यते ।

ननु समर्थभर्वाद्भः शापेन कुतो न प्रध्वंसितावित्यत आह—न चेति । हे पार्थिव क्रोधमुत्स्रष्टुं कर्तुं बुद्धिर्न भवति तत्र हेतुः सा चर्या तथाभूता

क्रोधानर्हा अत एव शापस्तत्र न मुच्यते शापहेतुभूतस्य क्रोधस्याभावात्ताभ्यां शापो न दत्तः । हिर्हेतौ ॥ ७ ॥

हे राजन् ! मेरी बुद्धि क्रोध करने के लिए प्रस्तुत नहीं होती क्योंकि यह यज्ञ ही ऐसा है कि जिसमें शाप देना वर्जित है ॥ ७ ॥

स्वपुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ८ ॥
काकपक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि ।

ननु कथं तयोः शान्तिरित्यत आह—स्वपुत्रमिति । हे राजशार्दूल सत्यपराक्रमं कापटयसंसर्गरहितपराक्रमविशिष्टं काकपक्षधरं बालानां कपोलसमीपवर्तिशिखा काकपक्षः तं धरति स तं वीरं ज्येष्ठं स्वपुत्रं रामं मे मह्यं दातुमर्हसि त्वं योग्योऽसि एतेनानेनैव तच्छान्तिर्भविष्यतीति ध्वनितम् ॥ ८ ॥

इसलिए हे राजसिंह ! अपने बड़े पराक्रमी, शूरवीर, काकपक्षधारी ज्येष्ठ पुत्र राम को मुझे दे दीजिए ॥ ८ ॥

शक्तो ह्येष मया गुप्तो दिव्येन स्वेन तेजसा ॥ ९ ॥
राक्षसा ये विकर्तारस्तेषामपि विनाशने ।

नन्वयं बालत्वात् तच्छान्ति कथं विधास्यतीत्यत आह—शक्त इति । दिव्येन प्राकृतविलक्षणेन स्वेन स्वकीयेन तेजसा विशिष्टः मयापि गुप्तः तत्तेजःस्मारकत्वेन रक्षितः एषः रामः ये विकर्तारो विघ्नकर्तारो राक्षसाः तेषां विनाशने शक्तः समर्थ एव । एतेन यदि सर्वराक्षसविनाशने समर्थस्तर्हि एतयोर्विनाशने समर्थ इति किं वक्तव्यमिति काव्यार्थपत्तिरलंकारो ध्वनितः ॥ ९ ॥

मुझ से और अपने दिव्य तेज से रक्षित यह राम जो यज्ञ में विकार पैदा करने वाले राक्षस हैं उनका विनाश करने में भी समर्थ है ॥ ९ ॥

श्रेयश्चास्मै प्रदास्यामि बहुरूपं न संशयः ॥ १० ॥
त्रयाणामपि लोकानां येन ख्यातिं गमिष्यति ।

तवापि यशो भविष्यतीति बोधयन्नाह—श्रेय इति । अस्मै रामाय बहुरूपमनेकविधं श्रेयः कल्याणसाधनं प्रदास्यामि येन कल्याणसाधनेन त्रयाणां लोकानां ख्यातिं गमिष्यत्येव अत्र अस्मिन्विषये संशयः नैव कार्यः एतेनास्य विवाहं कारयिष्यामीति सूचितम् चापी एवार्थौ ॥ १० ॥

इसके बदले में मैं अनेक फल देनेवाला यज्ञ का श्रेय निःसन्देह दूँगा जिससे यह तीनों लोकों में ख्याति प्राप्त करेगा ॥ १० ॥

न च तौ राममासाद्य शक्तौ स्थातुं कथंचन ॥ ११ ॥
न च तौ राघवादन्यो हन्तुमुत्सहते पुमान् ।

न चेति । तौ मारीचसुबाहू राममासाद्य प्राप्य स्थातुं कथंचनापि न शक्तौ भविष्यत इति शेषः नन्वितो योद्धारो नीयन्तां किं रामेणेत्यत आह- राघवात् रामात् अन्यो भिन्नः पुमान् तौ मारीचसुबाहू हन्तुं नैवोत्सहते च शब्दोऽप्यर्थे अपर एवार्थे ॥ ११ ॥

न वे दोनों राम के सामने किसी भी प्रकार से टिक सकेंगे और न उन्हें राम को छोड़कर दूसरा पुरुष मार ही सकता है ॥ ११ ॥

वीर्योत्सिक्तौ हि तौ पापौ कालपाशवशं गतौ ॥ १२ ॥
रामस्य राजशार्दूल न पर्याप्तौ महात्मनः ।

ननु तयोरतिबलवत्त्वात् कथं बालेन पराभूतिरित्यत आह—वीर्येति । हे राजशार्दूल वीर्योत्सिक्तौ अतिवीर्यहेतुकगर्वविशिष्टौ अत एव पापौ पापाचारौ अत एव कालपाशवशंगतौ तौ मारीचसुबाहू, रामस्य रणाजिरे रामरणभूमौ पर्याप्तौ योद्धुं परिपूर्णौ नैव भविष्यतः हिशब्द एवार्थे ॥१२॥

हे राजसिंह ! पराक्रम से गर्वित और मृत्यु के पाश में बंधे हुए वे दोनों महात्मा राम के तुल्य नहीं हैं ॥ १२ ॥

न च पुत्रगतं स्नेहं कर्तुमर्हसि पार्थिव ॥ १३ ॥
अहं ते प्रतिजानामि हतौ तौ विद्धि राक्षसौ ।

न चेति । हे पार्थिव पुत्रगतं पुत्रविषयक स्नेहं तद्दानप्रतिबन्धकीभूत- प्रेमाणं कर्तुं नैवार्हसि तौ राक्षसौ अनेन हतौ निहतप्रायौ इति ते तवाग्रे अहं प्रतिजानामि इति विद्धि जानीहि इति शब्दावध्याहृतौ ॥ १३ ॥

हे पार्थिव ! आप पुत्र के प्रति जो स्नेह है उसके वश में न हों । मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि आप उन राक्षसों को मरा हुआ ही समझिए ॥ १३ ॥

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम् ॥ १४ ॥
वशिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिताः ।

नन्वनेन तौ राक्षसौ निहतप्रायौ इति भवद्भिः कथं निश्चितमित्यत आह—अहमिति । महात्मानं महः सर्वपूजनीयः आत्मा स्वरूपं यस्य तं

सत्यपराक्रमं सत्यः कापट्यरहितः पराक्रमो यस्य स तं रामं सहृदयाभि-रामदातारमहं वेद्मि स्वकार्यवशादेष एवं वदतीति भ्रमं निवारयन्नाह—महातेजाः परमतेजस्वी वशिष्ठश्च वेत्ति एवं तपसि परमविचारे इह स्थिताः निरताः येऽन्ये महात्मानः वामदेवप्रभृतयः तेऽपि विदन्ति हि शब्दोप्यर्थे ॥ १४ ॥

मैं महात्मा सत्य पराक्रमी राम को जानता हूँ और महातेजस्वी वशिष्ठ और ये भी जानते हैं जो तप में स्थित हैं ॥ १४ ॥

यदि ते धर्मलाभं तु यशश्च परमं भुवि ॥ १५ ॥
स्थिरमिच्छसि राजेन्द्र रामं मे दातुमर्हसि ।

इदानीं रामदाने किंचिच्चेष्टादिना राज्ञो वैमनस्यमालक्ष्याह—यदिति । हे राजेन्द्र महाराजाधिराज ते तव धर्मलाभं अपूर्वधर्मप्राप्तिं स्थितं स्थिरं परममत्युत्कृष्टं भुवि यशश्च यदीच्छसि तर्हि मे मह्यं रामं दातुमेव अर्हसि त्व योग्योऽसि ॥ १५ ॥

हे श्रेष्ठ राजन् ! यदि आप संसार में धर्म की प्राप्ति और उत्तम यश की स्थिरता चाहते हों तो मुझे राम को दे सकते हैं ॥ १५ ॥

यद्यभ्यनुज्ञां काकुत्स्थ ददते तव मन्त्रिणः ॥ १६ ॥
वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे ततो रामं विसर्जय ।

यदीति । हे काकुत्स्थ दशरथ वसिष्ठप्रमुखाः सर्वे तव मन्त्रिणः यदि अभ्यनुज्ञामनुमतिं ददते ततस्तर्हि रामं विसर्जय प्रेषय ॥ १६ ॥

हे काकुत्स्थ ! यदि वसिष्ठ प्रमुख तुम्हारे सब मन्त्री अनुमति देते हों तो राम को विदा करो ॥ १६ ॥

अभिप्रेतमसंसक्तमात्मजं दातुमर्हसि ॥ १७ ॥
दशरात्रं हि यज्ञस्य रामं राजीवलोचनम् ।

अभिप्रेतमिति । यज्ञस्य दशरात्रमेवावशिष्टमिति शेषः । अतः अभिप्रेतमस्मदिच्छाविषयीभूतसंसक्तं प्राप्तपौगण्डावस्थाकत्वेन भ्रात्रादि-विषयकात्यन्तासक्तियोग्यतारहितम् किंच सर्वविलक्षणत्वेन सर्वत्रामिलितं राजीवलोचनमात्मजं पुत्रं रामं दातुमर्हसि हिरेवार्थे ॥ १७ ॥

अतिप्रिय किन्तु अपनी देह से अलग रहने वाले, कमल नयन, तथा अपनी देह से उत्पन्न हुए राम को यज्ञ की दशरात्रियों के लिये देने के लिए योग्य हैं ॥१७॥

नात्येति कालो यज्ञस्य यथायं मम राघव ॥ १८ ॥
तथा कुरुष्व भद्रं ते मा च शोके मनः कृथाः ।

नेति । हे राघव रघुकुलोद्भव दशरथ यथा येन दानप्रकारेण अयं मम यज्ञस्य कालः नात्येति नातिक्रामति तथा तेन प्रकारेण कुरुष्व शीघ्रं रामं देहीत्यर्थः ततस्ते तव भद्रं कल्याणमतोऽतिशोके मनो मा कृथाः राघव इति संबोधनेन रघुकुलोद्भवत्वेनापि दानाद्विरामस्तवानुचित इति सूचितम् ॥ १८ ॥

हे राघव ! जिस प्रकार मेरे यज्ञ का कालातिक्रम न हो तुम वैसा करो, तुम्हारा कल्याण हो, मन में किसी प्रकार का शोक न करो ॥ १८ ॥

इत्येवमुक्त्वा धर्मात्मा धर्मार्थसहितं वचः ॥ १९ ॥
विरराम महातेजा विश्वामित्रो महामतिः ।

इतीति । धर्मात्मा वेदबोधितकर्मप्रवर्तनाविषयकयत्नवान् महातेजाः महामुनिः अतितपश्चर्यावत्त्वेन सर्वमुनिश्रेष्ठो विश्वामित्रः धर्मार्थसहितमितीदं वचः एवमनेन प्रकारेण उक्त्वा विरराम निववृते ॥ १९ ॥

बड़े तेजस्वी, महामुनि, धर्मात्मा, विश्वामित्र इस प्रकार के धर्म और अर्थ से युक्त वचन कह कर चुप हो गये ॥ १९ ॥

स तन्निशम्य राजेन्द्रो विश्वामित्रवचः शुभम् ॥ २० ॥
शोकेन महताविष्टश्चचाल च मुमोह च ।
लब्धसंज्ञस्ततोत्थाय व्यषीदत भयान्वितः ॥ २१ ॥

स इति । राजेन्द्रो महाराजाधिराजः स प्रसिद्धो दशरथः शुभं मंगलप्रदं तद्विश्वामित्रवचो निशम्य श्रुत्वा महता शोकेन आविष्टः चचाल च मुमोह च लब्धसंज्ञः भयान्वितः पुत्रदानाभावे तच्छापहेतुकभीतिविशिष्टः सन् व्यषीदत च विनापि च समुच्चयः ॥ २०–२१ ॥

वह राजा विश्वामित्र के शुभ वचन को सुनकर बड़े शोक से दब गया और मोह को प्राप्त हुआ, पुनः सावधान हो कर उठा और भय से युक्त हो अत्यन्त दुःखित हुआ ॥ २०–२१ ॥

इति हृदयमनोविदारणं मुनिवचनं तदतीव शुश्रुवान् ।
नरपतिरभवन्महात्मा व्यथितमनाः प्रचचाल चासनात् ॥ २२ ॥

तदेव भङ्ग्यन्तरेणाह—इतीति। हृदयमनोविदारणं हृदयमनश्चालकं तन्मुनिवचनमतीव अत्यन्तं शुश्रुवान् महान् सर्वपूज्यो महात्मा अतिधैर्यविशिष्टो नरपतिः राजा व्यथितमना अभवत् आसनात्प्रचचाल च मूर्च्छितोऽभवदित्यर्थः एतेन राजनिष्ठप्रीतेरतिशयो ध्वनितः ॥ २२ ॥

बड़े महात्मा राजा दशरथ ने इस प्रकार सहृदयों के बल को विदीर्ण करने वाले अथवा हृदय के साथ मन को विदीर्ण करने वाले विश्वामित्र मुनि के वचन को सुना और उनका मन अत्यन्त व्यथित हुआ तथा वे आसन से विचलित हो उठे ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायामष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥



एकोनविंशः सर्गः

तच्छ्रुत्वा राजशार्दूलो विश्वामित्रस्य भाषितम् ।
मुहूर्तमिव निःसंज्ञः सञ्ज्ञावानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

तदिति । विश्वामित्रस्य तत् प्रसिद्धं भाषितं श्रुत्वा मुहूर्तं निःसंज्ञः संज्ञारहित एव राजशार्दूलः राजश्रेष्ठः दशरथः संज्ञावान् प्राप्तपुनःसंज्ञानः सन् इदं वक्ष्यमाणं वचनमब्रवीत् इवशब्द एवार्थे ॥ १ ॥

वे राजसिंह दशरथ विश्वामित्र के उस कथन को सुनकर मुहूर्त भर अचेत रहे, फिर सचेत होकर बोले ॥ १ ॥

ऊनषोडशवर्षो मे रामो राजीवलोचनः ।
न युद्धयोग्यतामस्य पश्यामि सह राक्षसैः ॥ २ ॥

तद्वचनमेवाह—ऊनेत्यादिभिः । राजीवलोचनः कमलायतनयनः मे रामः ऊनषोडशवर्षः ऊनः षोडशः षोडशानां सङ्ख्यापूरको वर्षो यस्य पञ्चदशवार्षिक इत्यर्थः । अतः अस्य बालस्य राक्षसैः सह युद्धयोग्यतां न पश्यामि अत्र ऊनषोडशवर्षो मे इत्युक्त्या विश्वामित्रसहगमनसमये रामस्य षोडशो वर्षः प्रविष्टः इति फलितं तस्मिन्नेव वर्षे रामसीताविवाहस्य प्रसिद्धत्वेन षोडशवार्षिकस्य रामस्य विवाह इति सिद्धम् ॥ २ ॥

मेरे कमल नयन राम की अवस्था अभी सोलह वर्ष के भीतर ही है, मैं राक्षसों के साथ युद्ध करने की योग्यता इसमें नहीं देखता हूँ ॥ २ ॥

इयमक्षौहिणी सेना यस्याहं पतिरीश्वरः ।
अनया सहितो गत्वा योद्धाहं तैर्निशाचरैः ॥ ३ ॥

इयमिति । यस्य यस्याः सेनायाः अहं पतिः पालकः ईश्वरो नियन्ता सा इयमक्षौहिणी सेना अस्तीति शेषः अनया सेनया सहितः युक्तोऽहं गत्वा तैर्भवद्यज्ञविघ्नकारकैर्निशाचरैः सह योद्धा युद्धं कर्तास्मीति शेषः एतेन रामगमनस्य न प्रयोजनमिति ध्वनितम् तेन रामो भवता न नेतव्य इति राजप्रार्थना सूचिता । यस्येति 'सामान्ये नपुंसकम्' अत एव संहितायां नार्षकल्पना । अक्षौहिणीस्वरूपं तु—'एको रथो गजश्चैको नराः पञ्च

पदातयः । त्रयश्च तुरगास्तज्ज्ञैः पत्तिरित्यभिधीयते ।। पत्तिं तु त्रिगुणामेकं विदुः सेनामुखं बुधाः । त्रीणि सेनामुखान्येको गुल्म इत्यभिधीयते ।। त्रयो गुल्मा गणो नाम वाहिनी तु गणास्त्रयः । स्मृतास्तिस्रस्तु वाहिन्य. पृतनेति विचक्षणैः ।। चमूस्तु पृतनास्तिस्रश्चम्वस्तिस्रस्त्वनीकिनी । अनीकिनीदशगुणं प्राहुरक्षौहिणीं बुधाः' इति भारतादिग्रन्थेभ्योऽवगन्तव्यम् ।। ३ ।।

यह मेरी अक्षौहिणी सेना है मैं जिसका प्रधान सेनापति और राजा हूँ। मैं इसके साथ चलूँगा और उन राक्षसों से युद्ध करूँगा ।। ३ ।।

इमे शूराश्च विक्रान्ता भृत्या मेऽस्त्रविशारदाः ।
योग्या रक्षोगणैर्योद्धुं न रामं नेतुमर्हसि ।। ४ ।।

इमे इति । शूराः शौर्यविशिष्टाः विक्रान्ताः पराक्रमवन्तः अस्त्रविशारदाः अस्त्रोपलक्षितास्त्रशस्त्रनिपुणाः इमे भवन्निकटे स्थिता मे भृत्या एव रक्षोगणैः योद्धुं योग्याः सुकुमारत्वात् न राम इत्यर्थः अतो रामं नेतुं त्वं नार्हसि चशब्द एवार्थे ।। ४ ।।

ये महापराक्रमी, शूरवीर, अस्त्र विद्या में निपुण मेरे द्वारा पालित योद्धा हैं जो राक्षसों के साथ युद्ध करने में योग्य हैं इसलिये आप राम को न ले जाइए।

अहमेव धनुष्पाणिर्गोप्ता समरमूर्धनि ।
यावत्प्राणान्धरिष्यामि तावद्योत्स्ये निशाचरैः ।। ५ ।।

अहमिति । यावत्कालं प्राणान्धरिष्यामि तावत्काल धनुष्पाणिरहमेव गोप्ता ते यज्ञस्य स्यामिति शेषः कथं गोप्तासीत्यत आह समरमूर्धनि निशाचरैः विघ्नकारकराक्षसैः सह योत्स्ये यदा यदा राक्षसभीतिः भवन्तं प्राप्स्यति तदा तदा तत्र गत्वा निशाचरान्हत्वा यज्ञ रक्षितास्मीत्यर्थः ।।५।।

मैं ही हाथ में धनुष लेकर आप के यज्ञ की रक्षा करूँगा और समरभूमि में जब तक जीवित रहूँगा तब तक राक्षसों से लड़ूँगा ।। ५ ।।

निर्विघ्ना व्रतचर्या सा भविष्यति सुरक्षिता ।
अहं तत्र गमिष्यामि न रामं नेतुमर्हसि ।। ६ ।।

निर्विघ्नेति । सुरक्षिता मयात्यन्तं पालिता अत एव निर्विघ्ना सा भवत्कर्तृका व्रतचर्या भविष्यति अतः तत्र भवद्यागनिकटे अहं गमिष्यामि अतः रामं नेतुं नार्हसि ।। ६ ।।

आपके व्रत का संकल्प मुझ से सुरक्षित होकर पूर्ण होगा। अतः मैं वहाँ चलूँगा, आप राम को न ले जाँय ॥ ६ ॥

बालः ह्यकृतविद्यश्च न च वेत्ति बलाबलम् ।
न चास्त्रबलसंयुक्तो न च युद्धविशारदः ॥ ७ ॥

रामगमनायोग्यत्व विशदयन्नाह—बाल इत्यादिभिः । बालः ऊनषोडशवार्षिकः अत एव अकृतविद्यः न कृता गुरूपदेशप्राप्त्या प्रकटिता विद्या येन अत एव न अस्त्रविद्यासंयुक्तः अस्त्रोपलक्षितगुरूपदिष्टास्त्रशस्त्रादिज्ञानविशिष्टो न अत एव बलाबलं न वेत्ति गणयति । हिश्चत्रयं च हेतौ एतेन रामनयनमयुक्तमिति ध्वनितम् अत एव 'सर्वे वेदविदः शूराः', 'सर्वे ज्ञानोदसम्पन्नाः' इति पूर्वोक्तो न विरोधः ॥ ७ ॥

राम अभी बालक है, धनुर्विद्या में निपुण भी नहीं है, बलाबल भी नहीं जानता है, अस्त्रविद्याबल से युक्त भी नहीं है और युद्ध की कला भी नहीं जानता है॥७॥

न चासौ रक्षसां योग्यः कूटयुद्धा हि राक्षसाः ।
विप्रयुक्तो हि रामेण मुहूर्तमपि नोत्सहे ॥ ८ ॥
जीवितुं मुनिशार्दूल न रामं नेतुमर्हसि ।

ननु शिक्षयित्वा यागशालां नेष्यामि इत्यत आह—न चेति । असौ रामः रक्षसां योग्यो न च राक्षसैर्योद्धुं नैवार्हतीत्यर्थः तत्र हेतुः हि यतः राक्षसाः कूटयुद्धाः कपटयुद्धकर्त्तारः। रामो न नेतव्य इत्यत्र हेत्वन्तरमाह—हे मुनिशार्दूल मुनिश्रेष्ठ रामेण विप्रयुक्तो विश्लिष्टः अहं जीवितुं मुहूर्तमपि नोत्सहे न समर्थोऽस्मि तस्माद्रामं नेतुं त्वं नार्हसि । एतेन स्वगमनेच्छाऽपि रामेण सहैवेति सूचितम् सार्धश्लोक एकान्वयो चशब्द एवार्थे ॥ ८ ॥

वह राक्षसों के साथ लड़ने के योग्य नहीं है क्योंकि राक्षस कपट युद्ध करते हैं। राम के विरह में मैं एक मूहूर्त भी नहीं जी सकता अतः हे मुनि श्रेष्ठ ! तुम राम को न ले जाओ ॥ ८ ॥

यदि वा राघवं ब्रह्मन्नेतुमिच्छसि सुव्रत ॥ ९ ॥
चतुरङ्गसमायुक्तं मया सह च तं नय ।

तदेव स्पष्टमाह—यदीति । हे ब्रह्मन् हे सुव्रत यदि राघवं रामं नेतुमिच्छस्येव तर्हि चतुरङ्गसमायुक्तं साङ्गसेनायुक्तं मया च सहितं रामं नय स्वाश्रमं प्रापय वाशब्द एवार्थे ॥ ९ ॥

हे ब्रह्मन् । हे सुन्दर व्रतधारी विश्वामित्र ! यदि आप राम को ही ले जाना चाहते हों तो चतुरङ्गिणी सेना और मेरे साथ राम को ले चलिए ॥ ९ ॥

षष्टिर्वर्षसहस्राणि जातस्य मम कौशिक ॥ १० ॥
दुःखेनोत्पादितश्चायं न राम नेतुमर्हसि ।

रामविश्लेषासहिष्णुत्वे कारणं बोधयन्नाह—षष्टिरिति । हे कौशिक ! जातस्य इह प्रादुर्भूतस्य मम वर्षसहस्राणि षष्टिर्व्यतीतानि अनन्तरं दुःखेन दुःखसाध्ययत्नेन अयं राम उत्पादितः प्रादुर्भावितस्तस्माद्रामं नेतु त्वं नार्हसि चोऽनन्तरार्थे कृच्छ्रेणोत्पादित इति भट्टसंमतः पाठः ॥ १० ॥

हे कौशिक ! मुझे उत्पन्न हुये साठ सहस्र वर्ष बीत गए । अतः बड़ी तपस्या से उत्पादित राम को तुम्हें नहीं ले जाना चाहिए ॥ १० ॥

चतुर्णामात्मजानां हि प्रीतिः परमिका मम ॥ ११ ॥
ज्येष्ठे धर्मप्रधाने च न रामं नेतुमर्हसि ।

चतुर्णामिति । चतुर्णामात्मजानां मध्ये इति शेषः । ज्येष्ठे प्रथमं प्रादुर्भूते धर्मप्रधाने धर्मरक्षके मे मम प्रीतिः परमिका अत्यधिका रामं नेतुं त्वं नैवार्हसि चशब्द एवार्थे हिशब्दो हेत्वर्थे ॥ ११ ॥

अपने चारों पुत्रों में मेरा ज्येष्ठ, धर्म प्रधान राम में परम प्रेम है अतः आपका राम को ले जाना उचित नहीं है ॥ ११ ॥

किंवीर्या राक्षसास्ते च कस्य पुत्राश्च के च ते ॥ १२ ॥
कथंप्रमाणाः के चैतान्रक्षन्ति मुनिपुङ्गव ।

अथ रामनयनस्य सर्वथायोग्यत्वं प्रतिपादयितु रक्षःस्वरूपं पृच्छति—किंवीर्या इत्यादिभिः । हे मुनिपुङ्गव ! ते भवद्यज्ञविघ्नकर्तारो राक्षसाः किंवीर्याः कीदृग्वीर्यविशिष्टा इत्यर्थः । कस्य पुत्राश्च ते के च किन्नामान इत्यर्थः कथं प्रमाणाः कीदृक्प्रमाणविशिष्टाश्च एतान् राक्षसान् के रक्षन्ति च ॥ १२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ ! वे राक्षस कितने पराक्रमी हैं, जिसके पुत्र हैं, वे कौन हैं, उनका आकार किस प्रकार का है तथा उनकी रक्षा कौन करता है ॥ १२ ॥

कथं च प्रतिकर्तव्यं तेषां रामेण रक्षसाम् ॥ १३ ॥
मामकैर्वा बलैर्ब्रह्मन्मया वा कूटयोधिनाम् ।

कथमिति । हे ब्रह्मन् कूटयोधिनां तेषां रक्षसां रामेण वा मामकैः बलैः सैन्यैर्वा मया वा कथं प्रतिकर्तव्यं शान्तिर्विधेया इत्यर्थः वार्थश्चकारः ॥ १३ ॥

उन कपट युद्ध करनेवाले राक्षसों का प्रतिकार राम अथवा मेरी सेना अथवा मैं कैसे कर सकूंगा ! ॥ १३ ॥

सर्वं मे शंस भगवन्कथं तेषां मया रणे ॥ १४ ॥
स्थातव्यं दुष्टभावानां वीर्योत्सिक्ता हि राक्षसाः ।

सर्वमिति । हे भगवन् वीर्योत्सिक्ताः ये राक्षसाः तेषां दुष्टभावानां निषिद्धविचारशीलानां रणे मया कथं केन प्रकारेण स्थातव्यम् इति सर्वं मे मह्यं शंस कथय । एतेन तस्य युद्धोत्साहराहित्यं सूचितं तेन तस्य वात्सल्यरसमग्नत्वं व्यक्तम् तेन वीररसाद्वात्सल्यरसस्याधिक्यं सूचितम् ॥ १४ ॥

हे महाराज ! आप सब कुछ मुझसे कहें कि मैं रण में उनके सामने कैसे स्थित हो सकूँगा, क्योंकि दुष्ट स्वभाव वालों में राक्षस बड़े अहम्मन्य पराक्रमी होते हैं ॥१४॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १५ ॥
पौलस्त्यवंशप्रभवो रावणो नाम राक्षसः ।

तस्येति । तस्य राज्ञः तत्प्रसिद्धं वचनं श्रुत्वा विश्वामित्रः अभ्यभाषत तदुक्तिमेवाह पौलस्त्यवंशप्रभवः रावणो नाम राक्षसोऽस्तीति शेषः ॥१५॥

राजा दशरथ के इस वचन को सुनकर विश्वामित्र उत्तर में बोले कि पुलस्त्य ऋषि के वंश में उत्पन्न रावण नाम का राक्षस है ॥ १५ ॥

स ब्रह्मणा दत्तवरस्त्रैलोक्यं बाधते भृशम् ॥ १६ ॥
महाबलो महावीर्यो राक्षसैर्बहुभिर्वृतः ।

स इति । महाबलः महासैन्यः महावीर्यः महापराक्रमः अत एव बहुभिः राक्षसैर्वृतः ब्रह्मणा दत्तः वरः यस्मै स रावणः त्रैलोक्यं भृशं बाधते । एतेन त्रैलोक्यान्तः पातित्वात्स्वयज्ञस्यापि विघ्नकर्ता रावण इति ध्वनितम् । १६ ॥

महाबली, महावीर तथा अनेक राक्षसों से घिरा हुआ वह ब्रह्मा का वरदान पाकर तीनों लोकों को पर्याप्त पीड़ा पहुँचा रहा है ॥ १६ ॥

श्रूयते च महाराज रावणो राक्षसाधिपः ॥ १७ ॥
साक्षाद्वैश्रवणभ्राता पुत्रो विश्रवसो मुनेः ।
यदा न खलु यज्ञस्य विघ्नकर्ता महाबलः ॥ १८ ॥
ते संचोदितौ तौ तु राक्षसौ च महाबलौ ।
मारीचश्च सुबाहुश्च यज्ञविघ्नं करिष्यतः ॥ १९ ॥

श्रूयते इति । महावीर्यः साक्षादौरसः विश्रवसः मुनेः हि यतः पुत्रः अत एव वैश्रवणभ्राता यः रावणो नाम राक्षसः श्रूयते स महाबलः महासेनावान् यदा यज्ञस्य साक्षान्नैव विघ्नकर्ता तदैव तेनैव रावणेन संचोदितौ महाबलौ तौ प्रसिद्धौ मारीचः सुबाहुश्च राक्षसौ एव यज्ञविघ्नं करिष्यतः कुरुतः खलुशब्दः साक्षादर्थे वैतुचशब्दाः एवार्थकाः सार्द्धश्लोकद्वयमेकान्वयि ।। १७–१९ ।।

हे महाराज ! राक्षसों का पालक रावण जगत् में विदित है, वह साक्षात् कुबेर का भाई और विश्रवा मुनि का पुत्र है। वह महाबली स्वयं जब यज्ञ में विघ्न नहीं करता तब उसके प्रेरित महाबली मारीच और सुबाहु नाम के दो राक्षस यज्ञ में विघ्न करते हैं ।। १७–१९ ।।

इत्युक्तो मुनिना तेन राजोवाच मुनिं तदा ।
नहि शक्तोऽस्मि सङ्ग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मनः ।। २० ।।

इतीति । तेन प्रसिद्धेन मुनिना रामानयनयत्नशीलेन विश्वामित्रेण इति अनेन प्रकारेण उक्तः राजा महाराजाधिराजस्तदा तस्मिन्काले एव मुनिमुवाच तदुक्तिमाह–दुरात्मनः दुष्टस्वभावस्य दुर्ज्ञेयप्रयत्नस्य वा तस्य राक्षसस्य संग्रामे स्थातु नैव शक्तः अस्मि। एतेन वीररसस्य वात्सल्यरसविरोधित्वं सूचितम् तेन तत्सदृशवात्सल्यरसवान्स एवेत्यनन्वयालङ्कारः सूचितः ।। २० ।।

राजा दशरथ ने विश्वामित्र मुनि का वचन सुन कर उनसे कहा कि मैं संग्राम में उस दुरात्मा के सामने स्थिर नहीं हो सकता ।। २० ।।

स त्वं प्रसादं धर्मज्ञ कुरुष्व मम पुत्रके ।
मम चैवाल्पभाग्यस्य दैवतं हि भवान्गुरुः ।। २१ ।।

स इति । हे धर्मज्ञ अल्पभाग्यस्य अल्पात् अल्पकालतः प्राप्तं भाग्यं प्रकृतपुत्रप्राप्तिरूपं यस्य तस्य मम दैवत देवता गुरुश्च यतो भवान् अतः सः प्रसिद्धस्त्वं मम पुत्रके प्रसादं कुरुष्वैव हिहतौ ।। २१ ।।

हे धर्मज्ञ ! इसलिए मेरे नन्हें पुत्र राम पर आप कृपा करें, मुझ मन्द भाग्य के आप ही गुरु हैं और आप ही देवता हैं ।। २१ ।।

देवदानवगन्धर्वा यक्षाः पतगपन्नगाः ।
न शक्ता रावणं सोढुं किं पुनर्मानवा युधि ।। २२ ।।

स्वाशक्तत्वे हेतुमाह—देवेति। युधि युद्धे रावण सोढुं यदि देवादयो न शक्तास्तर्हि मानवा न शक्ताः इति किं वक्तव्यम् पुनरिति यद्यथ एतेन काव्यार्थापत्त्यलङ्कारेण सामान्याभावे विशेषाभावस्य निश्चितत्वेन यदि सर्वे न शक्तास्तर्हि अहं न शक्त इति किं वक्तव्यमिति काव्यार्थापत्त्यलङ्कारो ध्वनितः तेन ब्रह्मणा दत्तवर इति विश्वामित्रसामान्योक्त्या सर्वाविध्यत्वं रावणस्येति राज्ञः निश्चितमिति वस्तु व्यक्तम् ॥ २२ ॥

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, पक्षी और पन्नग आदि रावण को संग्राम भूमि में नहीं सह सकते फिर मनुष्यों की क्या कथा है ॥ २२ ॥

स तु वीर्यवतां वीर्यमादत्ते युधि रावणः ।
तेन चाहं न शक्तोऽस्मि संयोद्धुं तस्य वा बलैः ॥ २३ ॥
सबलो वा मुनिश्रेष्ठ सहितो वा ममात्मजैः ।
कथमप्यमरप्रख्यं संग्रामाणामकोविदम् ॥ २४ ॥
बालं मे तनयं ब्रह्मन्नैव दास्यामि पुत्रकम् ।

तदेव विशदयन्नाह—स इति। हे मुनिश्रेष्ठ हे ब्रह्मन् स प्रसिद्धो रावणः युद्धि वीर्यवतां वीर्यमादत्ते गृह्णाति एव अतस्तेन रावणेन तस्य बलैः सैन्यैर्वा सयोद्धुं ममात्मजैः स्वभावजनितैः अयोद्धव्ययोधनादिक्षात्रधर्मैरुपलक्षितोऽहमेकाकी वा सबलः ससैन्यो वा अहं कथमपि न शक्तोऽस्मि अतः अमरप्रख्यं देवविशेषवत्प्रतीयमानं सङ्ग्रामाणामकोविदं गुरूपदिष्टसंग्रामविषयकज्ञानाभाववन्तम् अत एव बालं मे तनय पुत्रकमनुकम्पितसुतं नैव दास्यामि सार्धश्लोकद्वयमेकान्वयि ॥ २३–२४ ॥

वह रावण युद्धभूमि में बड़े वीरों की वीरता हर लेता है। अतः संग्रामभूमि में उससे या उसकी सेना से युद्ध करने में हे मुनि श्रेष्ठ ! अपनी सेवा के साथ अथवा अपने पुत्रों के साथ भी मैं समर्थ नहीं हूँ। हे ब्रह्मन् ! देवता के स्वरूप, संग्राम को न जानने वाले अपने नन्हें से पुत्र को, जो बच्चे हैं, और मेरे तन से उत्पन्न हैं, नहीं दे सकता ॥ २३–२४ ॥

अथ कालोपमौ युद्धे सुतौ सुन्दोपसुन्दयोः ॥ २५ ॥
यज्ञविघ्नकरौ तौ ते नैव दास्यामि पुत्रकम् ।

तदेवोपसंहरन्नाह—अथेति। युद्धकालोपमौ कालसदृशौ सुन्दोपसुन्दयोः सुतौ तौ मारीचसुबाहू दैत्यकुलजसुन्दोपसुन्दाभ्यां यक्षकन्यायां जातत्वे-

नागस्त्यशापेन चातिक्रूरतमौ राक्षसत्वं प्राप्तौ यतस्ते यज्ञविघ्नकरौ अतः ते तुभ्यं सुतमहं नैव दास्यामि । अथशब्दो हेत्वर्थे ।। २५ ।।

क्योंकि युद्ध में काल के सदृश लगने वाले, सुन्द और उपसुन्द के पुत्र, यज्ञ में विघ्न करने वाले हैं अतः मैं अपने छोटे से बच्चे को नहीं दूँगा ।। २५ ।।

मारीचश्च सुबाहुश्च वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ ।। २६ ।।
तयोरन्यतरं योद्धुं यास्यामि ससुहृद्गणः ।
अन्यथा त्वनुनेष्यामि भवन्तं सहबान्धवः ।। २७ ।।

मारीचेति । वीर्यवन्तौ सुशिक्षितौ शोभनशिक्षायुक्तौ तौ प्रसिद्धौ यौ मारीचः सुबाहुश्च तयोः संबन्धिनमन्यतरमन्यो भिन्नः तरः पराभूतिकारी च स एव स इति कर्मधारयस्तं संभावितभवदरिमित्यर्थः योद्धुं ससुहृद्गणः सुहृद्गणसहितः अहं यास्यामि अन्यथा ताभ्यां युद्धमन्तरापि अस्मदादिगमनस्यावश्यकत्वे सहबान्धवः बान्धवसहितः अहं भवन्तमनुनेष्याम्येव भवद्भिः सह गमिष्याम्येवेत्यर्थः ।। २६--२७ ।।

बलवान् और सुशिक्षित मारीच तथा सुबाहु में से किसी एक के साथ अपनी और मित्र सेना के साथ युद्ध करूँगा । अन्यथा अपने बन्धुओं के साथ आपकी शरण में जाऊँगा ।। २६–२७ ।।

इति नरपतिजल्पनाद् द्विजेन्द्रं कुसिकसुतं सुमहान्विवेश मन्युः ।
सुहुत इव समिद्भिराज्यसिक्तः समभवदुज्ज्वलितो महर्षिवह्निः ।।२८।।

इतीति । द्विजेन्द्रं द्विजश्रेष्ठं कुशिकसुतं विश्वामित्रमित्यनेन प्रकारेण नरपतिजल्पनात् राजभाषणात् सुमहानतिप्रवृद्धः मन्युः कोपः विवेश अतः समिद्भिः सुहुत आज्यसिक्तः अत एव उज्ज्वलितः प्रदीप्तो वह्निरिव महर्षिवह्निः समभवत् वह्निरित्यध्याहृतम् ।। २८ ।।

इस प्रकार राजा दशरथ के असंगत वचन को सुनकर द्विजेन्द्र कुशिक के सुत विश्वामित्र के मन में बहुत अधिक क्रोध आया । मानो वह महर्षिरूप अग्नि यज्ञ में सुन्दर आहुति पाने के वाद घी की धारा प्राप्त कर प्रज्वलित हो उठी ।।२८।।

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायामेकोनविंशः सर्गः ।। १९ ।।

विंशः सर्गः

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य स्नेहपर्याकुलाक्षरम् ।
समन्युः कौशिको वाक्यं प्रत्युवाच महीपतिम् ॥ १ ॥

राजवचनश्रवणानन्तरकालिकं वृत्तमाह—तदिति। स्नेहपर्याकुलाक्षरम् परमप्रीतिहेतुकसंकलिताक्षरविशिष्टं तस्य दशरथस्य तद्रामगमनाभावप्रतिपादकं वचनं श्रुत्वा समन्युः क्रोधविशिष्टः कौशिकः महीपतिं दशरथं प्रत्युवाच ॥ १ ॥

राजा दशरथ के स्नेह से स्खलित वचन को सुनकर क्रोध युक्त हो विश्वामित्र पृथिवी के पालक राजा दशरथ से बोले ॥ १ ॥

पूर्वमर्थं प्रतिश्रुत्य प्रतिज्ञां हातुमिच्छसि ।
राघवाणामयुक्तोऽयं कुलस्यास्य विपर्ययः ॥ २ ॥

तदुक्तिमाह—पूर्वमित्यादिभिः । पूर्वमर्थं याचितं प्रतिश्रुत्य दास्यामीति प्रतिज्ञाय प्रतिज्ञां हातुं त्यक्तु त्वमिच्छसि अयं प्रतिज्ञात्यागः राघवाणां कुलस्य राघवकुलोद्भवस्य अयुक्तः अनुचित तत्र हेतुः यतः प्रतिज्ञात्यागादस्य तव विपर्ययः मिथ्यावादित्वं स्यात् एतेन सत्यवादिकुलेऽयं मिथ्यावादी उत्पन्नः इति तवाकीर्तिर्भवितेति सूचितम् ॥ २ ॥

हे राजन् ! पहिले प्रार्थना स्वीकार की, प्रतिज्ञा करके अब छोड़ना चाहते हो। यह कार्य रघुवंशियों के लिए अयोग्य और इस कुल के विपरीत है ॥ २ ॥

यदीदं ते क्षमं राजन्गमिष्यामि यथागतम् ।
मिथ्याप्रतिज्ञः काकुत्स्थ सुखी भव सुहृद्वृतः ॥ ३ ॥

यदीति। हे राजन् ! यदीदमकीर्त्तिजनितं दुखं ते तव क्षमं सह्यं तर्हि यथागतमागतमनतिक्रम्य गमिष्यामि राममगृहीत्वैव स्वाश्रमं यास्यामीत्यर्थः। हे काकुत्स्थ ! मिथ्याप्रतिज्ञः सुहृद्वृतः बान्धवसहितः सुखी भव। एतेन सत्यप्रतिज्ञत्वत्यागे ते दुःखमेव भविष्यतीति ध्वनितम् ॥ ३ ॥

हे राजन् ! यदि यह तुम्हें योग्य है तो मैं जैसे आया हूँ वैसे चला जाऊँगा। हे असत्य प्रतिज्ञ ! हे काकुत्स्थ ! आप अपनी मित्र मण्डली के साथ सुखी रहें ॥३॥

तस्य रोषपरीतस्य विश्वामित्रस्य धीमतः।
चचाल वसुधा कृत्स्ना देवानां च भयं महत् ॥ ४ ॥

तस्येति। रोषपरीतस्य क्रोधयुक्तस्य धीमतः धैर्यविशिष्टस्य विश्वामित्रस्य कृत्स्ना निखिला वसुधा पृथिवी चचाल चकम्पे अत एव देवानां महद् भयम् जातमिति शेषः ॥ ४ ॥

बुद्धिमान विश्वामित्र के क्रोधित होने पर समस्त पृथ्वी हिल गई और देवता लोग भी बड़े भयभीत हुए ॥ ४ ॥

त्रस्तरूपं तु विज्ञाय जगत्सर्वं महानृषिः।
नृपतिं सुव्रतो धीरो वसिष्ठो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥

त्रस्तेति। महान् पूज्यः ऋषिः सर्वज्ञः सुव्रतः व्रतविशिष्टः धीरः निश्चलचित्तः स वसिष्ठः सर्वं जगत् त्रस्तरूपं विज्ञाय वाक्यमब्रवीत् ॥५॥

सुन्दर व्रतशील, गम्भीर स्वभाव वाले महर्षि वसिष्ठजी समस्त जगत् को त्रस्त देखकर राजा से ये वचन बोले ॥ ५ ॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातः साक्षाद्धर्म इवापरः।
धृतिमान्सुव्रतः श्रीमान्न धर्मं हातुमर्हसि ॥ ६ ॥

तद्वाक्यमेवाह—इक्ष्वाकूणामिति। इक्ष्वाकूणां कुले जातः प्रादुर्भूतः अत एव अपरः सर्वश्रेष्ठः साक्षात् प्रत्यक्षो धर्म इव धृतिमान् धैर्यविशिष्टः अत एव सुव्रतः अत्यक्तव्यसंकल्पविशिष्टः सत्यप्रतिज्ञ इत्यर्थः अत एव श्रीमान् सर्वसपत्तिविशिष्टः त्वं धर्मं नित्यसत्यप्रतिज्ञत्वरूपं स्वस्वभावं हातुं त्यक्तुं नार्हसि योग्योऽसि ॥ ६ ॥

आप इक्ष्वाकु के वंश में जन्मे हैं, साक्षात् धर्म के अवतार हैं, धैर्यशाली और सुन्दर व्रत का पालन करते हैं, श्रीमान् आप धर्म का परित्याग न करें ॥ ६ ॥

त्रिषु लोकेषु विख्यातो धर्मात्मा इति राघवः।
स्वधर्मं प्रतिपद्यस्व नाधर्मं वोढुमर्हसि ॥ ७ ॥

निषेधमुखेन धर्मः स्वीकर्त्तव्य इत्युक्त्वा विधिमुखेनाह—त्रिष्विति। त्रिषु ऊर्ध्वाधोमध्येषु लोकेषु धर्मातमा इति विख्यातः राघवः रघुकुल-प्रादुर्भूतः स्वधर्मं नित्यसत्यप्रतिज्ञत्वरूपं स्वस्वभावं प्रतिपद्यस्व संस्मर

अतः अधर्मं नित्यसत्यप्रतिज्ञत्वरूपस्वस्वभावविरोधिस्वभावं वोढुमङ्गीकर्त्तुं नार्हसि ॥ ७॥

तीनों लोकों में यह ख्याति है कि राघव धर्मात्मा है। इसलिए स्वधर्म का पालन करो, अधर्म का धारना उचित नहीं है ॥ ७ ॥

प्रतिश्रुत्य करिष्येति उक्तं वाक्यमकुर्वतः।
इष्टापूर्तवधो भूयात्तस्माद्रामं विसर्जय ॥ ८ ॥

प्रतिश्रुत्येति। हे राघव! उक्तं करिष्ये इति प्रतिज्ञाय वाक्यं अकुर्वतः प्रतिज्ञातार्थमकुर्वतस्तव इष्टापूर्तवधः इष्टमश्वमेधपर्यन्तयागः आपूर्त्तं वापीकूपतडागादिनिर्माणं तयोर्वधः निष्फलत्वं भूयात्स्यात् तस्मान्निष्फलत्वभयाद्रामं विसर्जय प्रेषय। करिष्येति सन्धिरार्षः ॥ ८ ॥

पहिले किसी कार्य को 'करूँगा' कह कर फिर कहे हुए को न करने वाले के यज्ञ और कूप आदि के निर्माण से उत्पन्न पुण्य नष्ट हो जाते हैं इसलिए राम को विदा कर दो ॥ ८ ॥

कृतास्त्रमकृतास्त्रं वा नैनं शक्ष्यन्ति राक्षसाः।
गुप्तं कुशिकपुत्रेण ज्वलनेनामृतं यथा ॥ ९ ॥

रामदानावश्यकत्वमुक्त्वा रामो राक्षसान् जेतेति बोधयन्नाह—कृतास्त्रमिति। कृतास्त्रं शिक्षितास्त्रोपलक्षितास्त्रशस्त्रमकृतास्त्रं वा कुशिकपुत्रेण विश्वामित्रेण गुप्तं रक्षितमेनं रामं राक्षसाः स्ववशीकर्त्तुमिति शेषः न शक्ष्यन्ति तत्र दृष्टान्तः ज्वलने नाग्निचक्रेण गुप्तममृतं यथा अमृतस्य अग्निचक्ररक्षितत्वं भारते व्यक्तम् ॥ ९ ॥

ये अस्त्र विद्या में निपुण हों अथवा अनिपुण किन्तु विश्वामित्र से रक्षित इनका अग्नि से रक्षित अमृत के समान राक्षस कुछ भी कर न सकेंगे ॥ ९ ॥

एष विग्रहवान्धर्म एष वीर्यवतां वरः।
एष विद्याधिको लोके तपसश्च परायणम् ॥ १० ॥

विश्वामित्रकोपाभासनिवृत्तये तन्माहात्म्यं बोधयन्नाह—एष इत्यादिभिः। एषः विश्वामित्रः विग्रहवान् शरीरधारी धर्मः एषः वीर्यवतां वरः श्रेष्ठः एषः विद्याधिकः तपसः परायणं च ॥ १० ॥

ये विश्वामित्र देहधारी धर्म हैं, ये बलवानों में भी श्रेष्ठ हैं, लोक में विद्या में सब से अधिक हैं और तप में लगे रहने वाले हैं ॥ १० ॥

एषोऽस्त्रान्विविधान्वेत्ति त्रैलोक्ये सचराचरे ।
नैनमन्यः पुमान्वेत्ति न च वेत्स्यन्ति केचन ॥ ११ ॥
न देवा नर्षयः केचिन्नामरा न च राक्षसाः ।
गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः ॥ १२ ॥

एष इति । सचराचरे चराचरसहिते त्रैलोक्ये विविधानस्त्रान् एषः विश्वामित्रो वेत्ति अन्यः मदतिरिक्तः पुमान् न देवाः न ऋषयः न अमराः न च राक्षसाः गन्धर्वयक्षप्रवराः सकिंनरमहोरगाः एनं न विदन्ति अथवा एनं विश्वामित्रज्ञानविषयीभूतास्त्रशस्त्रसमूहमन्यो विश्वामित्रभिन्नः पुमान् न वेत्ति अत एव न केचन वेत्स्यन्ति आगमशास्त्रस्यानित्यत्वादिडभावः चो हेतौ अस्त्रानिति लिङ्गव्यत्यय आर्षः ॥ ११-१२ ॥

ये अनेक प्रकार के अस्त्र जानते हैं, चर और अचर (स्थावर और जङ्गम) जगत् में इन्हें कोई दूसरा व्यक्ति ठीक से नहीं जानता और कुछ लोग तो जान भी न सकेंगे । न देवता, न ऋषि, न अमर, न राक्षस, न किन्नर और न नागों के सहित यक्ष और गन्धर्व ही जानते हैं ॥ ११-१२ ॥

सर्वास्त्राणि कृशाश्वस्य पुत्राः परमधार्मिकाः ।
कौशिकाय पुरा दत्ता यदा राज्यं प्रशासति ॥ १३ ॥

विश्वामित्रस्य देवाद्यवेद्यशस्त्रादिवेदितृत्वे कारणं बोधयन्नाह—सर्वास्त्राणीति । सर्वास्त्राणि परमधार्मिकाः अधर्मसंसर्गशून्याः कृशाश्वस्य प्रजापतेः पुत्राः पुत्रत्वं प्राप्तास्ते सर्वे यदायं विश्वामित्रो राज्यं प्रशासति तदा कौशिकाय विश्वामित्राय पुरा पूर्वं प्रथममित्यथः दत्ताः । गणकार्यस्यानित्यत्वात् शपो लुगभावः ॥ १३ ॥

कृशाश्व नामक प्रजापति ने अपने परम धार्मिक पुत्र रूप सब अस्त्रों को विश्वामित्र को तब दिया था जब वे पूर्व काल में राज्य करते थे ॥ १३ ॥

तेऽपि पुत्राः कृशाश्वस्य प्रजापतिसुतासुताः ।
नैकरूपा महावीर्या दीप्तिमन्तो जयावहाः ॥ १४ ॥

तदस्त्राणां महत्त्वं द्योतयन्नाह—तेऽपीति । नैकरूपाः विलक्षणानेकरूपविशिष्टाः महावीर्याः परमपराक्रमवन्तः दीप्तिमन्तः अतिप्रकाशविशिष्टाः अत एव जयावहाः विजयप्रापकाः प्रजापतिसुतासुताः प्रजापतेर्दक्षस्य ये

सुते कन्ये तयोः सुताः प्रादुर्भूताः शस्त्रास्त्रसमूहाः कृशाश्वस्य प्रजापतेः पुत्राः आसन्निति शेषः अपिर्हेतौ ॥ १४ ॥

वे कृशाश्व के पुत्र रूप अस्त्र दक्ष प्रजापति की पुत्री के पुत्र थे और बड़े वीर, कान्तिवाले, अनेक रूप के और जय देने वाले थे ॥ १४ ॥

जया च सुप्रभा चैव दक्षकन्ये सुमध्यमे ।
ते सूतेऽस्त्राणि शस्त्राणि शतं परमभास्वरम् ॥ १५ ॥

अस्त्रसङ्ख्यां तन्मातृनाम च बोधयन्नाह—जयेति । सुमध्यमे दक्षकन्ये जया सुप्रभा च परमभास्वरमतिप्रकाशविशिष्टशतमस्त्राणि शस्त्राणि च ते सूते सुवाते इत्यर्थः । परमभास्वरमित्येकवचनं शतापेक्षया ॥ १५ ॥

जया और सुप्रभा नाम की दो कृशोदरी कन्यायें थीं उनसे दोनों ने परम कान्ति वाले सैकड़ों अस्त्रों और शस्त्रों को उत्पन्न किया था ॥ १५ ॥

पञ्चाशतं सुताँल्लेभे जया लब्धवरा वरान् ।
वधायासुरसैन्यानामप्रमेयानरूपिणः ॥ १६ ॥

विभज्य तत्तत्सुतान्प्रदर्शयन्नाह—पञ्चाशतमिति । द्वाभ्याम् । असुरसैन्यानां वधाय वरान् श्रेष्ठान् अप्रमेयान्गुणेयत्तयाऽपरिच्छेद्यान् अरूपिणोऽदृश्यमानरूपान् पञ्चाशतं सुतान् जयानाम दक्षकन्या पुरा पूर्वं लेभे ॥ १६ ॥

जया नाम की कन्या ने वरदान प्राप्त कर असुरों की सेना के वध के लिए अपरिमित गुणवाले और काम रूपवाले श्रेष्ठ पचास पुत्र प्राप्त किए ॥ १६ ॥

सुप्रभाजनयच्चापि पुत्रान्पञ्चाशतं पुनः ।
संहारान्नाम दुर्धर्षान्दुराक्रामान्बलीयसः ॥ १७ ॥

सुप्रभेति । दुर्धर्षानतिप्रगल्भान्दुराक्रामान् शत्रुभिः पराभवितुमशक्यान्बलीयसः अतिबलविशिष्टान् संहारान्नाम पञ्चाशत पुत्रान् पुनः अनन्तरमेव सुप्रभापि दक्षसुता अजनयत् । दुराक्रामानत्र दीर्घ आर्षः ॥ १७ ॥

सुप्रभा ने भी संहार नाम के पचास पुत्रों को उत्पन्न किया जो दूसरों को असह्य थे, अमोघ और महाबली थे ॥ १७ ॥

तानि चास्त्राणि वेत्त्येष यथावत्कुशिकात्मजः ।
अपूर्वाणां च जनने शक्तो भूयश्च धर्मवित् ॥ १८ ॥

तानिति । धर्मविदेषः कुशिकात्मजः विश्वामित्रः तानि शतमस्त्राणि

यथावद्वेत्ति एव चकारेण अन्यान्यपि दिव्यान्यस्त्राणि वेत्ति अपूर्वाणां विलक्षणास्त्राणां जनने उत्पादने भूयोऽत्यन्तं शक्तः समर्थश्च ॥ १८ ॥

उन अस्त्रों को ये कुशिक के पुत्र विश्वामित्र भली भांति जानते हैं और धर्म को जानने वाले ये नये अस्त्रों के उत्पादन में भी समर्थ हैं ॥ १८ ॥

तेनास्य मुनिमुख्यस्य धर्मज्ञस्य महात्मनः ।
न किंचिदस्त्यविदितं भूतं भव्यं च राघव ॥ १९ ॥

तत्प्रभाववर्णनमुपसंहरन्नाह—तेनेति । हे राघव ! मुनिमुख्यस्य धर्मज्ञस्य अत एव महात्मनः सर्वपूज्यस्वरूपस्यास्य विश्वामित्रस्य तेन हेतुना भूतं भूतकालिकं भव्यं भविष्यत्कालिकं च किंचिदविदितं नैव ॥१९॥

हे राघव ! इसलिए मुनियों में श्रेष्ठ, धर्म जानने वाले महात्मा विश्वामित्र को भूत, भविष्य और वर्तमान कुछ भी अविदित नहीं है ॥ १९ ॥

एवंवीर्यो महातेजा विश्वामित्रो महायशाः ।
न रामगमने राजन्संशयं गन्तुमर्हसि ॥ २० ॥

एवमिति । हे राजन् । महायशाः महातेजाः विश्वामित्रः यतः एवंवीर्यः वर्णितप्रभावविशिष्टः ततः रामगमने रामप्रेषणे संशयं गन्तुं प्राप्तुं त्वं नार्हसि ॥ २० ॥

विश्वामित्र इस प्रकार बड़े वीर, तेजस्वी और यशस्वी हैं इसलिए हे राजन् तुम राम के गमन में संशय न करो ॥ २० ॥

तेषां निग्रहणे शक्तः स्वयं च कुशिकात्मजः ।
तव पुत्रहितार्थाय त्वामुपेत्याभियाचते ॥ २१ ॥

इदानीं त्वदनुग्रहार्थमेव एतदागमनमिति बोधयन्नाह—तेषामिति । कुशिकात्मजः विश्वामित्रः यद्यपि तेषां राक्षसानां निग्रहणे स्वयं शक्तः समर्थस्तथापि तव पुत्रहितार्थायेत्युक्त्या सकलां स्वविद्यामस्मै समर्पयितेति ध्वनितम् ॥ २१ ॥

विश्वामित्र उन दुष्टों के मारने में स्वयं सक्षम हैं किन्तु तुम्हारे पुत्र के हित के किए तुम्हारे समीप आकर याचना करते हैं ॥ २१ ॥

इति मुनिवचनात्प्रसन्नचित्तो रघुवृषभश्च मुमोद पार्थिवाग्र्यः ।
गमनमभिरुरोच राघवस्य प्रथितयशाः कुशिकात्मजाय बुद्ध्या ॥ २२ ॥

इतीति । इत्यनेन प्रकारेण मुनिवचनाद्वशिष्ठोक्त्या प्रसन्नचित्तः अत एव पार्थिवाग्र्यः प्रथितयशा अतियशस्वी रघुवृषभः रघुकुलश्रेष्ठः मुमोद मुमुदे अत एव कुशिकात्मजाय कुशिकात्मजं प्रसादयितुं राघवस्य रामस्य गमनं बुद्धया अभिरुरोच स्वीचकार ॥ २२ ॥

इस प्रकार मुनि वसिष्ठ जी के वचन को सुनकर प्रसन्न चित्त, विख्यात यशस्वी, रघुवंशियों में श्रेष्ठ राजा दशरथ आनन्दित हुए और विश्वामित्र को देने की बुद्धि से राम का जाना पसन्द किया ॥ २२ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायां विंशः सर्गः ॥ २० ॥



एकविंशः सर्गः

तथा वसिष्ठे ब्रुवति राजा दशरथः स्वयम् ।
प्रहृष्टवदनो राममाजुहाव सलक्ष्मणम् ॥ १ ॥

तथेति । तथा तेन प्रकारेण वसिष्ठे ब्रुवति सति सहृष्टवदनः प्रसन्नमुखः राजा दशरथः सलक्ष्मणं लक्ष्मणसहितं रामं स्वयमाजुहाव एतेन गुरुवाक्ये राज्ञः श्रद्धातिशयः सूचितः ॥ १ ॥

तब वसिष्ठ के ऐसा समझाने पर प्रसन्न मुख राजा दशरथ ने स्वयं लक्ष्मण के सहित राम को बुलाया ॥ १ ॥

कृतस्वस्त्ययनं मात्रा पित्रा दशरथेन च ।
पुरोधसा वसिष्ठेन मङ्गलैरभिमन्त्रितम् ॥ २ ॥
स पुत्रं मूर्घ्न्युपाघ्राय राजा दशरथस्तदा ।
ददौ कुशिकपुत्राय सुप्रीतेनान्तरात्मना ॥ ३ ॥

कृतेति । मात्रा तज्जनन्या दशरथेन पित्रा च कृतस्वस्त्ययनं कृतमाङ्गलिकद्रव्यभोजनालङ्कारादिसमर्पणम् वशिष्ठेन पुरोधसा पुरोहितेन मङ्गलैर्मङ्गलजनकवेदवाक्यैरभिमन्त्रितम् । प्रिय परमप्रीतिविषयोभूतं पुत्र मूर्घ्नि उपाघ्राय स राजा दशरथः सुप्रातेनान्तरात्मना मनसा कुशिकपुत्राय विश्वामित्राय ददौ द्वयोरेकत्रान्वयः ॥ २–३ ॥

माता कौशल्या और स्वयं के द्वारा स्वस्तिवाचन किये हुए और पुरोहित वशिष्ठ द्वारा मङ्गलों से अभिमन्त्रित हुए पुत्र राम को उनका शिर सूँघ कर राजा दशरथ ने प्रसन्न चित्त से कुशिक ऋषि के पुत्र विश्वामित्र को दे दिया ॥२–३॥

ततो वायुः सुखस्पर्शो नीरजस्को ववौ तदा ।
विश्वामित्रगतं रामं दृष्ट्वा राजीवलोचनम् ॥ ४ ॥

मङ्गलसूचकं शकुनमाह—तत इति । त्रिभिः । तदा गमनसमये राजीवलोचनं विश्वामित्रसहितं रामं दृष्ट्वा ततः सर्वत्र परिपूर्णः सुखस्पर्शः सुखप्रदस्पर्शविशिष्टः विरजस्कः रजोरहितो वायुर्ववौ ॥ ४ ॥

तदनन्तर विश्वामित्र के साथ कमलनयन राम को देखकर स्पर्श से सुख देने वाला धूलि रहित वायु बहने लगा ॥ ४ ॥

पुष्पवृष्टिर्महत्यासीद्देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः प्रयाते तु महात्मनि ॥ ५ ॥

पुष्पेति । महात्मनि मुनौ रामे च प्रयाते सति देवदुन्दुभिनिस्वनैः सह महती पुष्पवृष्टिः शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषः शङ्खादिनिस्वनश्चासीत् तुशब्दश्चार्थे ॥ ५ ॥

उस महात्मा के गमन काल में देव-दुन्दुभि की ध्वनि के साथ बड़ी पुष्प वृष्टि हुई और शङ्ख तथा दुन्दुभि के महान् शब्द हुए ॥ ५ ॥

विश्वामित्रो ययावग्रे ततो रामो महायशाः ।
काकपक्षधरो धन्वी तं च सौमित्रिरन्वगात् ॥ ६ ॥

गमनप्रकारं वर्णयन्नाह—विश्वामित्र इत्यादिभिः । अग्रे विश्वामित्रो ययौ ततस्तत्पश्चान्महायशाः सर्वत्र परिपूर्णकीर्तिः काकपक्षधरः धन्वी धनुर्धारी रामश्च ययौ । सौमित्रिर्लक्ष्मणस्तं राममन्वगात् अन्वगच्छत् ॥६॥

आगे विश्वामित्र चले, उनके बाद काक पक्षधारी बड़े यशस्वी धनुर्धर राम और उनके पीछे सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण ने अनुगमन किया ॥ ६ ॥

कलापिनौ धनुष्पाणी शोभयानौ दिशो दश ।
विश्वामित्रं महात्मानं त्रिशीर्षाविव पन्नगौ ॥ ७ ॥
अनुजग्मतुरक्षुद्रौ पितामहमिवाश्विनौ ।
अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयन्तावनिन्दितौ ॥ ८ ॥

तदेव विशदयन्नाह—कलापिनाविति । कलापिनौ तूणीरधरौ धनुष्पाणी धनुर्युक्तपाणिविशिष्टौ दशदिशः शोभयानौ प्रकाशयन्तौ त्रिशीर्षौ पन्नगौ इव शिरस्त्रयविशिष्टपन्नगसदृशौ अक्षुद्रौ दर्शनमात्रेण क्षुद्रतानिवर्तकौ अनिन्दितौ शोभयन्तौ श्रिया दीप्तौ पितामहम् अनुयातौ अश्विनाविव अनुजग्मतुः ॥ ७–८ ॥

तूणीर धारण किये, हाथ में धनुष लिये, दशों दिशाओं को शोभित करते हुए, तीन फण वाले सर्प के समान प्रशंसा के योग्य क्षुद्रतानिवर्तक रूप से प्रकाशमान तथा शोभा बढ़ाने वाले (वे दोनों) पितामह के पीछे अश्विनी कुमारों की भाँति महात्मा विश्वामित्र के पीछे चले ॥ ७–८ ॥

तदा कुशिकपुत्रं तु धनुष्पाणी स्वलंकृतौ ।
बद्धगोधाङ्गुलित्राणौ खड्गवन्तौ महाद्युती ॥ ९ ॥
कुमारौ चारुवपुषौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अनुयातौ श्रिया दीप्तौ शोभयेतामनिन्दितौ ॥ १० ॥
स्थाणुं देवमिवाचिन्त्यं कुमाराविव पावकी ।

इदानीं ताभ्यां मुनेः परमा शोभा जातेति बोधयन्नाह—तदेति सार्धश्लोकद्वयेन । तदा गमनकाले धनुष्पाणी धनुर्युक्तपाणिविशिष्टौ स्वलंकृतौ अलङ्कारविशिष्टौ बद्धं गोधाङ्गुलित्राणं गोधाचर्मनिर्मिताङ्गुलित्राणं याभ्याम्, खड्गवन्तौ खड्गविशिष्टौ महाद्युती परमप्रकाशविशिष्टौ चारुवपुषौ अतिसुंदरशरीरौ अनुयातौ विश्वामित्रानुगन्तारौ श्रिया परस्परशरीरकान्त्या दीप्तौ प्रकाशितौअनिन्दितौ पावकी कुमाराविव पावकप्रादुर्भूतस्कन्धविशाखसदृशौ कुमारौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ अचिन्त्यं चिन्तयितुमशक्यं स्थाणुं देवमिव देवशम्भुसदृशं कुशिकपुत्रं विश्वामित्रं शोभयेताम् अशोभयेताम अड्विरहः आगमनशास्त्रस्यानित्यत्वात् ॥ ९–१० ॥

उस समय साथ में धनुष लिये हुए, सुन्दर अलङ्कार धारण किये हुए, गोह के चर्म से निर्मित अङ्गुलित्राण पहिने हुए, तलवार लिये हुवे वे बड़े कान्तिमान सुन्दर देहवाले, कुमारावस्थावाले निन्दारहित, विश्वामित्र के पीछे चलते हुए दोनों भाई राम और लक्ष्मण ऐसे शोभित हुए मानो अचिन्त्य वैभववाले भगवान शङ्कर के पीछे अग्नि के दो कुमार स्कन्द और विशाख हों ॥९–१० ॥

अध्यर्धयोजनं गत्वा सरय्वा दक्षिणे तटे ॥ ११ ॥
रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ।

अध्यर्धेति । विश्वामित्रः सरय्वा दक्षिणे तटे अध्यर्धयोजनं सार्द्धयोजनं गत्वा रामेति मधुरां वाणीमभ्यभाषत ॥ ११ ॥

सरयू के दक्षिण तट पर डेढ़ योजन जाकर विश्वामित्र ने हे राम यह मधुर शब्द कहा ॥ ११ ॥

गृहाण वत्स सलिलं माभूत्कालस्य पर्ययः ॥ १२ ॥
मन्त्रग्रामं गृहाण त्वं बलामतिबलां तथा ।

तद्भाषणमेवाह—गृहाणेति । हे वत्स ! सलिलं त्वं गृहाण आचमनं

कुर्वित्यर्थः तत्र हेतुः कालविपर्ययः अवश्यकर्त्तव्यकालातिक्रमः माभूत् तथा अनन्तरं मन्त्रग्रामं बलां बलाख्यामतिबलामतिबलाख्यां विद्यां गृहाण तथाशब्द आनन्तर्यें ॥ १२ ॥

हे वत्स ! आचमन करो देर न हो, मन्त्रसमूह और बला तथा अतिबला नाम की विद्या को तुम ग्रहण करो ॥ १२ ॥

न श्रमो न ज्वरो वा ते न रूपस्य विपर्ययः ॥ १३ ॥
न च सुप्तं प्रमत्तं वा धर्षयिष्यन्ति नैर्ऋताः ।

बलाऽतिबलाविद्याप्रभावं वर्णयन्नाह—न श्रम इत्यादिभिः । हे राम ! ते विद्ययोः प्राप्तौ सत्यां श्रमो न ज्वरश्च न रूपस्य विपर्ययश्च न नैर्ऋता॰ राक्षसाः सुप्तं प्रमत्तमनवधानं वा न धर्षयिष्यन्ति पराभवितुं प्रगल्भा भविष्यन्ति ॥ १३ ॥

इससे न तो थकान होगी, न ज्वर होगा, न तो आकृति पर कोई श्रम आदि का प्रभाव होगा, सोते हुए चित्त की व्याकुलता में भी तुम पर राक्षस आक्रमण न कर सकेंगे ॥ १३ ॥

न बाह्वोः सदृशो वीर्ये पृथिव्यामस्ति कश्चन ॥ १४ ॥
त्रिषु लोकेषु वा राम न भवेत्सदृशस्तव ।

न बाह्वोरिति । हे राम ! बाह्वोः विद्याधारिजनभुजयोर्वीर्यं सदृशः त्रिषु लोकेषु पृथिव्यां त्रिलोकीस्थाने कश्चन जातो नास्ति न च तव सदृशः भवेत् ॥ १४ ॥

हे राम ! इस पृथ्वी में बाहुबल में तुम्हारे जोड़ का कोई नहीं है और तीनों लोक में तुम्हारे सदृश कोई नहीं है ॥ १४ ॥

बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥ १५ ॥
न सौभाग्ये न दाक्षिण्ये न ज्ञाने बुद्धिनिश्चये ।
नोत्तरे प्रतिवक्तव्ये समो लोके तवानघ ॥ १६ ॥
एतद्विद्याद्वये लब्धे न भवेत्सदृशस्तव ।
बला चातिबला चैव सर्वज्ञानस्य मातरौ ॥ १७ ॥

तदेव विशदयन्नाह—बलामिति । हे राघव ! हे अनघ ! बलामतिबलां च पठतस्तव यद्यपि लोके प्राकृताप्राकृतजनेषु सौभाग्ये तव समो नास्ति न च भविता दाक्षिण्ये सामर्थ्यातिशये च समो न तथापि ते तव बलामति-

बलां च लब्धे मदुपदेशादपि प्राप्ते एतद्विद्याद्वये न भवेत्सदृशस्तव। कथमनयोरेतादृशः प्रभाव इत्यत आह यतः बला अतिबला च विद्ये सर्वज्ञानस्य मातरौ हेतू एवोऽनुक्तसमुच्चयार्थस्तेन सकलातिशयैश्वर्यहेतु वत्सङ्ग्रहः ॥ १५–१७ ॥

हे वत्स राघव ! बला और अतिवला के पढ़ते ही सौभाग्य, दयालुता, ज्ञान, बुद्धि द्वारा निश्चय करने में, उत्तर देने में तुम्हारे समान लोक में कोई न होगा। हे निष्पाप ! इन दोनों विद्याओं के ग्रहण कर लेने के बाद तुम्हारे समान कोई भी नहीं होगा। ये बला और अतिबला विद्यायें समस्त ज्ञान की जननी हैं ॥ १५–१७ ॥

क्षुत्पिपासे न ते राम भविष्येते नरोत्तम।
बलामतिबलां चैव पठतस्तात राघव ॥ १८ ॥

पथि पाठस्य फलमाह—क्षुदिति। हे राम ! हे राघव नरोत्तमराम हे तात बलामतिबलां च पठतः पुरुषस्य ते प्रसिद्धे क्षुत्पिपासे नैव भविष्येते ॥ १८ ॥

हे तात ! हे राघव ! बला और अतिबला नाम की दोनों विद्याओं के पाठ से तुम्हें भूख और पिपासा भी नहीं होगी ॥ १८ ॥

[गृहाण सर्वलोकस्य गुप्तये रघुनन्दन]
विद्याद्वयमधीयाने यशश्चाथ भवेद्भुवि।

विद्याग्रहणे लोकोपकृतिरस्तीत्याह—गृहाणेति। हे रघुनन्दन सर्वलोकस्य गुप्तये रक्षायै विद्याद्वयं गृहाण तत्र हेतुः यतः त्वयि विद्याद्वयमधीयाने सति भुवि सर्वलोके यशः चकारेण प्रतापश्च भवेत् ॥ १८½ ॥

हे रघुनन्दन ! सब लोक की रक्षा के लिये तुम इन दोनों विद्याओं का ग्रहण करो, इन दोनों के अध्ययन से भूमण्डल पर यश भी व्याप्त हो जाता है ॥ १८½ ॥

पितामहसुते ह्येते विद्ये तेजःसमन्विते ॥ १९ ॥
प्रदातुं तव काकुत्स्थ सदृशस्त्वं हि पार्थिव।

सिंहावलोकनन्यायेन विद्ययोः सर्वविद्याहेतुत्वे कारणं वदन्नाह—पितामहेति। हे काकुत्स्थ ! हे पार्थिव ! तेजस्समन्विते परमतेजोविशिष्टे एते द्वे विद्ये पितामहसुते ब्रह्मणः पूर्वं प्रादुर्भूते अतः सदृशः अनयोर्विद्ययोर्योग्यस्त्वमतस्तव तुभ्यं दातुं समर्पयितुं मे मनोऽस्तीति शेषः हिर्हेतौ ॥ १९ ॥

हे काकुत्स्थ ! हे राजन् ! ये दोनों विद्यायें पितामह की कन्या हैं। जो तेज से भरी पूरी हैं, इन्हें मैं तुम्हें देना चाहता हूँ क्योंकि इनके ग्रहण में तुम योग्य हो ॥

कामं बहुगुणाः सर्वे त्वय्येते नात्र संशयः ॥ २० ॥
तपसा संभृते चैते बहुरूपे भविष्यतः ।

काममिति । एते विद्याद्वयकार्यत्वेनोक्ता बहुगुणाः वीरे त्वयि कामं यद्यपि सन्ति अत्र संशयो न तथापि तपसा संभृते मया तपोबलेन अर्जिते एते द्वे विद्ये बहुरूपे त्वदुपदेशाद्विस्तृते भविष्यतः अतः इमे विद्ये त्वया ग्रहीतव्ये इत्यर्थः चकारो यद्यपीत्यर्थे ॥ २० ॥

यद्यपि ये सब गुण तुम में भरे पड़े हैं इसमें सन्देह नहीं तथापि तप से प्राप्त ये विद्यायें तुममें अनेक रूप में विस्तार को प्राप्त होंगी ॥ २० ॥

ततो रामो जलं स्पृष्ट्वा प्रहृष्टवदनः शुचिः ॥ २१ ॥
प्रतिजग्राह ते विद्ये महर्षेर्भावितात्मनः ।

विश्वामित्राज्ञापनानन्तरकालिकं रामवृत्तमाह—तत इति । ततः विश्वामित्राज्ञापनानन्तरं प्रहृष्टवदनः प्रसन्नमुखः शुचिः सर्वपवित्रत्वहेतुः रामः जलं स्पृष्ट्वा आचम्येत्यर्थः भावितात्मनः भावितः परिशीलितः आत्मा ईश्वरनियन्ता येन तस्मात् महर्षेस्ते बलाऽतिबले विद्ये जग्राह ॥

तदनन्तर प्रसन्न मुख वाले राम ने आचमन किया और पवित्र होकर आत्म-साक्षात्कार करने वाले महर्षि विश्वामित्र से उन दोनों विद्याओं को ग्रहण किया ॥

विद्यासमुदितो रामः शुशुभे भीमविक्रमः ॥ २२ ॥
सहस्ररश्मिर्भगवाञ्शरदीव दिवाकरः ।

विद्येति । विद्यासमुदितो विश्वामित्रोपदिष्टविद्यासंयुक्तः अत एव भीमविक्रमः विद्याप्रभावं प्रकटयितुं प्रकटीकृतस्वीयबहुप्रतापः रामः शरदि शरत्काले सहस्ररश्मिर्भगवान् दिवाकर इव शुशुभे ॥ २२ ॥

भीम पराक्रमी राम उन विद्याओं को पाकर ऐसे शोभित हुए मानो सहस्र किरणों वाले भगवान् सूर्य ने शरद प्राप्त कर लिया हो ॥ २२ ॥

गुरुकार्याणि सर्वाणि नियुज्य कुशिकात्मजः ॥ २३ ॥
ऊषुस्तां रजनीं तत्र सरय्वां ससुखं त्रयः ।

गुर्विति । कुशिकात्मजः विश्वामित्र गुरुकार्याणि गुरौ विधेयानि

सर्वाणि पादपीडनादीनि नियुज्य तां रजनीं तत्र सरय्वां सरयूतीरे त्रयः रामप्रभृतयः ससुखं यथास्यात्तथा ऊषुः ॥ २३ ॥

विश्वामित्र ने समस्त अपने कार्यों में राम को नियुक्त किया और तीनों ने उस रात को सरयू के तट पर सुख पूर्वक बिताया ॥ २३ ॥

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां तृणशयनेऽनुचिते तदोषिताभ्याम् ।
कुशिकसुतवचोऽनुलालिताभ्यां सुखमिव सा विबभौ विभावरी च ॥ २४ ॥

तत्कालस्यापि शोभनत्वं वर्णयन्नाह—दशरथेति । अनुचिते गुरुशुश्रूषण-मर्यादापालकानां परमोचिते तृणशयने उषिताभ्यां कुशिकसुतवचोऽनुलालिताभ्यां दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यां रामलक्ष्मणाभ्यां सुखं यथास्यात्तथैव सा विभावरी रात्रिरपि तदा शयनकाले बभौ शुशुभे इवशब्द एवार्थे ॥ २४ ॥

विश्वामित्र के वचनों से लालित, अयोग्य तृणशय्या पर सोते हुए, राजा दशरथ के उत्तम पुत्रों ने उस चाँदनी रात को सुख की रात की भाँति व्यतीत किया ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकीयरामाभ्युदययात्रायामेकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥



महाकविश्रीहर्षविरचितं

नैषधीयचरितं महाकाव्यम्

'चन्द्रकला' संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेतम्

व्याख्याकारः—आचार्य श्रीशेषराजशर्मा 'रेग्मी:'

संस्कृतके सुप्रसिद्ध षट्-काव्य और अन्यान्य महाकाव्योंमें भी नैषधीयचरितमहाकाव्य-का स्थान सर्वोपरि है यह बात सर्वजन् सम्मत है। साहित्यशास्त्रके गुण, अलङ्कार, रीति, रस और ध्वनि आदिकी दृष्टिसे इसका स्थान अप्रतिम है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इस काव्यमें अलङ्कार आदिके प्रदर्शनके प्रसङ्गमें यत्र-तत्र व्याकरण और दर्शन आदि शास्त्रों-के कई विषय अनूठे ढङ्गसे उपस्थित किये गये हैं। अतएव कहा भी गया है--"नैषधं विद्वदौषधम्"। इसीलिए इसे "शास्त्रकाव्य" भी कहते हैं। इस महाकाव्यके उदयके अनन्तर संस्कृतके प्रसिद्ध और प्रौढ महाकाव्य किराताऽर्जुनीय तथा शिशुपालवध हतप्रभ हो गये हैं, अतएव कहा भी गया है--"उदिते नैषधे मानौ क्व माघः क्व च भारविः?" वेदान्तमें खण्डनखण्डखाद्य के समान यह महाकाव्य भी असाधारण प्रौढ शैलीमें रचे जानेके कारण अत्यन्त दुरूह हो गया है। कवि तार्किक श्रीहर्षने स्वयम् इस महाकाव्य को "कविकुलाऽदृष्टाध्वपान्थ "अर्थात् कवियोंसे अदृष्ट मार्गमें निरन्तर चलनेवाला" कहा है। इसी कारण महोपाध्याय मल्लिनाथकी जावातु और नारायणपण्डितकी प्रकाश व्याख्या और अन्यान्य विद्वानों की अन्यान्य व्याख्याओं की विद्यमानतामें भी यह महाकाव्य इदानान्तन छात्रोंको अवगाहन करनेमें और परीक्षामें साफल्य प्राप्त करनेमें अत्यन्त कठिन बन गया है।

हमने इसी बातको लक्ष्य करके आधुनिक पद्धतिसे चन्द्रकला व्याख्या, और हिन्दी अनुवादसे अलङ्कृत कर इस महाकाव्यका प्रथम भाग (१-९ सर्ग) प्रकाशित किया है। इसमें मूलपाठ, दण्डान्वय, व्याख्या अनुवाद और टिप्पणी इतने विषयोंका समावेश कर ग्रन्थको अत्यधिक सरल करनेका प्रयास किया है। यहाँपर स्थल-स्थल पर काव्यके मूल पाठके कतिपय पदोंकी आलोचना, तत्तत्पदोंकी व्याकरणाऽनुसार उत्पत्ति, कोशप्रमाण और अन्य व्याख्याओंकी आलोचना भी की गई है। मल्लिनाथजीकी "नाऽमूलं लिख्यते किञ्चिन्नाऽनपेक्षितमुच्यते।" अर्थात् अमूलक और अनपेक्षित कुछ भी नहीं कहा जाता है।" इस उक्तिको ध्यानमें रखकर इस व्याख्याकी अवतारणा की गई है।

हम आशा करते हैं कि उत्तररामचरित, प्रसन्नराघव, मालतीमाधव, रघुवंश (प्रथम सर्ग), मेघदूत हितोपदेश-मित्रलाभः, तर्कसंग्रहः, स्वप्नवासवदत्ता आदि ग्रन्थों पर टीका-कारकी चन्द्रकला व्याख्याकी तरह नैषधीयचरित महाकाव्यमें भी प्रस्तुत चन्द्रकलाका समुचित प्रचार होगा। इसके अनुवादमें भी अनावश्यक विस्तारका परिहार कर प्राञ्जल शैलीका अवलम्बन किया गया है।

प्रथम सर्ग ५-०० १-३ सर्ग १०-००
१-५ सर्ग १५-०० १-९ सर्ग २५-००

चौखम्भा विद्याभवन, चौक, पो० बा० ६९, वाराणसी-२२१००१